भागवत दर्शन

भागवती स्तुतियाँ (४)

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्विता ।
कृतं वै प्रभुदत्तेन श्रीभागवतदर्शनम् ॥

लेखक
श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

प्रकाशक
संकीर्तन-भवन,
प्रतिष्ठानपुर झूसी (प्रयाग)

प्रथम संस्करण, आषाढ़ शु० वि० २०१५]

मुद्रक—भागवतप्रेस, प्रतिष्ठानपुर, प्रयाग

विषय विषय-सूची पृष्ठ

॥ श्रीहरिः ॥

क्षमा याचना

आज हम चिरकाल के पश्चात् भी पाठक पाठिकाओं के सम्मुख अत्यंत संकोच तथा लज्जा के साथ उपस्थित हो रहे हैं। ६५ खण्ड निकाल कर आगे के खंड हम न निकाल सके। तभी से प्रेमी पाठकों के पत्र के ऊपर पत्र आने लगें। उनमें भाँति भाँति के उपालम्भ थे, प्रार्थनायें थीं, पढ़ने की प्रबल उत्कण्ठा प्रकाशित की गई थी। कहाँ दूसरे महीने दो खंड भेजने की बात थी, कहाँ वर्ष से अधिक हो गया, एक भी खंड पाठकों के पास पहुँच न सका। उत्सुकता उत्कंठा होनी स्वाभाविक थी। यदि हम अत्यन्त विवश न होते तो पाठकों के साथ इतना अन्याय कभी न करते।

पाठक पाठिकाएं हमारी परिस्थिति से पूर्ण परिचित ही हैं, उन बातों को बार बार दुहराना उचित प्रतीत नहीं होता। भागवती कथा के प्रेमी पाठक इस बात को भली भाँति जानते हैं, हम कोई व्यवसायी नहीं हैं, वैसे जिस प्रकार आज सभी कार्य व्यवसाय हो गये हैं, वैसे ही पुस्तकों का प्रकाशन भी एक व्यवसाय हो गया है, जैसे सब व्यवसाओं में प्रतियोगिता प्रतिस्पर्धा (कंपटीशन) चलता है उसी प्रकार पुस्तकों में भी है। जो व्यवसाय पटु हैं, बिक्री की विद्या में विज्ञ हैं, विज्ञापन कला के पंडित हैं, वे साधारण पुस्तक को लेकर ही बाजी मार ले जाते हैं, जो इससे अनभिज्ञ है, वे सफलता प्राप्त नहीं कर सकते।

हम लोग पुस्तक प्रकाशन तो किसी प्रकार कर भी लेते हैं, किन्तु बिक्री की विद्या में पटु नहीं यही कारण है; कि इतने दिनों

में भी हमारा प्रकाशन अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो सका, इसी से ठीक समय से पुस्तकें प्रकाशित नहीं हो सकीं।

यह तो गौण कारण है, यदि आगामी खण्डों के लिये प्रयत्न किया जाता तो संभव है कुछ खंड अवश्य प्रकाशित हो जाते। मुख्य कारण है मेरा स्वास्थ्य।

आज से १५-२० वर्ष पूर्व मैंने एक विशेष क्रिया द्वारा अपने शरीर को शुद्ध किया था। तब से भागवती कथा के लेखन कार्य में तथा गोरक्षादि के सक्रिय आंदोलनों में इतना व्यस्त रहा कि शरीर की ओर ध्यान ही नहीं दिया। यन्त्र की भाँति कार्यों में ही मग्न रहा आया। इसका परिणाम यह हुआ कि शरीर में मेद, श्लेष्म तथा मल संचित हो गया पेट बढ़ गया, शरीर स्थूल हो गया।

जब पुनः लिखने बैठा तो ऐसे शरीर से लिखने में बड़ा विघ्न हुआ। मैंने सोचा पहिले शरीर की शुद्धि कर लें मोटेपन को कम करलें तब स्वस्थ्य होकर ही लगेंगे। यही सोचकर मैं शरीर के शोधन में लग गया। उसमें आयुर्वेद तथा योग दोनों ही क्रियाओं का मिश्रण था। इसमें इतना समय लग जाता कि लिखने का अवसर ही नहीं मिलता था। निरन्तर संशोधन के ही कार्यों में व्यस्त रहता। इसीसे आगे के खंड नहीं लिखे जा सके। अभी तक पूर्ण शुद्धि तो नहीं हुई। तन मन पूर्ण निर्मल तो नहीं हुआ, फिर भी, बहुत कुछ मल छट गया है। अब ऐसी स्थिति में आ गया हूँ, कि कुछ समय इसके लिये दे सकूँगा। पाठक पाठिकाएँ हृदय से मुझे क्षमा करें। न तो मैंने प्रमाद ही किया, न मैं आलस्य में बैठा ही रहा। उसी की तैयारी करता रहा। यदि स्वस्थ्य हो गया तो और भी अधिक सेवा करने योग्य संभवतया हो सकूँगा। अतः पाठकों से मैं करबद्ध प्रार्थना

करता हूँ, कि वे अपने सहज सरल स्वभाव से, अपने भक्तोचित स्नेह से मुझे क्षमा कर दें, अब लिखने में उतना चित्त लगता नहीं, अब मन कुछ और चाहता है, किन्तु होगा तो वही जो वह चितचोर नन्द किशोर चाहेगा। उसने लिखाने की ही ठान ली है, तो विवश होकर लिखना ही पड़ेगा। वह इससे विरक्त बनाकर अपने स्मरण चिन्तन में ही लगा ले, तो उसे भी मैं परम सौभाग्य समझूँगा। पाठक एक मंत्र याद करलें—

सीताराम सीताराम सीताराम कहना।
जाई विधि राखै राम ताहो विधि रहना॥

जो "यथानियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।" वह जैसा नाच नचावेगा वैसा ही नाच नाचना पड़ेगा। अतः अब लिखना तो आरम्भ हो ही गया है, जो है सो तुम्हारा रामजो भला करें आगे की कथा सुनिये। हाँ, मोटापन कैसे दूर हुआ इस विषय में बहुत उत्सुक न हूजिये मैंने "मोटापन कम करने के उपाय" नामक एक आयुर्वेद की पुस्तक ही लिखी है,वह छप रही है, उसे पढ़कर सभी बातों का पता चल जायगा। अच्छा तो जय श्री कृष्ण-श्रीराधे श्रीराधे,बोल दे मोर मुकुट बंशीवाले की जय।

संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर(प्रयाग)
फाल्गुन कृष्णा ३०।२०१४ } प्रभुदत्त.

सत्यनिष्ठा

(भूमिका)

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यम्,
सत्यस्ययोनिं निहितं च सत्ये ।
सत्यस्य सत्यमृत सत्यनेत्रम्,
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥
(श्रीभा० १० स्क० २ अ० २६ श्लो०)

छप्पय

सत्य रूप हैं श्याम सत्य तैं परगट होवें ।
सत्य शरन जे जायँ सकल कलमष ते धोवें ॥
सत्य सदाई रहे सत्य की विजय सदाई ।
सत्य साधना श्रेष्ठ सत्य व्यापक सब ठाईं ॥
सत्य साधना जे करहिं, सत्य सत्य तरि जायँगे ।
सत्य निष्ठ संसार में, प्रभु के दरशन पायँगे ॥

एक शब्द में भगवान के सम्बन्ध में कहा जाय तो यही कह सकते हैं—"भगवान सत्य स्वरूप हैं ।" सत्य निष्ठ साधक

गर्भस्थ भगवान् की स्तुति करते हुए देवगण कह रहे हैं—"हे देव ! आप सत्यव्रत हैं, सत्यपर हैं, त्रिसत्य हैं, सत्य योनि हैं, सत्य में ही स्थित रहते हैं, आप सत्य के भी सत्य हैं, ऋत और सत्य ये ही आप के नेत्र हैं. ऐसे सत्यात्मक आपकी हम शरण में प्राप्त हैं ।

ही उन्हें प्राप्त कर सकते हैं। सत्य की साधना ही उन तक पहुँचने का सुगम साधन है। कहने का तात्पर्य इतना ही है, कि साधक, साधन, साध्य सब सत्य ही है। जब सब सत्य ही सत्य है, तो सत्य के सम्मुख कोई संभव असंभव का प्रश्न ही नहीं। जिसने सत्य की उपासना की है, उसके लिये असंभव कुछ भी नहीं, सभी संभव है।

पुराणों में ऐसे सहस्रों लाखों उदाहरण हैं, उन ऋषि का किसी ने अपराध किया उन्होंने तुरन्त शाप दे दिया—"जा तू सर्प होजा, हाथी हो जा, तेरा शरीर अभी नष्ट हो जाय, या तू सात दिन में मर जाय।"

जब शापित व्यक्ति ने प्रार्थना की तो सभी का एक ही उत्तर होता था —"मैंने तो आज तक कभी हँसीमें भी असत्य भाषण नहीं किया, फिर मेरा वचन असत्य तो हो नहीं सकता। किन्तु ऐसा नहीं ऐसा हो जायगा, इतने दिन में तू शाप से मुक्त हो जायगा, ऐसा कहकर वे उसमें कुछ संशोधन कर देते थे, किन्तु अपने वचन को कभी असत्य नहीं होने देते थे।

बात यह है, कि जो सदा सत्य बोलता है, उसे वाक्सिद्धि प्राप्त हो जाती है, उसके मुख से संभव असंभव जो भी निकलेगा सब सत्य हो जायगा,ऐसे ही पुरुष शाप वरदान देने में समर्थ होते थे। आज हम लोग अकारण असत्य बोलते रहते हैं। आज की शासन प्रणाली ही ऐसी बनावटी दंभपूर्ण असत्य पर आधारित है, कि कोई कितना भी सत्यवादी हो यदि वह शासनके अन्तर्गत रहता है, तो उसका असत्य से बचना अत्यंत कठिन हो जाता है, शासन के प्रत्येक विभागमें असत्यका बोलबाला है। न्यायालयों में जाओ तो जब तक घटना को तोड़ मरोड़कर न रखो, तबतक न्याय की आशा ही नहीं। लाखों वकील असत्य सिखाने का कार्य ही

करते हैं, सीमेंट आदि लेने जाओ तो असत्य लिखना होगा। आवश्यकता है २० बोरे की तो ५० के लिये प्रार्थनापत्र देना होगा। जितने विद्यालय चलते हैं विशेषकर जिन्हें शासन से सहायता मिलती है, उनके सब कागज पत्तर झूठे बनाने पड़ते हैं। पूछने पर लोग कह देते हैं, अजी क्या करें कागद का पेट तो भरना ही पड़ता है। जब से यह पश्चिमी शासन पद्धति यहाँ प्रचलित हुई है तब से कागद का पेट बहुत बढ़ गया है, पहिले दो आदमियों में झगड़ा होता, न्यायाधीश दोनों की बात सुनकर उसे जो सत्य प्रतीत होता, वह तुरन्त निर्णय दे देता, न कोई लिखा पढ़ी, न कोई कागद पत्तर श्रेणियों का संग्रह। अब तो आप किसी पर दस रुपये का अभियोग चलाओ, तो सैकड़ों रुपये तो फीस, नकल, वकील कागज पत्रों में लग जायँगे। एक न्यायाधीश कुछ निर्णय करेगा, उसके विरुद्ध ऊपर का करेगा, उच्च न्यायालय उसे बदल देगा। सर्वोच्च न्यायालय उसका दूसरा ही निर्णय देगा। कहने का अभिप्राय इतना ही है, चाहे वकील के पास जाइये, चाहे डाक्टर के पास, चाहे अध्यापक, न्यायाधीश, मंत्री, शासक कहीं चले जाओ जब तक नमक मिर्च न मिलाओगे, सत्य बात को भी तोड़ मरोड़ कर-असत्य का पुट लगाकर-उपस्थित न करोगे तबतक निर्वाह नहीं। यहाँ झूठी बात सत्य हो जाती है, सची को वकील लोग झूठ सिद्ध कर देते हैं, आजकल तो गोस्वामीजी के शब्दों में—"झूठे लेना, झूठे देना, झूठे भोजन झूठ चबैना" ऐसा हो गया है, इसी से हमें आज कोई वर शाप समर्थ वाणी सिद्ध व्यक्ति दिखायी नहीं देता। नहीं तो सत्य बोलनेवालों के लिये कुछ भी असंभव नहीं।

किसी भी बात में मनुष्य सत्य का आग्रह कर ले, उसके सामने भगवान् को प्रकट होना ही होगा। महाराज शिवि ने

निश्चय किया था, कि चाहें जो हो, मैं अतिथि का, शरणागत का शक्ति भर मनोरथ पूर्ण करूँगा, उनके सामने कितने कितने कष्ट आये कैसे कैसे प्रलोभन आये किन्तु उन्होंने सत्य को नहीं छोड़ा। भगवान् अघोरी बनकर आये, इकलौते पुत्र का मांस माँगा, राजा से स्वयं पकाने को कहा। राजा ने पुत्र को मार कर पकाया, अघोरी ने कोपागार में महलों में आग लगा दी, क्रुद्ध हुआ, राजा से पुत्र का मांस खाने को कहा—किन्तु राजा विचलित नहीं हुए, अंत में भगवान् ने दर्शन दिये। मोरध्वज, हरिश्चन्द्र, बलि, दधीचि, रुक्माङ्गद, अम्बरीष तथा सहस्रों ऐसे धर्मात्मा सत्यपरायण व्यक्ति हो गये हैं। जिन्होंने अपने सत्य की दुहाई देकर असंभव बात को भी संभव करके दिखा दिया है। जो पुरुप अपने दया, धर्म, परोपकार, सत्यभापण, ब्रह्मचर्य, अतिथि सेवा, तप तथा अन्य सत्कर्मों पर दृढ़ रहे हैं तथा स्त्रियाँ अपने पातिव्रत पर दृढ़ रहीं हैं, उन्होंने संसार में सब कुछ करके दिखा दिया है। आज हम सीता, सावित्री, दमयन्ती, अरुन्धती, अनसूया तथा लाखों सतियों का नित्य स्मरण क्यों करते हैं ? क्योंकि उन्होंने पतिको ही परमेश्वर मानकर अपनी सम्पूर्ण इच्छायें पतिकी इच्छामें मिला दी थीं। एक सती ने तो अपने पातिव्रत के प्रभाव से सूर्य का उदय होना ही रोक दिया था। इस बात पर हम बुद्धि जीवियों को सहसा विश्वास नहीं होता, किन्तु अविश्वास की इसमें कुछ भी बात नहीं। मैं बारबार कह चुका हूँ कि जो अपनी निष्ठा पर सत्यता पूर्वक आरूढ़ है, उसके लिये कुछ भी असंभव नहीं।

लव और कुश ने अपनी निष्ठा के पीछे लक्ष्मणजी की समस्त सेना को मार डाला, हनुमान् और सुग्रीव को घोड़े की पूँछ से बाँधकर माता जानकी के पास वाल्मीकि आश्रम में ले गये।

माता को जब पता चला कि मेरे बच्चों ने मेरे देवर को तथा उनकी समस्त सेना को मार डाला। तो उन्होंने सूर्य की ओर देखकर कहा—"आज तक मैंने कभी भी मन से भी श्रीराम को छोड़कर अन्य किसी भी पुरुष का चिन्तन न किया हो, स्वप्न में भी परपुरुष को न देखा हो तो इसी सत्य के प्रभाव से लक्ष्मण अपनी समस्त सेना के सहित जीवित हो जायँ" देखते देखते लक्ष्मणजी अपनी समस्त सेना के सहित निद्रा से जागे पुरुष की भाँति उठकर खड़े हो गये। देखने में यह बात असंभव लगती है, कि इतने कहने मात्र से मरे हुए असंख्यों पुरुष कैसे जीवित हुए होंगे, किन्तु जिन्हें सत्य पर दृढ़ आस्था है, उनके लिये यह कोई असंभव बात नहीं। आज लाखों शिक्षित स्त्रियों में से कोई कह सकती है, कि हमने कभी मन से भी परपुरुष का चिन्तन नहीं किया। जो पातिव्रत के महत्त्व को नहीं जानते वे ही ऐसी बातें कहते हैं। जो सत्यकी महिमा को जानते नहीं, नित्य स्वार्थ में परायण रहते हैं और सदा स्वार्थियों का ही संग करते हैं वे त्याग और तप का महत्त्व क्या जानें ?

एक बड़े प्रसिद्ध महात्मा मुझसे कहते थे कि एक ईसाई पादरी मेरे पास आया और मुझसे बोला—"मैंने १८ या २० बार पूरी वाल्मीकि रामायण पढ़ी है।"

मैंने पूछा—"तुमने क्या समझा ?"

उसने कहा—"मैं यही समझा कि भरत सबसे मूर्ख था, भला इतना बड़ा राज्य उसे स्वयं प्राप्त हो जाय और वह उसे इस प्रकार ठुकराता फिरे। सीता के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या वह भरत से भी चढ़-बढ़ निकली। भला, उसे न तो वनवास दिया गया; उसके ससुर ने न उसे निकाला, वह १४ वर्ष व्यर्थ वनों में क्यों भटकती रही ?"

अब आप बताइये २० बार रामायण पढ़ने का यह फल है। जो त्याग, भातृस्नेह; पति प्रेम तथा बड़ों के प्रति आदर के महत्त्व को जानते नहीं वे भरतजी के त्याग स्नेह को तथा महारानी जानकीजी के पातिव्रत के सम्बन्ध में समझ ही क्या सकते हैं।

लंका में जब श्रीरामजी ने जनकनन्दिनी के प्रति कठोर वचन कहे और उनके पातिव्रत के सम्बन्ध में सबके सम्मुख शंका की, तो जानकीजी ने लक्ष्मण से अग्नि मँगाकर चिता बनवायी और हाथ जोड़कर अग्नि देव से कहा—"हे सम्पूर्ण भूतों के शरीर में विचरण करने वाले पावक देव ! यदि मैंने मन से भी श्रीराघव को छोड़कर किसी परपुरुष का चिन्तन किया हो, तो तुम मुझे भस्म कर दो।" सबने आश्चर्य के साथ देखा जगन्माता जानकी प्रज्वलित अग्नि की शिखाओं में बैठी रहीं किन्तु अग्नि ने उनके शरीर को स्पर्श तक नहीं किया, एक रोआँ भी उनका नहीं जलाया।

यह तो त्रेतायुग की बहुत पुरानी बात है, अभी की १०। १२ वर्ष पुरानी मुंगेर की एक घटना है "कल्याण" मे छपी थी और सैकड़ों आदमियों ने उसे प्रत्यक्ष देखा था। गोरखपुर की ओर के कुछ लोग पत्थर की चक्की लेकर बिहार में बेचने जाते हैं, वे लोग अपने परिवार को भी साथ रखते हैं, समूह बनाकर जाते हैं चक्की बेचते भी हैं बनाते भी हैं,एक जाति ही उनकी पृथक् है। वे एकबार मुंगेर की ओर गये। उनमें एक स्त्री गर्भवती थी। कुछ लोगों ने अपवाद उठाया कि इस स्त्री का गर्भ दूसरे किसी से है। उसने कहा—नहीं यह गर्भ मेरे पति का ही है। पंचायत बैठी पंचायत में निर्णय हुआ कि यदि यह स्त्री कहती है कि मेरे पति का ही यह गर्भ है, तो हमारी जाति में जैसे गर्म लोहे का गोला लेकर शपथ ली जाती है। वैसे यह सब के सामने शपथ ले।"

उसने इसे स्वीकार किया। अग्नि जलाकर लोहे के गोले को अंगार की भाँति लाल किया गया, फिर उस स्त्री को बुलाया गया, वह स्नान करके पवित्र वस्त्र पहिन कर आई उसके हाथ पर पीपल का पत्ता रखा गया, कच्चे सूतके धागे से उसे बाँधा गया और उसके ऊपर गरम लाल लोहे का गोला रख दिया गया और कहा— सात पग तू चल।"

गिनकर वह सात पग चली, फिर उसने मुड़कर पंचों से पूछा अब डाल दूं? सब ने जब डालने को कहा तो उसने गोला डाल दिया। प्रत्यक्षदर्शी कहता है—"वहाँ सैकड़ों नर नारियों की भीड़ लग गयी थी, सबने आश्चर्य के साथ देखा कि उसके हाथ जलने की बात तो पृथक् रही, उसके हाथमें जो पीपल का पत्ता था, वह भी नहीं जला था, यही नहीं जिस कच्चे धागे से वह बँधा था, वह भी ज्यों का त्यों था और जहाँ वह गोला गिरा था, उसके आस पास की जितनी हरी घास थी, तुरन्त जल गयी।

बुद्धिवादी इस बात पर कभी विश्वास कर सकेंगे? या वे स्त्रियाँ जो निज पति और परपति में मनसे कोई भेद नहीं मानतीं वे क्या इसे सत्य कह सकेंगी? किन्तु यह बात सत्य है और सत्य निष्ठा के सामने कुछ आश्चर्य भी नहीं। जिनको अपनी सत्यनिष्ठा पर विश्वास है वे जानते हैं, कि उनके लिये कोई भी कार्य कठिन नहीं। जब अम्बरीष का अपराध करने पर दुर्वासा मुनि के पीछे भगवान् का सुदर्शन चक्र लगा और तीनों देवोंमें से किसी ने उन्हें शरण नहीं दी, तब हारकर महामुनि परमक्रोधी दुर्वासा ऋषि उसी भगवत् भक्त सत्यनिष्ठ राजा अंबरीष की शरण में आये। उस समय अम्बरीष ने अपनी कुल परम्परा की विशुद्धि के सम्बंध में जो शपथ ली है, वह अत्यन्त महत्वकी है। राजा ने कहा—यदि हम लोगों ने दान, यज्ञ और स्वधर्म का अमत्सर होकर सत्यनिष्ठा

के साथ पालन किया हो तथा हमारा कुल ब्राह्मणों का सदा भक्त रहा हो, तो इन ब्राह्मण मुनि का दुःख दूर हो जाय। यदि हमने समस्त प्राणियों में आत्मरूप से सर्वत्र भगवान् को ही देखा हो और उस समत्व के कारण, सर्व गुणों के आश्रय भगवान् हम पर प्रसन्न हों तो ये ब्राह्मण दुःखहीन हो जायँ। * राजा का इतना कहना था, कि सुदर्शन चक्र शान्त हो गया।

जीवन में जिन्होंने कोई एक सिद्धान्त स्थिर करके जो उस पर दृढ़ रहे हैं, उनको उस दृढ़ता से-सत्य निष्ठा के प्रभाव से-सब कुछ हो सकता है।

इस विषय में एक बड़ी ही सुन्दर शिक्षाप्रद रोचक पौराणिक गाथा है। यह उस समय की बात है, जब पांडव गण वनवास के समय द्रौपदी को साथ लिये एक वन से दूसरे वन में विचर रहे थे। द्रौपदी ने कभी कष्ट सहे नहीं थे। वे सदा सुख में पली थीं सुकुमारी तथा राजकुमारी थीं, पांडवों की प्राणों से भी अधिक प्यारी थीं। अपने पतियों में अत्यंत अनुराग होने से ही वे राज्य सुख छोड़कर वन में आयी थीं। इसलिये पांडवगण उन्हें सदा प्रसन्न रखने की चेष्टा करते। द्रौपदी का वैसे तो सभी पतियों में समान अनुराग था, किन्तु भीम बली थे, वे द्रौपदी को प्रत्येक इच्छा को पूर्ण करते, द्रौपदी कैसा भी कठिन से कठिन काम बता दे। भीम अपने प्राणों का पण

---

* यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा स्वधर्मो वा स्वनिष्ठतः।
कुलं नो विप्र दैवं चेद्द्विजो भवतु विज्वरः॥
यदि नो भगवान् प्रीत एकः सर्वगुणाश्रयः।
सर्वभूतात्मभावेन द्विजो भवतु विज्वरः॥

लगाकर उसे पूरा करते। इससे द्रौपदी को जो कुछ कराना होता भीम से ही कहती।

एक दिन वन में द्रौपदी देवी ने एक बड़ा ही सुन्दर वृक्ष देखा, उस सुन्दर वृक्ष पर एक ही फल लगा था, फल देखने में बड़ा ही सुन्दर था सूर्य की किरण पड़ने से फल चमक रहा था। द्रौपदी बड़ी देर तक देखती रहीं। वे समझ ही नहीं सकीं यह कौन सा फल है, पहिले समझा वेल है। किन्तु वेल तो कठोर होता है,आम भी नहीं हो सकता पत्तों को देखकर भीम ने बताया यह वृक्ष तो आँवले का है, किन्तु इतना बड़ा आँवला मैंने आज तक देखा नहीं। फिर आँवले के वृक्ष में तो बहुत से फल होते हैं। इस पूरे पेड़ में एक ही फल है। द्रौपदी को बड़ा कुतूहल हुआ। भीम से उन्होंने कहा—"वृकोदर! इस इतने सुन्दर पके फल को देखकर मेरा मन मुग्ध हो गया है। तुम इस फल को तोड़ दो। भीमसेन के लिये क्या बात थी तुरन्त उन्होंने फल तोड़कर द्रौपदी देवीको दे दिया। द्रौपदी उस अद्भुत फल को पाकर परम प्रमुदित हुई। उन्होंने ज्यों ही भगवान् का स्मरण करके उसे पतियों और अपने लिये खाने को काटना चाहा, कि उसी समय तुरन्त भगवान् वासुदेव वहाँ उपस्थित हो गये। और आते ही कहा—"द्रौपदी ठहर जाओ, ठहर जाओ, ऐसा साहस मत करो। फल को काटना मत।"

भगवान् को देखकर द्रौपदी देवी तथा पांडव सभी परम प्रसन्न हुए। द्रौपदी देवी ने कहा—"वासुदेव! तुम बड़े सुन्दर समय पर आ गये, अभी मैं तुम्हारा स्मरण ही कर रही थी कि द्वारका में बैठे बैठे इस फल को ग्रहण करो। कैसा अद्भुत फल है, सो तुम प्रत्यक्ष ही यहाँ आ गये।"

भगवान् ने कहा—"मैं दूसरों का भाग नहीं खाता और तुम

सब को भी मना करता हूँ। हाँ, कोई शान्त हो, सात्विक हो क्रोध रहित हो, श्रद्धा से मुझे भेंट करे उसे तो मैं ग्रहण कर लेता हूँ।"

द्रौपदीजो ने कहा—"हम आपके भक्त हैं या नहीं, हम श्रद्धा से भेंट करते हैं या नहीं, इसे आपके अतिरिक्त और कौन जान सकता है ?"

भगवान् ने कहा—"तुम तो भक्त हो, और तुम जो भेंट करते हो श्रद्धा से करते हो, किन्तु यह फल तो दूसरे का भाग है।"

द्रौपदी ने कहा—"भगवन्! दूसरे का किसका है, वन के फलों पर समान रूप से सबका अधिकार है, जो उसे तोड़ ले उसी का हो गया।"

भगवान् ने कहा—"यह तो सत्य है किन्तु तुम्हें पता नहीं। इसी वनमें परम क्रोधी महर्षि दुर्वासा तपस्या करते हैं। वे वर्ष में एक बार ही फलाहार करते हैं, सो भी इसी पेड़ का फल खाते हैं। उनकी तपस्या के प्रभाव से ही यह आँवला इतना बढ़ गया है। तपस्वी की इच्छा पूर्ति नहीं होती है, तो उसे क्रोध आना स्वाभाविक ही है। ये ही दुर्वासा तपस्याके अनन्तर केवल भोजन करने ही श्रीरामचन्द्रजी के समीप गये थे। लक्ष्मणजी ने इतना ही कहा—इस समय राघवेन्द्र कोई गुप्त मंत्रणा कर रहे हैं, आप क्षण भर विश्राम करें।" बस, इतने पर ही कुपित हो गये सम्पूर्ण रघुवंश को नष्ट करने पर उद्यत हो गये। लक्ष्मण जी अपने प्राणों का पण लगाकर श्रीराम की आज्ञाके विरुद्ध भीतर गये और यह तनिक-सी घटना ही सपरिवार श्रीराम के अवनि त्याग का कारण बन गयी। सो ये दुर्वासा बड़े क्रोधी हैं। तपस्या के पश्चात् पेड़ पर आँवले को न देखेंगे, तो छूटते ही आँवला तोड़ने वाले

के सम्पूर्ण परिवार को भस्म हो जाने का शाप दे देंगे।"

इस बात को सुनकर सभी बड़े चिन्तित हुए। दुर्वासा मुनि तो कोप तथा क्रोध और शाप देने के लिये संसार में प्रसिद्ध ही हैं। धर्मराज ने चिन्तित होकर कहा—वासुदेव! अब क्या होगा? कैसे हम दुर्वासा के कोप से बच सकेंगे?"

भगवान् ने कहा—"धर्मराज! किसी प्रकार यह फल अपने स्थान पर ज्यों का त्यों लग जाना चाहिये।"

भीम ने कहा—"यह कौन-सी बड़ी बात है,मैं इसमें एक डोरा बाँधकर जहाँ से तोड़ा था, वहीं लटका दूंगा।"

भगवान् ने कहा—"डाल से टूटने पर डोरे से लटकाया हुआ फल सूख जायगा, बासी हो जायगा, दुर्वासा जान जायँगे, वे सूखे तथा बासी फल को कभी न खायँगे,प्रत्युत और अधिक क्रुद्ध होंगे। और तोड़ने वाले को तुरन्त भीषण शाप दे डालेंगे।

चिन्तित हुए धर्मराज ने कहा—प्रभो! आप ही हमारी सब विपत्तियों से सदा रक्षा करते आये हैं, आपही हमें सब दुखों से छुड़ाते आये हैं, आप ही हमें इस भावी विपत्ति से भी बचाइये आप ही हमें वह उपाय बताइये जिससे यह फल अपने स्थान पर ज्यों का त्यों पहुँच जाय और हम महामुनि दुर्वासा के शाप से बच सकें।"

भगवान् ने कहा—"धर्मराज! सत्य निष्ठा के सम्मुख सभी कुछ संभव है। हम लोग सब मिलकर अपनी-अपनी सत्य निष्ठा का बखान करें। यदि हम लोगों की निष्ठा सत्य होगी, तो उसी के पुण्य प्रभाव से यह टूटा हुआ फल पुनः अपने स्थान पर यथा पूर्व लग जायगा।

यह सुनकर सर्व-प्रथम धर्मराज युधिष्ठिर ने ही अपनी सत्य निष्ठा की साक्षी दी। वे बोले—मैंने संसारी सम्बन्धों में कभी आसक्ति नहीं का। मैंने छैः को ही अपना सगा सम्बन्धी सुहृद् समझा है। सत्यता को तो सदा मैं माता मानता रहा हूँ। ज्ञान मेरे पिता हैं, धर्म को बन्धु और दया को सच्चा सखा, शान्ति ही मेरी प्यारी पत्नी है, क्षमा ही मेरी सन्तान है, पुत्र स्थानीय है। यदि यह बात सत्य है, यदि मेरी यह मान्यता यथार्थ है, यदि मैंने अपनी मान्यता के सम्बन्ध में दम्भ या प्रमाद नहीं किया है,तो यह आँवला अपने पूर्व स्थान की ओर प्रस्थान करे*।"

सबने बड़े आश्चर्य के साथ देखा, भूमि मे रखा हुआ आँवला अधर में उठकर पेड़ की ओर बढ़ा किन्तु बीच में ही रुक गया। तब भगवान् ने कहा—"भाई! एक की ही निष्ठा से काम न चलेगा, सभी सत्य हृदय से अपना अपना आत्मविश्वास प्रकट करो। हाँ, तो भीमसेनजी अब तुम्हारी बारी है।" यह सुनकर भीम सेन कहने लगे—संसार में सब से बुरा वस्तु अकीर्ति है। जिसकी संसार में सर्वत्र अकीर्ति है, सभी जिसे बुरा कहते हैं वह जीते हुए भी मृतक के सदृश है। संसार में सर्वश्रेष्ठ वस्तु है प्रतिष्ठा। इसलिये सबका कर्तव्य यही है, कि प्राणों का भी पण लगाकर प्रतिष्ठा की रक्षा करनी चाहिये। जैसे बने तैसे आत्म सम्मान की, अपनी सत् प्रतिष्ठा की रक्षा करते रहना चाहिये। क्यों कि सदा तो कोई जीता नहीं। सभी को एक दिन अवश्य ही मरना है, जीवन का तो कोई निश्चय नहीं, आज है कल नहीं है, किन्तु प्रतिष्ठा तो अजर अमर है। वह संसार में

---

* सत्यं माता पिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया सखा।
शान्तिः पत्नी क्षमा पुत्रः षडेते मम बान्धवाः॥

तब तक बनी रहती है, जब तक आकाश में नक्षत्र तथा चन्द्रमा विद्यमान रहते हैं। यदि यह बात सत्य है और मैंने अपनी सत्प्रतिष्ठा बनाये रखने को यथा साध्य निरन्तर प्रयत्न किया हो, तो उसी के प्रभाव से यह फल अपने प्राचीन स्थान की ओर प्रस्थान करे *।"

सबने देखा फल एक हाथ ऊपर उठ गया, किन्तु अभी वह अपने स्थान से बहुत दूर था। अब भगवान् ने सव्यसाची अर्जुन से कहा—"पांडुनन्दन ! तुम भी अपनी सत्यनिष्ठा का कथन करो, तुम भी विशुद्ध हृदय से अपने आत्म विश्वास का ज्ञापन करो तब अर्जुन ने कहा—"क्षत्रियों का परम धर्म युद्ध है, यदि कोई क्षत्रिय के सम्मुख लड़ने को आवे, तो उसे आन्तरिक प्रसन्नता होती है। वह प्रसन्नता साधारण नहीं होती, जिस प्रकार ब्राह्मण को कहीं पकान्न महान्न का निमंत्रण मिल जाय, उस निमंत्रण को पाकर जैसा वह आनन्दोत्सव मानाता है, अथवा गौओं को सुन्दर कोमल नूतन हरी हरी दूब चरने को मिल जाय और उसके मिलने से उन्हें जितना आह्लाद होता है। अथवा पति परायणा पतिव्रता मुग्धा धर्मपत्नी को परदेश से पति के लौटने पर जो प्रसन्नता होती है, उतनी ही क्षत्रिय को युद्ध का अवसर आने पर होती है। क्षत्रिय होनेके कारण युद्ध का आमंत्रण पानेपर मुझे भी उतनी ही प्रसन्नता का यदि अनुभव होता हो तो यह फल अपने पूर्व स्थान की ओर प्रस्थान करे *।"

---

* प्राणं वापिपरित्यज्य मानमेवाभिरक्षतु।
अनित्यो भवति प्राणो मानस्त्वाचन्द्रतारकम्।

* आमन्त्रणोत्सवा विप्रा गावो नवतृणोत्सवाः।
भर्त्रागमोत्सवा नार्यः सोऽहं कृष्णरणोत्सवः॥

अबके फल और एक हाथ ऊपर बढ़ गया। तब भगवान् ने नकुल से कहा—"नकुल! तुम बड़े धर्मात्मा हो तुम भी अपनी सत्यनिष्ठा की प्रतिज्ञा करो, तुम भी अपने आत्मविश्वास का ज्ञापन करो।"

यह सुनकर नकुल कहने लगे—"संसार में काम बड़ा प्रबल है, यह प्राणियों के मन को निरंतर मथता रहता है, जो पशु हैं, अज्ञ हैं, वे परिस्थिति के दास होते हैं। वे अवसर आने पर जिस नारी को देखते हैं, उसी की ओर काम वासना से देखने लगते हैं, किन्तु पंडित वही है, जो केवल अपनी धर्मपत्नी को छोड़कर समस्त दूसरों की स्त्रियों को माता के समान देखता है। उनके प्रति कभी काम भाव करता ही नहीं, तथा दूसरों के धन को चाहे वह सबके सामने हो या एकान्त में हो मिट्टी के ढेले की भाँति समझता है और सभी प्राणियों में एक आत्मा को ही देखता है, वास्तव में वही देखने वाला है, यदि मैंने परदारा को माता के समान, पर द्रव्य को लोष्ठ के समान और सब प्राणियों में आत्मा को देखा हो, तो यह फल अपने पूर्व स्थान की ओर प्रस्थान करे।*

सब के देखते देखते फल एक हाथ ऊपर उठ गया, किन्तु अभी वह उस डाल से दूर था जहाँ से तोड़ा गया था। तब भगवान् ने सहदेव से कहा—सहदेव! तुम धर्मात्माओं में श्रेष्ठ हो, तुम भी अपना संकल्प लगाओ। तुम भी अपनी सत्य निष्ठा जताओ।

यह सुनकर सहदेवजी कहने लगे—"मनुष्य निरंतर हाय-हाय करता रहता है, मुझे यह करना है, वह करना है, बहुत से

---

* मातृवत् परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति॥

काम है, तनिक भी मुझे अवकाश नहीं। यह सब करता है, शरीर के लिये। किन्तु यह शरीर तो अनित्य है, क्षण-भंगुर है, नाशवान है, जीव निकल जायगा तो शरीर यहीं पड़ा रह जायगा। मिट्टी में मिल जायगा। बड़े कष्ट से जो वैभव एकत्रित किया है, वह जीवन भर साथ रहेगा भी, यह भी निश्चय नहीं। जीवन भर रह भी जाय तो मरने पर तो उसे अवश्य ही यहीं छोड़ जाना पड़ेगा। शरीर सुख और धन के अतिरिक्त प्रत्येक मनुष्य मैं मरूँ नहीं इसके लिये भी प्रयत्न करता रहता है, सो मृत्यु तो सदा सिर पर मँडराती ही रहती है। मृत्यु से कोई कहीं बच नहीं सकता। इसलिये शरीर सुख, धन और मृत्यु निवारण के लिये व्यग्र रहना व्यर्थ है, बहुत से संकल्पों के पीछे दौड़ना पागलपन है, मनुष्य का एक ही कर्तव्य है कि वह निरन्तर धर्म का ही संचय करता रहे। जितना भी जिससे बन सके इस अनित्य शरीर से नित्य धर्म को बढ़ाता रहे। यदि मैंने सच्चे हृदय से धर्म का संचय किया हो, तो यह फल अपने पूर्व स्थान की ओर प्रस्थान करे।*

सबने देखा फल तुरन्त ऊपर उठ गया, किन्तु डाली से वह अब भी दूर था, तब भगवान ने पांचाली द्रौपदी से कहा—"देवि! तुम भी अपनी सत्यनिष्ठा प्रकट करो। तुम भी बल लगाओ, जिससे फल डाली में ज्यों का त्यों लग जाय।"

तब द्रौपदी ने कहा—"स्त्रियाँ यदि किसी रूपवान सुंदर स्वस्थ, मनोनुकूल पुरुष को देखती हैं, तो उनका मन प्रायः विचलित हो जाता है। किन्तु मैं सत्य की शपथ करके कहती हूँ, कि कोई कितना ही रूपवान पुरुष क्यों न हो, वह स्वस्थ, सुंदर,

---

* अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं संनिहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः॥

युवावस्थापन्न, भला भाँति वस्त्राभूषणों से अलंकृत, श्रीमान् और सर्वगुण सम्पन्न ही पुरुष क्यों न हो, पुरुषों की तो बात क्या वह गन्धर्व या देवता ही क्यों न हो, मेरा मन अपने पाँचों पतियों को छोड़कर कभी किसी की ओर नहीं जाता। यदि यह बात सत्य हो, मैंने कभी भूल से स्वप्न में भी पर पुरुष का काम भाव से चिन्तन न किया हो, तो यह फल अपने पूर्व स्थान की ओर प्रस्थान करे।"*

यह सुनकर फल डाल से थोड़ा ही दूर रहा, अभी डाल तक पहुँचा नहीं। तब भगवान् ने कहा—भाई फल डाली के पास तक तो पहुँच गया है, किन्तु कुछ कसर है, अब मैं भी आप सब के सम्मुख अपना सत्य निष्ठा प्रकट करना चाहता हूँ।"

यह कहकर भगवान् स्वयं अपनी सत्यनिष्ठा प्रकट करते हुए कहने लगे—"देखो, भाई! संसार में यह धन ही सब अनर्थों का मूल है, धन आने पर लोभ आ ही जाता है और धन में दंभ, हिंसा, चोरी, असत्य, स्त्रीप्रसंग आदि १५ दोष हैं। धन पाकर भी जो उसमें निर्लोभ है और दोषों को आने नहीं देता, संसार में वही सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति है। ऐसा व्यक्ति धर्म कार्यों के लिये धन तथा प्राणों को न्योछावर करने को सदा उद्यत रहता है। इसीलिये मैं चार पुरुषों को सदा नमस्कार किया करता हूँ। एक तो मैं उसे नमस्कार करता हूँ, जो दुर्भिक्ष के समय बिना अपने परिवार की चिन्ता किये हुए अपने पास के अन्न को भूखों को देता रहता है। साधारण समय में भी अन्न देना श्रेष्ठ है, किन्तु अकाल के

---

* देवो मनुष्यो गन्धर्वो युवाचापि स्वलङ्कृतः।
द्रव्यवानभि-रूपो वा न मेऽन्यः पुरुषोमतः॥

समय जब लोग दाने दाने के लिये व्याकुल रहते हैं, ऐसे समय जो उदारता से अन्न दे, वह वन्दनीय है। दूसरे मैं उस दाता को नमस्कार करता हूँ जो सुभिक्ष के समय-सुकाल के अवसर पर सुवर्णदान करता है, सत्पात्रों को धन देता है। धन को लोग बड़े कष्ट से पैदा करते हैं, प्राणों को हथेली पर रखकर ही लोग धन पैदा करते हैं। देखो, सैनिक लोग धन के लिये अपने प्राणों को बेच देते हैं। राजा जहाँ मरने को भेज देता है, तुरन्त चले जाते हैं। चोर जब धन के लिये चोरी करने जाता है, तो शीश को हथेली पर रख कर जाता है। व्यापारी देश विदेशों में समुद्रों को लाँघकर धन के लिये ही जाते हैं। उनको पग पग पर मृत्यु का भय है धन के लिये लोग अगाध समुद्र में डुबकी लगाते हैं, आकाश में उड़ते हैं, पर्वतों पर चढ़ते हैं, अग्नि में कूदते हैं तथा न करने योग्य कार्यों को भी करते हैं, ऐसे धन को जो सत्पात्रों को सहर्ष दे देता है, वह मेरे लिये परम आदरणीय है। तीसरे में उनको नमस्कार करता हूँ, जो धर्म युद्ध में घर द्वार कुटुम्ब परिवार तथा धन सम्पत्ति की कुछ भी चिन्ता न करके प्राणों का पण लगाकर वीरता के साथ लड़ता है। लड़ते समय कभी पीठ नहीं दिखाता या तो युद्ध में लड़ते लड़ते प्राण त्याग कर स्वर्ग जाता है, या विजयश्री का वरण करता है, ऐसे वीर सूर्य मण्डल को भेद कर सीधे परमपद के अधिकारी बनते हैं। चौथे मैं उस व्यक्ति को नमस्कार करता हूँ, जो लैन दैन के सम्बन्ध में स्वच्छ रहता है, किसी के भी ऋण को मारने की

इच्छा नहीं करता। जिसका आचरण व्यापार में पवित्र रहता है।"

भगवान् कह रहे हैं, यदि मैंने इन चारों आदरणीय व्यक्तियों के प्रति सम्मान किया हो, इनको नमस्कार किया हो, तो यह फल अपने पूर्व स्थान को प्रस्थान करे।

सबने देखा, फल एक दम उछलकर डाली के समीप पहुँच गया, किन्तु वह अपने पुराने स्थान पर लटका नहीं। कुछ कसर फिर भी रह गयी।

भगवान् ने कहा—भाई, फल यथा पूर्व ज्यों का त्यों पेड़ में लटका नहीं। अब एक की ही कसर है, एक व्यक्ति कोई और अपनी सत्यनिष्ठा, आत्मविश्वास प्रकट करे तो फल तुरन्त लग जाय।

धर्मराज ने कहा—"भगवन् यहाँ तो हम सात ही हैं, अब एक ऐसा निष्ठावान् कहाँ से लावें। आप ही जान सकते हैं, किसकी निष्ठा से यह पूर्ववत् होगा।

भगवान् ने कहा—कर्ण ही एक ऐसा व्यक्ति है जो अपनी सत्यनिष्ठा व्यक्त करे, तो इसकी रही सही कमी पूरी हो जाय। मैं अभी कर्ण के पास जाता हूँ। यह कहकर भगवान् तुरन्त हस्तिनापुर में कर्ण के समीप पहुँचे और बोले—"भाई, कर्ण! पांडवों पर एक बड़ी विपत्ति आई है। ऐसे ऐसे द्रौपदी के कहने पर भीम ने दुर्वासा का आँवला तोड़ लिया था। हम सातों ने तो अपनी अपनी सत्यनिष्ठा की शपथ से उसे डाल तक पहुँचा दिया। यदि तुम अपनी सत्यनिष्ठा व्यक्त करो तो निश्चय

---

*दुर्भिक्षे चान्नदातारं सुभिक्षे च हिरण्यदम्।
चतुरोऽहं नमस्यामि रणेधीरमृणेशुचिम्॥

ही वह फल पूर्ववत् वृक्ष पर ज्यों का त्यों लटक सकता है।

यह सुनकर कर्ण हँसे और बोले—"माधव! आप विश्व ब्रह्मांड को अपने संकल्प से बनाते हैं पालते हैं; और संहार भी करते हैं, आपके लिये फल को लटकाना कौनसी बात है। फिर भी आप संसार में सत्यनिष्ठा का आदर्श उपस्थित करना चाहते हैं। लोगों को उपदेश देना चाहते हैं, तो आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके मैं अपनी निष्ठा बताता हूँ।"

कर्ण कहने लगे—"माधव! संसार में तीन वस्तुएँ ही बहु मूल्य हैं, धन, वीर्य और प्राण। इन तीनों के ही दान से सुख होता है, किन्तु इनका दान कुपात्रों में करने से नरक मिलता है, क्लेश उठाने पड़ते हैं। अतः मेरा सिद्धान्त है, कि धन दान तो देवार्चन करने वाले तपोनिष्ठ ज्ञानवान ब्राह्मण को करना चाहिये और वीर्यदान अपनी धर्मपत्नी को ही करना चाहिये। दूसरी सभी स्त्रियों को मातृवत् मानना चाहिये तथा प्राणों का दान अपने स्वामी के कार्य में करना चाहिये। भगवन्! यदि मैंने ये तीनों वस्तुएँ सुयोग्य पात्रों को ही दान दी हों, तो वह फल तुरन्त अपने स्थान पर लग जाय।"

कर्ण यहाँ यह कह ही रहे थे, कि वहाँ तुरन्त फल अपने स्थान पर ज्यों का त्यों लटक गया। कोई भी यह नहीं कह सकता था कि इस फल को किसी ने तोड़ा है? इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रजी ने सत्यनिष्ठा का महत्व प्रदर्शित किया।

देखने में यह बात असंभव-सी लगती है। किन्तु सत्यनिष्ठा के सम्मुख कुछ भी असंभव है नहीं। सत्यनिष्ठा के पंचभूत किंकर

---

*विप्रहस्ते धनं दद्यात् स्वभार्यासु च यौवनम्।
स्वामिधर्मेषु च प्राणं विद्यान्मम माधव!

हो जाते हैं। वह पहाड़ को चला सकता है, जल को स्तम्भित कर सकता है, पृथ्वी से जहाँ चाहे रत्न प्राप्त कर सकता है। मथुरा के सेठ लक्ष्मीचन्द्रजी के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि उनसे जहाँ पर जो जितना चाहता था धन ले सकता था। वे कहाँ से देते थे, इसे कोई जानता नहीं था। एक बार कुछ विदेशी उन्हें नौका भ्रमण के बहाने यमुना जी में ले गये और बीच धारा में जाकर उनसे कहा—"सेठजी! एक लाख रुपयों चाहिये।" उन्होंने तुरन्त नौका के नीचे हाथ किये और कहा—"माँ यमुने! देना तो सही एक लाख की थैली।" तुरन्त उनके हाथ में एक लाख रुपये की अशर्फियों से भरी थैली आगयी।

महात्माओं के सम्बन्ध में तो ऐसी लाखों कथायें प्रचलित हैं, अमुक महात्मा खड़ाऊँ पहिनकर नदी पार कर जाते थे, अमुक हजार कोशपर रहते हुए नित्य प्रयागराज स्नान कर जाते थे, अमुक कई रूप रखकर कई स्थानों में प्रकट होते थे। गंगा यमुना, सरयू, नर्मदा तथा अन्य पवित्र नदियों के किनारे रहने वाले सहस्रों महात्माओं के सम्बन्ध की ये कथायें प्रचलित हैं, कि भंडारा हो रहा था, घृत चुक गया। महात्मा ने कहा—"मैया के यहाँ से उधार माँग लाओ। जितने टीनों की इच्छा हुई जल भर लाये और वह सब घी हो गया। पीछे उतना घी उन्होंने नदी में डलवा दिया।"

पहिले मेरा इन बातों पर विश्वास नहीं था। किन्तु अनेक बातें पढ़कर बहुत-सी घटनायें प्रत्यक्ष देखकर मेरा पूरा विश्वास हो गया, कि ये बातें असंभव नहीं। कुछ धूर्त लोग पुजाने के लिये, सिद्ध साधक बनकर स्वार्थ सिद्धि के लिये ऐसी भूठी बातें भी उड़ा देते हैं, उनकी बात छोड़ दीजिये। धूर्त लोग तो सभी क्षेत्र में सभी कार्यों में धूर्तताएँ करते हैं। किन्तु मैं धूर्तों की बातें

नहीं कह रहा हूँ, जो निर्मल चित्र के सीधे, सरल, निष्कपट, दृढ़ विश्वासी, सत्यनिष्ठपुरुष हैं, वे जो चाहें सोकर सकते हैं। उनका संकल्प सिद्ध हो जाता है, किन्तु जिनके मनमें संशय है, द्विविधा है,विश्वासदृढ़ नहीं है आत्म भरोसा नहीं है। जिनके मनमें संभव असंभव का भेदभाव है, उनके तो काम उतने ही सिद्ध होते हैं। श्रीकुमारिलभट्ट की यह कथा प्रचलित है, उन्होंने बौद्धों से छिपकर छलपूर्वक विद्या पढ़ी थी, पीछे उनसे ही शास्त्रार्थ किया और कहा जिन्हें अपने सिद्धान्त पर पूरा विश्वास हो, वह इस पहाड़ से कूद पड़े। बौद्धों को तो विश्वास नहीं था इनकी वेदों पर दृढ़ निष्ठा थी, ये यह कह कर पहाड़ से कूदे कि यदि वेद सत्य हों तो मेरे चोट न लगे।' नीचे आने पर तनिक चोट लगी। लोगों ने कहा—"तनिक चोट इसलिये लग गयी, कि मैंने यदि लगा दी। यदि थोड़ा अविश्वास प्रकट होता है। वेद तो सत्य हैं ही।

वास्तव में जिनकी जितनी ही दृढ़ निष्ठा हो गयी उनकी संकल्प सिद्धि भी उतनी ही दृढ़ता से होगी। जिनको स्वयं आत्म विश्वास नहीं, अपने वचनों पर भरोसा नहीं। निष्ठा की सत्यता में पूर्ण श्रद्धा नहीं उसका संकल्प सिद्ध नहीं होता। हम लोगों में यही बात तो है, कोई दृढ़ता से नियम पालन नहीं किया श्रद्धा से मंत्रानुष्ठान नहीं किया संकल्प सिद्धि हो तो कैसे हो। केवल अपने दस स्वार्थी धूर्त प्रशंसकों से समाचार पत्रों में नाम छपा लिया। झूठी सच्ची वक्तृतादेकर दश लोगों से वाह वाह कर ली। इतने से संकल्प सिद्ध नहीं होता। एकबार ऐसा हुआ कि हमारे यहाँ यमुना किनारे गौ घाट पर एक उत्सव हुआ। भंडारे के दिन बहुत से भिखमंगे जुट गये। सब जानते थे, कि भंडारे के दिन जो जाता है उसे भोजन मिलता है। संयोग की बात कि शाम

को घृत चुक गया। कंगलाओं ने हल्ला मचाना आरंभ किया हमें दो, हमें दो। उनको विश्वास दिलाया गया बैठो पूड़ी बन रही हैं, किन्तु घृत तनिक भी न रहा। मैं भीतर गया, कार्यकर्ताओं ने बड़ी चिन्ता व्यक्त की।

मैंने हँसी हँसी में कहा। पहिले समय में साधु लोग घृत चुकने पर गंगा यमुना के जल में पूड़ी उतारते थे, तुमको कितना घी चाहिये ?" लोगों ने कहा—"दो कनस्टर होने से काम चल जायगा।" मैंने विनोद में ही कहा—"तब फिर लाओ दो कनस्टर यमुना जल देखें इसमें कुछ साधुता है या नहीं।'

मैंने यह बात केवल विनोद में कही थी। मुझ में न ऐसा कोई तप ही है न ऐसी कोई सत्यनिष्ठा या आत्मविश्वास-बात को टालने को सर्वथा हँसी में यह बात कही थी किन्तु हमारे यहाँ एक अंधविश्वासी भक्त परमहंस जी हैं। उन्होंने कहा—"बस अब क्या है, अब तो यमुना जल में पूड़ियाँ उतरेंगी। महाराज ने कह दिया।" और वे दो कनस्टर लेकर यमुना जी की ओर दौड़े। हँसी में ऐसी गंभीर बात हो गयी, मेरा तो हृदय धुकुरु पुकुरु करने लगा। मैंने कहा—अब तक जो कुछ दवी ढकी बात थी वह भी गयी। आज पोल खुल जायगी। दश लोग ताली पीटेंगे लो, बड़े सिद्ध बनते थे।" मैंने धीरे से उससे कहा—'यार हल्ला गुल्ला क्यों करते हो चुपके से एकान्त में लाकर परीक्षा कर लो। किसी से कहना मत।"

प्रह्लाद की भाँति मेरा विश्वास होता तो पाषाण जल में तैरने लगते, मीरा का विष अमृत बन गया, फिर यमुना जल का घृत बनना तो कोई बड़ी बात नहीं थी, किन्तु अपनी निष्ठा हो तब न। मैं ऊपर से तो हँस-हँस कर बातें कर रहा था किन्तु हृदय में खलबली मच रही थी, दंभ खुलने का भय दश आदमियों के

हँसने का संकोच,इतने लोगोंमें अपकीर्ति की आशंका और न जाने कितने भाव अन्तः करण में उमड़ घुमड़कर एक भयंकर तूफान की सृष्टि कर रहे थे। यह हल्ला करता हो कनस्टरों को दोनों कंधों पर रखे यमुना जी की ओर दौड़ा जा रहा था। संयोग की बात उसी समय नैनी वाले स्वर्गीय बाबू देवी प्रसादजी एक कनस्टर घी लेकर वहाँ आ गये। मैंने उसे बुलवाया—"सुनो, भाई परमहंस देखो अब मत जाओ यह समझो यमुनाजी ने ही इसे भेजा है और उसी समय पं० कृष्णानंद मिश्र भी एक कनस्टर घी लेकर आ गये। इस प्रकार भगवान् ने उस दिन पोल खुलने से बचा दी।'

मेरे कहने का अभिप्राय इतना ही है, कि जिसे स्वयं अपने पर विश्वास नहीं, जिसे स्वयं अपने वचनों और कार्यों में निष्ठा नहीं उसका शाप वरदान अथवा संकल्प पूरा होगा कैसे। इसके लिये कोई अपूर्व अनुष्ठान जप तप या घोर तप की आवश्यकता नहीं। इन साधनों से भी संकल्प सिद्ध होता है, किन्तु जिनका अन्तः करण शुद्ध नहीं है, जो निर्मल मन जन नहीं हैं, जिनमें श्रद्धा सरलता, सत्यता, संयम, शील, सदाचार तथा सहज विश्वास नहीं, वे कैसा भी जप तप अनुष्ठान करें उनको संकल्प सिद्धि नहीं होती। इसके विपरीत जिनमें ये सब गुण हैं, वे कहीं रहें, किसी भी कार्य से निर्वाह करें। किसी भी जाति में क्यों न हों इच्छा न रहने पर भी स्वाभाविक रूप से उनके संभव असंभव सभी कार्य सहजमें सिद्ध हो जाते हैं। इस विषय में मैं अपना ही देखा एक दृष्टान्त सुनाता हूँ।

यह ३०-३५ वर्ष पूर्व की बात है तब मैं झूसी में नया ही नया आया था। कोई विशेष जानता भी नहीं था। अपनी कुटी से सायंकाल को धर्म शाला पर पुराणों की कथा सुनने जाता, वहाँ

से तिवारीजी के तालाब तक टहलने जाता सायंकाल में कुटी पर लौट आता। कभी कभी नयी भूसी के कोने से निकल आता, यहाँ एक बुड्ढा भड़भूजा रहता था। अवस्था यही ६०–७० वर्ष की होगी। लची हुई कमर, काला इकहरा नंगा शरीर, घुटनों तक की धोती पहिने बैठा रहता। मैं आता कमर झुकाकर हाथ जोड़कर मोर गुसाईं मोर-स्वामी-श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ स्वामी प्रभु वासुदेव।" कुछ ठीक स्मरण नहीं। इस मंत्र में प्रभु या स्वामी कुछ मिलाकर गाता रहता हुआ नित्य प्रणाम करता। वह स्यात् जानता नहीं था, मैं फलाहारी हूँ, अतः कभी वह मुझे थोड़े चने भी दे देता। वह मेरी प्रतीक्षा में ही बैठा रहता कभी मैं दूसरे मार्ग से निलक जाता तो वह उस दिन निराश हो जाता। उसका ऐसा निःछल निष्कपट निस्वार्थ प्रेम देखकर अब मैं प्रायः नित्य ही इधर से निकलता। न मैं उससे कुछ कहता न वही मुझसे कोई बात कहता। प्रणाम करके लड़खड़ता हुआ खड़ा रहता। मैं हे नाथ नारायण वासुदेव" कहकर चला जाता।

उन दिनों मैं बिल्व फल और दूध लेता था। कुटी से डेढ़ दो मील ,दूरी पर शंख माधवजी का बगीचा था। उसमें बेलके कई पेड़ थे। एक पेड़ ऐसा था जिसमें बारहों महीने बेल लगे रहते थे। उसीमें से मैं जाकर बेल तोड़ लाता। उन्हें फोड़कर अग्नि में पका कर रख लेता। एक दो नित्य दूध के साथ लेता। बेल को यदि बिना फोड़े वैसे ही अग्नि में भूनने को दे दो तो उसमें एक प्रकार की गैस उत्पन्न होती है और वह गोले की तरह शब्द करता हुआ उछल कर दूर गिरता है, उसमें कभी कभी इतना वेग हो जाता है, कि घर में तो घर की छत को भी फोड़ देता, किसी आदमी के लगे तो उसकी मृत्यु भले ही न हो अधमरा तो अवश्य हो जायगा। इसीलिये कच्चा बेल सदा फोड़-

कर अग्नि में भूनने को दिया जाता है। पाठकों को विश्वास न हो तो कहीं दूर दो तीन बेल लेकर अग्नि में पकाने डाल दें, फिर तमाशा देखें कैसे बम के से गोले फूटते हैं। इसीलिये मैं सदा बेल को फोड़कर ही भूनने को अग्नि में देता था।

उस भड़भूजा भक्त की भक्ति देखकर मैं उसी से बेल भुजवाने लगा। वह नित्य तो भाड़ करता नहीं था। दूसरे चौथे दिन कभी करता और वह खाने भर को ही अन्न रखता उसकी झोंपड़ी में संग्रह कुछ भी नहीं था। मैं फोड़कर बेल दे आता दूसरे दिन वह भाड़ अवश्य करके तीसरे दिन मुझे दे देता। यदि संयोग से उस दिन भाड़ हुआ हो तो दूसरे ही दिन दे देता था।

एक दिन मैं और हजारी लाल मल्लाह दोनों बेल तोड़ने गये। उस दिन लगभग ४०-५० बेल तोड़कर एक बोरी में हम लाये। जाड़े के दिन थे, रात्रि हो गयी थी ९-१० बज गये थे। मैंने हजारी लाल से कहा—"भैया! तू इन बेलों को बुड्ढे बाबा को फोड़कर दे आ वह भून देगा।"

वह गया, तब तक बुड्ढा सो गया था। उसने आवाज दी—"बाबा! बाबा! महाराज ने बेल भूनने को भेजे हैं। अपनी फटी चिथड़ों की गुदड़ी में गुड़मुड़ी मारे वह पड़ा था। बेल और महाराज दो शब्द सुनते ही वह हड़बड़ाकर उठा। मोर गुसाईं! मोर स्वामी! अच्छा, बचऊ बड़ा अच्छा किया। आज ही मैंने भाड़ किया है लाओ-लाओ अभी दिये देता हूँ, रात भर में सब भुन जायँगे। इतना कहा और उसने बोरे के सब बेल भाड़ में डाल दिये और फिर जाकर अपनी गुदड़ी लपेट कर सो गया। हजारी कुछ दूर गया, उसे स्मरण आया—"अरे, मैंने बेलों को फोड़ा तो नहीं।"

वह तुरन्त लौटा और जाकर कहा—"बाबा ! बाबा ! बड़ी गलती हो गयी मैंने बेलों को फोड़ा नहीं तुम उन्हें तुरन्त निकाल कर फोड़ दो।"

अपनी गुदड़ी में ही से उसने कहा—"अब तो पड़ गये, महाराज के बेल हैं कुछ नहीं होगा, तुम चिन्ता मत करो। जाओ सोओ।" वह क्या करता चला गया। रात्रि के १२ के लगभग बज चुके थे। मैं भी सो रहा था या सोने का उपक्रम कर रहा था। हजारी ने मुझे सूचना दी। न फोड़ने की भूल पर खेद प्रकट किया और बाबा की बात भी दुहरा दी।

यह सुनकर मुझे अत्यन्त दुःख हुआ बेलों के लिये नहीं सोचा उसका भाड़ तो फूट ही जायगा संभव है कोई गोला उछल कर उसकी झोपड़ी को जला न दे। किन्तु अब कोई उपाय नहीं था। दूसरे दिन मैं यही सोचकर गया कि उसका भाड़ फूटा पड़ा होगा, किन्तु मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, वह उसी प्रकार बैठा था, मुझे देखते ही खिल उठा और बोला महाराज ! सब बेल भुन गये यह कहकर उसने बोरे में भरकर मुझे सब बेल दिये। सब को मैंने भली भाँति देखा बेल सब भुन गये थे। किन्तु एक भी बेल फूटा नहीं था। न गोला बारूद का ही काम किया।

ऐसे कोई मुझसे कहता तो मैं कभी विश्वास न करता। उसमें पचासों तर्क वितर्क करता, किन्तु जो घटना स्वयं मेरे ऊपर बीती है, उसका अविश्वास कैसे करूँ? यही कहना होगा, कि उस भक्त का दृढ़ विश्वास था। शुद्ध अन्तःकरण से सरलता के साथ भक्त के मुख से जो भी निकल जाय भगवान् उसे अवश्य पूरा करते हैं। इसीलिये महाकवि कालिदास ने लिखा है साधारण नियम तो यह है कि क्रिया के पीछे उसका अर्थ चलता है किन्तु

महात्माओं के अर्थ के अनुरूप ही क्रिया होती है।'

जैसे अन्य अवतारों में भगवान् ने जिस-जिस भाग्य शाली के यहाँ अवतार लिया है, उस उसको पूर्व जन्मों में वर दिया है, कि हम तुम्हारा तपस्या से प्रसन्न हैं, तुम वर माँगो। उन्होंने यही वर माँगा है, आप ही साक्षात् हमारे पुत्र बने। कभी-कभी तो उन्हीं के यहाँ तीन जन्मों में तीनों बार भगवान् उन्हीं के यहाँ अवतरित हुए हैं। किन्तु खंभ ने कभी तपस्या की हो उसने वर माँगा हो ऐसा उल्लेख कहीं मिलता नहीं। इससे यही सिद्ध हुआ कि भगवान् को पहिले से खंभ में से प्रकट होने की इच्छा नहीं थी। न प्रह्लादजी ने ही पहिले से सोचा था, कि मैं भगवान् को पत्थर के खंम में से प्रकट करूँगा। किन्तु जब हिरण्यकशिपु ने पूछा—"तेरा भगवान् कहाँ है ?

तब प्रह्लादजी ने कहाँ—वह सर्वत्र है, मुझमें तुम में खड्ग में खंभ में, कोई ऐसी वस्तु नहीं जहाँ मेरे भगवान् न हों।"

इस पर हिरण्यकशिपु ने शीघ्रता में कहा—क्या इस खंभ में भी है।

सरलता से प्रह्लादजी बोले—प्रभो! मेरे भगवान् खंभ में हैं ?

असुरराज ने कहा—तब वह दिखायी क्यों नहीं देता ?" अब भगवान् के सम्मुख दो प्रश्न थे, मेरे भक्त ने कहा है मैं चर में अचर में सब में समान रूप से व्यापक हूँ और इस खंभ में भी प्रत्यक्ष हूँ, तो अपने भक्त की वाणी को कृतार्थ करने तथा यह दिखाने के लिये कि मैं चर अचर में स्थावर जंगम में समान रूप से व्याप्त हूँ, मेरे भक्त सत्यनिष्ठा से-प्रेम से-जहाँ चाहें वहाँ प्रकट कर सकते हैं, भगवान नृसिंह रूप से उस खंभ से ही प्रकट हो गये।

सत्यं विधातुं निजभृत्य भाषितम्
व्याप्तिंचभूतेष्वखिलेषु चात्मनः ।
अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन्
स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम् ॥

इस प्रकार भगवान सर्वत्र हैं, सब में हैं जहाँ भी निष्ठा करो भगवान वहीं प्रकट हो जायँगे। भगवान् कर्तुम कर्तुमन्यथा कर्तुमसमर्थ हैं उनके यहाँ संभव असंभव का भेद भाव नहीं। सत्य निष्ठा में-विशुद्ध संकल्प में सब कुछ संभव है। संसार में वे लोग धन्य हैं जिनका निस्वार्थ भाव से किसी एक में निष्ठा हो गयी है। यों आप दूध में कहीं देखो मक्खन दिखायी न देगा, किन्तु आप उसे रई से, रस्सी से, वैसे हिलाकर या कल से कैसे भी मंथन करें तो उसमें से नवनीत प्रत्यक्ष पृथक् होकर प्रकट हो जायगा। इसी प्रकार संपूर्ण विश्व में भगवान् समान रूप से व्याप्त हैं, किन्तु वैसे वे दिखायी न देंगे। सत्य संकल्प के द्वारा सच्ची निष्ठा से जहाँ चाहो मंथन करो भगवान् इस जगत् से पृथक् होकर अवश्य दर्शन देंगे। इस लिये जहाँ भी फल मिलेगा। सत्य निष्ठा से ही मिलेगा। भावना के अनुसार उसमें सात्विक राजस् तथा तामस भेद हो जाय। एक ही काम है, करने के प्रक्रिया भी एक-सी है, किन्तु भावना पृथक्-पृथक् है, तो भाव के ही अनुसार फल मिलेगा। सच्चे हृदय से, शुद्ध भावना से निष्ठा पूर्वक किया हुआ काम अवश्य सफल होता है।

इसी प्रकार जो लोग भगवान् की स्तुति प्रार्थना नित्य नियम पूर्वक प्रभु प्रीत्यर्थ करते हैं। भगवान् की स्तुति प्रार्थनाओं को प्रेमपूर्वक पढ़ते हैं। लोगों को सुनाते हैं। उनमें पुनरुक्ति न समझ कर बारम्बार प्रेमपूर्वक पढ़ते हुए सिहाते हैं। दूसरों को सुनाते

हैं। उन पर भगवान् प्रसन्न होते हैं। संसार में वाणी की सार्थकता इसी में है कि उसके द्वारा भगवान् के गुणानुवाद गाये जायँ, प्रभु की स्तुति की जाय। जगदाधार श्यामसुन्दर के पादपद्मों में यही प्रार्थना है कि हम सत्यनिष्ठा के साथ उन्हीं की स्तुति प्रार्थना करें। सब रूपों में सर्वत्र उन्हें ही देखें।

छप्पय

सत्य रूप ही पिता सत्य माता सुत भ्राता।
सत्य सकल सम्बन्ध सत्य सबरे सुखदाता॥
सत्य सत्य गुरुदेव सत्यपथ जो दरसावें।
सत्य अतिथि आचार सत्य प्रतिमा बनि जावें॥
सत्यरूप सब जगत है, रमे सत्य सरवेश हैं।
सचर अचर सब सत्य प्रभु, सत्य स्वरूप महेश हैं॥

प्रत्यक्ष-अजित-स्तुति

(६५)

अजातजन्मस्थितिसंयमाया–
गुणाय निर्वाणसुखार्णवाय ।
अणोरणिम्नेऽपरिगण्यधाम्ने,
महानुभावाय नमो नमस्ते ॥*
(श्री भा० ८ स्क० ६ अ० ८ श्लो०)

छप्पय

अज इस्तुति सुनि प्रकट भये प्रभु सब हरषाये ।
परे दण्डवत अमर विनययुत वचन सुनाये ॥
देव ! सकल आधार चराचर पूजित प्रभुवर !
रचि पचि जग अज खेल खिलाओ हर विश्वम्भर ॥
काठ-अगिनि पय धेनु भू-तैं जलकन जैसे करैं ।
त्यों सब-विषयनि तैं तुमहिँ, प्रकटित करि [illegible] करैं ॥

सर्व शक्तिमान् सर्वान्तर्यामी भगवान् जब स्तुति प्रार्थना से

---

* देवताओं की स्तुति से प्रसन्न प्रकट होने पर अजित भगवान् की स्तुति करते हुए ब्रह्माजी कह रहे हैं—"न जिसका जन्म है न स्थिति और न प्रलय ही, जो अगुण है, निर्वाण सुखसागर है, जो अणु से भी अणु है। अपरिच्छिन्न स्वरूप है उन महानुभाव श्रीहरि को नमस्कार है।"

प्रसन्न होकर अपना सगुण साकाररूप दिखाते हैं, उपासक के सम्मुख प्रत्यक्ष प्रकट हो जाते हैं, तो उपासक के हर्ष की सीमा नहीं रहती। वह प्रेम में विह्वल होकर गद्गद वाणी से उसकी स्तुति करने लगता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब ब्रह्मादि देवों ने निराकार सर्वव्यापक प्रभु की भक्तिभाव से स्तुति की, तो उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर तुरन्त वहीं उसी स्थान पर भगवान् प्रत्यक्ष प्रकट हुए। उस समय उनकी शोभा अनुपम थी। उनका प्रत्येक अङ्ग प्रत्यंग मनमोहक था, वस्त्राभूषणों से वे सुसज्जित थे, वे अपने विशुद्ध प्रकाश से दशों दिशाओं को प्रकाशित कर रहे थे। भगवान् की ऐसी दिव्य झाँकी करके ब्रह्माजी, शिवजी तथा अन्यान्य सभी देवगण परमप्रमुदित हुए सबने भगवान् को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। फिर सबकी ओर से लोकपितामह ब्रह्माजी भगवान् की स्तुति करते हुए कहने लगे।

ब्रह्माजी कहते हैं—"हे प्रभो! संसार में सबका जन्म होता है, नियतकाल तक स्थिति रहती है, पुनः प्रलय हो जाता है। आपका न जन्म ही होता है, न प्रलय ही स्थिति का भी काल नियत नहीं। आप कालातीत हैं सदा सर्वदा एक से ही रहने वाले हैं, मोक्ष का जो आनन्द है, अपवर्ग का जो सुख है, निर्वाण का जो प्रमोद है उसके आप समुद्र हैं बड़े से भी बड़े और छोटे से भी छोटे हैं, अर्थात् आप में बड़े छोटेपन का भेदभाव किया ही नहीं जा सकता। आप अपरिगणधाम हैं, अपरिछिन्न स्वरूप हैं, अपारतेज युक्त हैं, आपका प्रभाव अपरिमित है, आपकी महिमा महान् है, ऐसे सर्व समर्थ प्रभु को हम बारम्बार प्रणाम करते हैं।

हे पुरुषोत्तम! आपका यह दिव्य स्वरूप परम पूजनीय है, वैदिक विधि से उपासना करने वाले हों, तान्त्रिक विधि से करने

वाले हों अथवा जिस किसी मार्ग द्वारा श्रेय की कामना करने वाले हों सबके लिये यह रूप अर्चा करने योग्य है, सभी साधकों को इस अनुपम रूप की पूजा करनी चाहिये। स्वामिन्! यथार्थ धारण पोषण करने वाले विधाता तो आप ही हैं। समस्त विश्व आपके ही अन्तर्गत निहित हैं, इस आपके अनुपम अनूप रूप में मुझे त्रिभुवन के समस्त चराचर जीव सम्पूर्ण देवगण और मैं स्वयं ब्रह्मा भी दिखायी देता हूँ। इस विश्वमय स्वरूप में मुझे त्रैलोक्य दृष्टिगोचर हो रहा है।

आप ही इस जग के उपादान कारण हैं, जिससे जो वस्तु बनती है, बनने पर भी वह बनी रहती है, और वस्तु की आकृति नष्ट हो जाने पर भी जो बना रहता है उसे उपादान कारण कहते हैं। जैसे घट का उपादान कारण है मिट्टी। निमित्त कारण दंड चक्रकुलालादि। आप इस जगत् के निमित्त कारण भी हो और उपादान कारण भी हो, अभिन्न निमित्तोपादान कारण होने से आपने ही सब बना लिया है प्रकृति तो पीछे हुई आप तो प्रकृति से भी परे हैं। यह जगत् उत्पन्न होने से पूर्व आपमें लीन था। उत्पन्न होकर आप में ही स्थित हो जायगा। अन्त में आप में ही विलीन हो जाता है। जगत् उत्पन्न होता है नष्ट हो जाता है। किन्तु आप न उत्पन्न होते हैं, न नष्ट होते हैं। तीनों काल में समरस रहते हैं, तीनों कालों की कल्पना भी पीछे ही हुई है। आप जगत् के आदि में थे, मध्य में भी हैं और अन्त में भी रहेंगे।

स्वामिन्! यद्यपि यह संसार गुणों का कार्य है, त्रिगुणात्मक है, किन्तु विवेकी सदा सावधान रहने वाले सदा साधन में संलग्न रहने वाले अपने विशुद्ध मनसे इस सगुण जगत् में भी आप निर्गुण को ही निहारते हैं आपके उसी विशुद्ध गुणरहित रूप का साक्षात्कार करते हैं, क्योंकि संसार आपके बिना कुछ नहीं है। जैसे जल अपनी शीतलता के ही प्रभाव से जमकर हिम हो

गया है। अज्ञ पुरुष तो रजत के सदृश उस चमकीले पदार्थ को कुछ और ही समझते हैं किन्तु रहस्य को जानने वाले जानते हैं, कि इसमें जल के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। इसी प्रकार आपने अपनी माया का आश्रय लेकर इस नाना नाम रूप वाले जगत् की रचना कर ली है और फिर उसमें ऐसे ओतप्रोत हो गये हो, कि इसमें से आपको विलग कर लेना कठिन है, जैसे बीज ही वृक्ष वन जाता है, वृक्ष वन जाने पर बीज सम्पूर्ण वृक्ष में अनुप्रविष्ट हो जाता है, फिर खोजने पर बीज नहीं मिलता। फिर भी मर्मज्ञ पुरुष जान ही लेते हैं, कि यह बीज से बना है युक्तिपूर्वक कालान्तर में बीज को खोज लेते हैं।

हे दयालो! काष्ठ में अग्नि कहाँ छिपी है, इसे कोई न देख सकता है, न बता सकता है, किन्तु निरन्तर घर्षण करने से आपसे आप ही अग्नि प्रकट हो जाता है। गौ की किस नस में दूध भरा है, इसे कोई प्रत्यक्ष देख नहीं सकता, किन्तु ब्याई गौ को भली भाँति खिला और पहुना कर दुहा जाय तो उसमें से मीठा मीठा दूध अवश्य निकल आवेगा। भूमि में कहाँ अन्न छिपा है, इसे आँखें देख नहीं सकतीं, किन्तु उर्वरा भूमि को जोतकर उसमें बीज बोया जाय तो उससे अन्न उत्पन्न किया जा सकता है, भूमि को खोदते रहो, तो उसके नीचे से जल निकल ही आवेगा। व्यापार में कहाँ रुपये पैसे छिपे हैं, इसे कौन देख सकता है, किन्तु उद्योग करने से व्यापार से आजीविका प्राप्त हो ही जाती है। इसी प्रकार जगत् में आप दिखायी नहीं देते, किन्तु साधकगण, सच्ची भावना से विशुद्ध बुद्धि द्वारा इसी जगत् में आपका साक्षात्कार करके सुखी होते हैं और आपका विविध भाँति से वर्णन करके सभी को सुखी करते हैं।

हे पद्मनाभ! जैसे वनराज चारों ओर अग्नि लग जाने से

अशान्त हो जाता है; झुलसने लगता है, किन्तु यदि वह दौड़कर पतितपावनी मुनिमनहारिणी गंगाजी के बीच में चला जाता है, तो उसका सभी ताप संताप शान्त हो जाता है। हम भी अधिकार पाकर अधिकारों के रक्षा की चिन्ता मे सदा जलते रहते हैं, किन्तु आज आपका दर्शन पाकर हम सब सुखी हुए हैं, गंगाजी जिनके चरणों का धोवन मात्र हैं, ऐसे आपके दर्शनों से हमें परमानन्द की प्राप्ति हुई है।

नाथ! हम सब तो स्वार्थी हैं। हे बाहर भीतर समानभाव से रहने वाले भगवन्! हम सब देवता, लोकपाल जिस कार्य के निमित्त आपके चरणों में उपस्थित हुए हैं, वह कार्य पूर्ण होना चाहिये। आप पूछेंगे- वह कार्य बताओ तो सही, अपना अभिप्राय व्यक्त तो करो। किन्तु स्वामिन्! कहें तो उसे जो जानता न हो, आप तो घट-घट के वासी हैं, सबके भीतर बाहर की सभी बातें जानते हैं,सबकेमनोगत भावों को पहिचानते हैं। हम सबको भी जानते हैं, जानते क्या हैं हम तो आपके अंश ही हैं अंशी तो आप ही हैं ये सभी लोकपाल, समस्त देवता सभी प्रजापति मैं ब्रह्मा, ये महादेव जी तथा अन्य मनु आदि सभी इसी प्रकार हैं जैसे अग्नि से उत्पन्न विस्फुलिंग। विस्फुलिंग अग्नि से पृथक् नहीं है। यदि वे अपना पृथक् अस्तित्व समझें तो उनका कल्याण नहीं हो सकता।

स्वामिन्! अब अधिक आपसे क्या निवेदन करें, आप सबके हिताहित की बात जानते हैं, जिस कार्य से आप सब देवता प्रजापति मनु, ऋषि मुनियों का भला हो, ब्राह्मणों का भला हो और सम्पूर्ण संसार का भला हो, वही कार्य कीजिये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! ब्रह्मादि देवों की इस प्रकार स्तुति करने पर भगवान् ने उन्हें समुद्र मन्थन की सम्मति दी।

देवता तथा असुर मिलकर समुद्र मन्थन करने लगे। समुद्र मंथन करने पर सर्वप्रथम उसमें से हालाहल विष उत्पन्न हुआ। अब उस विष को कौन पान करे? भगवान् विष्णु की सम्मति से समस्त देवतागण, भगवान् भोलेनाथ नीलकण्ठ शङ्कर के समीप गये। वहाँ जाकर उन्होंने शिवजी की जैसे स्तुति, की उस स्तुति का वर्णन मैं आगे करूँगा। आप सब समाहित चित्त से उसे श्रवण करने की कृपा करें।"

छप्पय

पदुमनाभ! लखि मुदित भये तव पद पङ्कज-रज।
ज्यों दावानल जरत गंगतट सुखी होहि गज॥
इच्छा पूरन करें आपु घटघट की जानें।
हैं हम सब प्रभु अंश पृथक् अपने कूँ मानें॥
अजित कहैं—"मन्थन उदधि, करो अमृत हित सकल तुम।
मथन करें सुर असुर जब, भयो भयंकर विष प्रथम॥

पद

दरस करि मुदित भये हम सबहीं।
बार बार बन्दें पद पङ्कज, सङ्कट हमरे हरहीं॥१॥
जग पालक रक्षक संहारक, तुम अज हरि शङ्करहीं।
सगुनरूप अतिशय मनमोहक, तुम ही हो निरगुनहीं॥२॥
घरसन, दोहन, करषन करिकें, मिलत अगिनि पय कनहीं।
काठ, धेनु, पृथवी तैं पावें, तस विषयनि तैं तुमहीं॥३॥
हम सब अंश आपु हो अंशी, जानन सबके मनहीं।
जाते होहि विघ्न सुर कारज, करें नाथ सो अबहीं॥४॥

प्रत्यक्षकृत अजित स्तुति

ब्रह्मोवाच

अजातजन्मस्थितिसंयमाया,
गुणाय निर्वाणसुखार्णवाय ।
अणोरणिम्नेऽपरिगण्यधाम्ने,
महानुभावाय नमो नमस्ते ॥१॥

रूपं तवैतत् पुरुषर्षभेज्यं,
श्रेयोऽर्थिभिर्वैदिकतान्त्रिकेण ।
योगेन धातः सह नस्त्रिलोकान्,
पश्याम्यमुष्मिन्नु ह विश्वमूर्तौ ॥२॥

त्वय्यग्र आसीत् त्वयि मध्य आसीत्,
त्वय्यन्त आसीदिदमात्मतन्त्रे ।
त्वमादिरन्तो जगतोऽस्य मध्यं,
घटस्य मृत्स्नेव परः परस्मात् ॥३॥

त्वं माययाऽऽत्माश्रयया स्वयेदं,
निर्माय विश्वं तदनुप्रविष्टः ।
पश्यन्ति युक्ता मनसा मनीषिणो,
गुणव्यवायेऽप्यगुणं विपश्चितः ॥४॥

यथाग्निमेधस्यमृतं च गोषु,

भुञ्यन्नमम्बूद्यमने च तृप्तिम् ।
योगैर्मनुष्या अधियन्ति हि त्वां,
गुणेषु बुद्ध्या कवयो वदन्ति ॥५॥
तं त्वां वयं नाथ समुज्जिहानं,
सरोजनाभातिचिरेप्सितार्थम् ।
दृष्ट्वा गता निर्वृ तिमद्य सर्वे,
गजा दवार्ता इव गाङ्गमम्भः ॥६॥
स त्वं विधत्स्वाखिललोकपाला,
वयं यदर्थास्तव पादमूलम् ।
समागतास्ते वहिरन्तरात्मन्,
किं वान्यविज्ञाप्यमशेषसाक्षिणः ॥७॥
अहं गिरित्रश्च सुरादयो ये,
दक्षादयोऽग्नेरिव केतवस्ते ।
किं वा विदामेश पृथग्विभाता,
विधत्स्व शं नो द्विजदेवमन्त्रम् ॥८॥

विषपान करनेको भूतभावन भवानीपति की स्तुति

(६६)

देवदेव महादेव भूतात्मन्भूतभावन ।
त्राहि नः शरणापन्नांस्त्रैलोक्यदहनाद् विषात् ॥❀
(श्रीभा० ८ स्क० ७ अ० २१ श्लो०)

छप्पय

कौन करै विष पान कहैं हरि जाओ हरपै ।
मिलि सब सुरगन गये तुरत कैलाश शिखर पै ॥
इस्तुति करिबे लगे जयति जय सुखकर शङ्कर ।
हम सुरगन अति दुखित भयो विष प्रकट भयंकर ॥
आपु जनक, पालक, प्रभो ! हरि, हर, अज, मनु सकलसुर ।
प्रकृति, प्रान, मन, करन धी, सत्य, धरम, ऋत चर अचर ॥

प्रकृति में जहाँ संघर्ष है, मंथन है, वादी प्रतिवादी दोनों मिल कर अपने स्वार्थ साधन के निमित्त एक स्वार्थ में रत होते हैं, उस संघर्ष में सबसे पहिले विष उत्पन्न होता है, महर्षियों

❀ विषपान के निमित्त देवतागण शिवजी की स्तुति करते हुए कह रहे हैं—हे देवदेवेश ! हे महादेव ! हेभूतात्मन ! हे भूतभावन ! आप हम सब शरण में आये हुए शरणागतों की त्रैलोक्य को अपने विषसे जलाने वाले इस हालाहल से हमारी रक्षा करो ।

ने भी जब राजा वेन के शरीर का मन्थन किया तो सर्वप्रथम पाप पुरुष पैदा हुआ तदनन्तर महाराज पृथु उत्पन्न हुए। अमृत के पूर्व विष होता है, अमृत के इच्छुक तो सभी हैं, जो प्रसन्नता से विषको पीजाय और किसी पर अपनी बलपूर्वक महत्ता को न लादना चाहे, वही महान् है, वही समस्त देवों का ईश्वर महेश्वर है, वही सर्वश्रेष्ठ और सर्वपूज्य है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! अजित भगवान् की आज्ञा से जब असुरों और सुरों ने मिलकर मन्दराचल से समुद्र का मंथन किया और सर्व प्रथम विष उत्पन्न हुआ, तो अजित भगवान् की सम्मति से सभी सुरगण मिलकर देवाधिदेव सतीपति कैलाशवासी भगवान् शंकर के समीप गये। सबने भगवान्को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और सभी भगवान् भोलेनाथ की स्तुति करने लगे।

शिवजी की स्तुति करते हुए समस्त प्रजाओं के पति देवता गण कहने लगे—"हे समस्त देवताओं से अधिक दीप्तिवाले ! हे सम्पूर्ण सुरोंमें सर्वश्रेष्ठ ! हे सभी प्राणियों के आत्मस्वरूप ! हे भूतभावन् ! हे चराचर जगत को प्रलय करने वाले ! समुद्र मथते समय सर्व प्रथम विष उत्पन्न हुआ है, प्रभो ! हम उद्योग तो कर रहे थे अमृत के निमित्त और उत्पन्न हो गया विष। विष भी साधारण नहीं है, अत्यन्त तीव्र हालाहल विष है, इसकी विषैली लपटों से हम सब जले जा रहे हैं। इसीलिये आपकी शरण में आये हैं। आप शरणागतवत्सल हैं, शरण में आये हुए पापी प्राणियों का भी हे पशुपति ! आप पालन करते हैं, अतः हम भयभीत शरणागतों की भी आप रक्षा करें।

प्रभो ! आप चाहे जिसे बन्धन में पड़ा रख सकते हैं, आप चाहे जिसे विमुक्त बना सकते हैं, क्योंकि बन्धन तथा मोक्ष

के आप ही एकमात्र स्वामी हैं, ईश्वर हैं, प्रभु हैं, अधीश्वर हैं। आपसे बढ़कर कोई दूसरा देव नहीं। इसीलिये कुशल पुरुष आप ही प्रपन्नार्तिहर शरणागत प्रतिपालक जगद्गुरु प्रभु की प्रेमपूर्वक पूजा किया करते हैं, आपकी अर्चना करते हैं, आपके ही गुण गाते हैं, आपकी ही अनन्य भाव से स्तुति करते हैं।

हे विभो ! यह त्रिगुणात्मिका माया आप की चेरी है। आप जब इसके आश्रय से जगत् की रचना करना चाहते हैं, तो स्वतः ही ब्रह्मा बनके इस जगत् को बातकी बातमें रच देते हैं, जब आप की इच्छा इसके पालन पोषण की होती है, तो तुरन्त विष्णु बनके अपने ही रचे जगत् का आप ही पालन करते हैं। जब अन्त में संहार की इच्छा होती है, तो रुद्र रूप रखकर अपने ही द्वारा उत्पन्न किये,अपने ही द्वारा पालेपोसे जगत् का संहार भी करदेते हैं। न आपको उत्पत्ति पालने में सुख और न संहार कार्यमें दुःख। यह गति धाराप्रवाह से चलती ही रहती है। दूसरों का ज्ञान किसी के आश्रय से होता है, किन्तु आपको ज्ञानके लिये किसी अन्य का आश्रय लेना नहीं पड़ता। आपसे अन्य कोई है भी तो नहीं। अतः आप स्वतः सिद्ध हैं। आप स्वदृक् हैं। समस्त रूप आपके हैं, सभी नाम आपके हैं। देवता भी आप के ही रूप हैं, आपने ही देवताओं का वेश बना लिया है। मनुष्य, पशु, पक्षी, तिर्यक्, लता, गुल्म तथा जितने चराचर जीव हैं, सबके उत्पत्ति स्थान आप ही हैं। आप गुह्याति गुह्य हैं, परात्परतर परब्रह्म परात्मा आप ही हो। सम्पूर्ण जगत के एक अधीश्वर आप ही हैं, आप अपनी असंख्य शक्तियों द्वारा असंख्य रूप रखकर चराचर जगत् के रूप में प्रतीत हो रहे हो। समस्त ज्ञान वेदों द्वारा उपलब्ध होता है, वे सम्पूर्ण वेद आपसे उत्पन्न हुए हैं, वेदों के आदि स्रोत आप ही हैं। प्रकृति में आपकी प्रेरणासे क्षोभ होने पर तीनों गुणोंकी

साम्यावस्था समाप्त होने पर जो सर्व प्रथम तत्व हुआ वही महत्तत्व कहलाया, वह महत्तत्व आपके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। महत्तत्व से ही सात्विक अहंकार राजस अहंकार और तामस अहंकार इस प्रकार त्रिविध अहंकार की उत्पत्ति हुई, वह भी आपने ही तीनों रूप रख लिये। फिर त्रिविध अहंकार से ही मन, समस्त इन्द्रियाँ, पंच भूत, पंचतन्मात्रायें तथा पंच प्राण इन सबकी उत्पत्ति हुई। इन सबके भी कारण आप ही हैं। जैसे बीज से अंकुर, स्कन्ध, शाखा, पत्ती फूल फल उत्पन्न होते हैं। शाखायें उपशाखायें, पत्ते तथा फूल जिस प्रकार वृक्ष से भिन्न नहीं उस प्रकार ये सब प्रकृति की विकृति आपसे भिन्न नहीं। सबको कल न करने वाला काल आपका ही स्वरूप है। संकल्प आप के ही द्वारा उठता है। वह भी आपसे भिन्न नहीं। समस्त विश्व को धारण करने वाला धर्म आपका ही स्वरूप है, क्योंकि सबको धारण आप ही कर सकते हैं। सत्य तथा सूनृता वाणी ऋत आपही हैं। इस प्रकृति से यह सम्पूर्ण प्रपञ्च हुआ है, उस प्रकृति को भी परावर विद्या में पारङ्गत पंडित गण आप के ही आश्रित कहते हैं। उनका कथन है, कि जैसे बीज के विना भूमि का उर्वरापन, प्रकाश, जल ये वृक्ष बनाने में समर्थ नहीं उसी प्रकार आपके विना प्रकृति कुछ कर ही नहीं सकती। वह तो स्वयं जड़ है, आप ही उसको प्रजनन शक्ति प्रदान करते हैं, वह तो सर्वथा आप के आश्रित है।

हे विराट् स्वरूप! संसार में जो भी कुछ सुना जाता है। देखा जाता है तथा अनुभव किया जाता है सब आप ही हैं। आप विश्वरूप हैं। यह जगत् ही आपका मूर्त रूप है। स्वर्ग ही आपका सिर है। सबको भक्षण करने वाले, सब देवताओं को हव्य पहुँचाने वाले सर्व देवमय अग्निदेव ही आप

का मुख है, उसीसे आप खाते हैं। लोग आपको पंचमुख कहते हैं। सुनते हैं, पहिले ब्रह्माजी के भी पंच ही मुख थे, आप ने उन्हें चतुर्मुख बना दिया। तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात, वामदेव और ईशान ये जो पाँच उपनिषदें हैं जिनसे अड़तीस मंत्रों का समूह उत्पन्न हुआ है, वे पाँच उपनिषदें ही मानो, आपके पाँच मुख हैं। ये दिशायें ही आपके सुनने वाले कान हैं, सूर्य नेत्र हैं। आपको त्रिनेत्र कहते हैं, आपके प्रत्येक मुख में तीन नेत्र हैं, सो सत्व, रज और तम ये तीनों गुण ही आपके तीन नेत्र हैं। वायु आपकी श्वास है। वरुण आपकी रसना है। आकाश नाभि है। समुद्र आपकी कुक्षि है। पृथिवी आपका चरण है। गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती ये वेद की सात छंद ही आपकी सप्त धातुयें हैं। जल ही आपका वीर्य है, समस्त उच्च नीच जीवों का जो आश्रय है वही अहंकार है। समस्त पर्वत ही आपका अस्थि समूह है। जितनी ओषधियाँ जिन्हें खाकर चराचर जीव जीते हैं, वे समस्त ओषधियाँ तथा लतायें आपके रोम हैं। धर्म आपका हृदय है, *शिव नामक,जो स्वयं प्रकाश परमार्थ* तत्व है वही मानो आपकी उपरत अवस्था है। अधर्म आप की छाया है, जिनकी दम्भ लोभ, पाखण्ड आदि तरंगों के द्वारा नाना प्रकार की सृष्टि होती है गायत्री आदि छन्दों वाला जो सनातन वेद है वही आपका ईक्षण है, देखना है, आप स्वयं सांख्यमूर्ति हैं, शास्त्रकर्ता हैं, आपका विचार ही वेद है।

हे कैलासपते! आपकी महिमा अचिन्त्य है, क्योंकि जीव तो त्रिगुण के विषय में ही सोच सकता है, और आप हैं गुणातीत। सत्व रज तथा तम का लेशमात्र भी आपमें नहीं है। आपमें छोटे, बड़े, ऊँच नीच तथा सम विषम किसी भी प्रकार का भेदभाव है ही नहीं। इसीलिये तो समस्त देवतागण, लोकपाल

मनु, प्रजापति, इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु तथा कोई भी देव आपकी महिमा का पार नहीं पा सकते । प्रभो ! जो काम सबको पीड़ा देता था, सबको व्यथित बना देता था, उस कामदेव को आपने क्षण में नष्ट कर दिया । त्रिपुरासुर ने आकाश में तीन पुर बना कर देवताओं को अत्यन्त क्लेशित कर रखा था कोई उन तीनों पुरों को नष्ट करने में समर्थ ही नहीं होता था, किन्तु आपने उन तीनों पुरों को नाश करके सभी के दुखों को दूर कर दिया, तभी से आप त्रिपुरारि के नाम से प्रसिद्ध हुए। अब हे शङ्कर ! इस कालकूट विष से भी हम सबकी रक्षा कीजिये। इसके भय से भयभीत बने हम सबको अभय प्रदान कीजिये।

हे त्रिपुरान्तकारी ! हे कामारि ! इन छोटे छोटे कार्यों को कहकर हम आपकी स्तुति नहीं कर रहे हैं। आपकी स्तुति यह हो भी क्या सकती है, जो पहाड़ों को उड़ा ले जाय, उससे कहो, कि आपने एक तृण को हटा दिया, तो यह स्तुति न होकर निन्दा ही है, जब प्रलय काल में आप इतने बड़े विश्व ब्रह्माण्ड को तीसरा नेत्र खोलकर भस्म कर देते हैं, तो आपके लिये तीन पुर तथा काम आदि का भस्म करना कौन सी बड़ी बात है ?

स्वामिन् ! कुछ लोग कहते हैं, आप तो नरमुण्ड धारण करके स्मशान में वास करते हैं, चिताभस्म लगाकर तांडव नृत्य करते हैं, भगवती उमादेवी के साथ आसक्त होकर रमण करते हैं, नग्न रहते हैं, अशिव रूप रखकर भूतप्रेत, पिशाचों के संग क्रीड़ा करते हैं, ऐसे अज्ञ जो आपको कामासक्त तथा क्रूर कहते हैं वे अज्ञ हैं, निर्लज्ज हैं, इन्होंने आपके रहस्य को समझा नहीं । आपके यथार्थ तत्व से वे अल्पज्ञ, अनभिज्ञ हैं। आप तो स्वयं साक्षात् शिव स्वरूप हैं । बड़े बड़े आत्मा में रमण करने वाले आत्माराम गुरुजन ऋषि मुनिगण अत्यन्त

श्रद्धा भक्ति के सहित आपके युगल अरुण चरणों का निरन्तर ध्यान करते रहते हैं।

स्वामिन् ! आपके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। यह जो कार्य कारण रूप दृश्य जगत् है, इसका कारण माया है, माया के ही द्वारा इस जगत् की रचना है, जगत् से परे माया है और माया से भी परे आप हैं,आप मायातीत हैं,महेश्वर हैं ब्रह्मादिक देव भी जब आपकी स्तुति करने लगते हैं, तो सहसा सहम जाते हैं क्योंकि आप तो भूमा हैं, क्या कहकर किन शब्दों में वे आपकी स्तुति करें। जब हम सबके पितामह ब्रह्माजी की यह दशा है, तो हम सब तो उनके पुत्रों के पुत्र पौत्र हैं, हम किस प्रकार स्तुति करने में समर्थ हो सकते हैं। इतना सब होने पर भी आपकी स्तुति से कोई उपरत नहीं हुए। सभी ने यथाशक्ति, यथामति आपकी स्तुति की ही है। इसी प्रकार हमने भी अपनी अल्प शक्ति के अनुसार आपका गुणगान किया ही है। वह चाहे जैसा हो। आप गुणातीत हैं, निर्गुण हैं, निराकार हैं। आपका न यथार्थ कोई रूप है न कोई निश्चित आकार ही। फिर भी प्रभो ! हम सब तो सगुणोपासक हैं आपका जो भस्माव-गुंठित पंचवक्त्र त्रिनेत्र आदि दिव्य साकार स्वरूप है यही हमको अत्यन्त प्रिय है, उस निर्गुण निराकार रूप को देखने में तो हम समर्थ नहीं। आप विश्व के कल्याणार्थ अव्यक्त से व्यक्त बनकर निर्गुण से सगुण होकर तथा निराकार से साकार रूप रखकर सदा सर्वदा सभी के संकटों को शमन करते रहते हैं, इस समय हमारे ऊपर भी संकट आ गया है। समुद्र में से यह हालाहल विष निकल कर हमसबको महान् कष्ट दे रहा है,आप इसका पान करके हम शरणागतोंके दुःख को दूर कीजिये हम भयभीतों के भय का भंजन कीजिये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! देवगण तथा

स्तुति सुनकर सतीजी की सम्मति लेकर शिवजी समुद्र तटपर गये और उस विष को पान कर गये। यह मैंने आपसे शिवजी की स्तुति कही। अब अमृत वितरण करने के लिये जैसे भगवान् ने मोहिनी रूप रखा और उसकी प्रशंसा सुनकर उस रूप के दर्शनों के लिये शिवजी ने जैसे भगवान् विष्णुकी स्तुतिकी उस कथा प्रसंग को मैं आगे कहूँगा।

छप्पय

पद भू गिरि सब अस्थि वरुन रसना है भगवन।
करन दिशा गतिकाल अगिनि मुख शशि है तव मन॥
जल वीरज तव नेत्र नाभि आकाश पुरारी।
स्वास वायु सिर स्वरग छंद सब धातु तिहारी॥
सब सुरगुन प्रभु सर्व मय, नहिं मन वानी विषय तुम।
होहिं अवतरित जगतहित, आये सब सुर शरन हम॥

पद

भोला! विष को गोला खाओ।
सबके स्वामी अन्तरयामी सबकूँ अभय बनाओ॥१॥
तुम हरिहर अज सुर परजापति, तुम ही शिव कहलाओ।
तुम ही प्रकृति पुरुष परमेश्वर, जगकूँ तुमहिं बनाओ॥२॥
तुम विराट विश्वेश विधाता, विधिकूँ वेद बताओ।
जल वीरज तुमरो शंकर हर, तातें सृष्टि रचाओ॥३॥
जब जब विपति परति है हम पै, तब तब दरश दिखाओ।
दुखित सकल सुर परे विपति में, विपतें विभो! बचाओ॥४॥

शिव स्तुति

प्रजापतयऊचुः

देवदेव महादेव भूतात्मन् भूतभावन ।
त्राहि नः शरणापन्नांस्त्रैलोक्यदहनाद् विषात् ॥१॥
त्वमेकः सर्वजगत ईश्वरो बन्धमोक्षयोः ।
तं त्वामर्चन्ति कुशलाः प्रपन्नार्तिहरं गुरुम् ॥२॥
गुणमय्या स्वशक्त्यास्य सर्गस्थित्यप्ययान्विभो ।
धत्से यदा स्वदृग् भूमन् ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम् ॥३॥
त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सदसद्भावभावनः ।
नानाशक्तिभिराभातस्त्वमात्मा जगदीश्वरः ॥४॥
त्वं शब्दयोनिर्जगदादिरात्मा,
प्राणेन्द्रियद्रव्यगुणस्वभावः ।
कालः क्रतुः सत्यमृतं च धर्मः,
त्वय्यक्षरं यत् त्रिवृदामनन्ति ॥५॥
अग्निर्मुखं तेऽखिलदेवतात्मा,
क्षितिं विदुर्लोकभवाङ्घ्रिपंकजम् ।
कालं गतिं तेऽखिलदेवतात्मनो,
दिशश्च कर्णौ रसनं जलेशम् ॥६॥
नाभिर्नभस्ते श्वसनं नभस्वान्,

सूर्यश्च चक्षूंषि जलं स्म रेतः ।
परावरात्माश्रयणं तवात्मा,
सोमो मनो द्यौर्भगवंशिरस्ते ॥७॥
कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसङ्घा,
रोमाणि सर्वौषधिवीरुधस्ते ।
छन्दांसि साक्षात् तव सप्त धातवः,
त्रयीमयात्मन् हृदयं सर्वधर्मः ॥८॥
मुखानि पञ्चोपनिषदस्तवेश,
यस्त्रिंशदष्टोत्तरमन्त्रवर्गः ।
यत् तच्छिवाख्यं परमार्थतत्त्वं,
देव स्वयंज्योतिरवस्थितिस्ते ॥९॥
छाया त्वधर्मोर्मिषु यैर्विसर्गो,
नेत्रत्रयं सत्त्वरजस्तमांसि ।
सांख्यात्मनः शास्त्रकृतस्तवेक्षा,
छन्दोमयो देव ऋषिः पुराणः ॥१०॥
न ते गिरित्राखिललोकपाल,
विरिञ्चवैकुण्ठसुरेन्द्रगम्यम् ।
ज्योतिः परं यत्र रजस्तमश्च,
सत्त्वं न यद् ब्रह्म निरस्तभेदम् ॥११॥
कामाध्वरत्रिपुरकालगराद्यनेक,
भूतद्रुहः क्षपयतः स्तुतये न तत् ते ।

यस्त्वन्तकाल इदमात्मकृतं स्वनेत्र,
वह्निस्फुलिंगशिखया भसितं न वेद ॥१२॥
ये त्वात्मरामगुरुभिर्हृदि चिन्तिताङ्घ्रि,
द्वन्द्वं चरन्तमुमया तपसाभितप्तम् ।
कत्थन्त उग्रपरुषं निरतं श्मशाने,
ते नूनमूतिमविदंस्तव हातलज्जाः ॥१३॥
तत् तस्य ते सदसतोः परतः परस्य,
नाञ्जः स्वरूपगमने प्रभवन्ति भूम्नः ।
ब्रह्मादयः किमुत संस्तवने वयं तु,
तत्सर्गसर्गविषया अपि शक्तिमात्रम् ॥१४॥
एतत् परं प्रपश्यामो न परं ते महेश्वर ।
मृडनाय हि लोकस्य व्यक्तिस्तेऽव्यक्तकर्मणः ॥१५॥

श्रीशिव कृत विष्णु स्तुति

(६७)

देवदेव जगद् व्यापिञ्जगदीश जगन्मय ।
सर्वेषामपि भावानां त्वमात्मा हेतुरीश्वरः ॥*
(श्रीभा० ८ स्क० १२ अ० ४ श्लो०)

छप्पय

रूप मोहिनी दरश हेतु हर हरिढिँग आये ।
करिकें दण्ड प्रनाम विनययुत वचन सुनाये ॥
हे जगमय ! जगदीश जीव जगजाल फँसाओ ।
करम चक्रमहँ डारि सबनि भव विवश घुमाओ ॥
ब्रह्म कहैं कोई धरम, परमेश्वर पर पुरुष नर ।
मनवानी के विषय नहिँ, प्रभु अचिन्त्य अज अजित वर ॥

भगवान् कभी कभी विनोद के लिये पुरुष से प्रकृति का रूप रख लेते हैं, जो प्राणों के साथ रमण करते हैं, अर्थात् शरीर को ही सब कुछ समझते हैं, वे भगवान् की इस क्रीड़ा को

---

* मोहिनी रूप देखने की इच्छा से श्री शिवजी भगवान् की स्तुति करते हुए कहते हैं—"हे देवाधिदेव ! हे जगद्व्यापिन् ! हे जगदीश ! हे जगन्मय ! आप सम्पूर्ण भावों के आत्मा हैं, हेतु हैं तथा ईश्वर हैं।"

देखकर मोहित हो जाते हैं। उस काममयी क्रीड़ा का विवेकी चिन्तन करते हैं, तो उनकी उसमें आसक्ति हो जाती है, केवल कौतूहल के निमित्त उसे देखना चाहते हैं, देखने पर उसमें आसक्त हो जाते हैं। भगवान् का सहारा होने से कुछ देर में उसका रहस्य समझ जाते हैं,चेत हो जाता है, यदि भगवान्का सहारा न हो तब तो बुद्धि भ्रंस होकर पतन ही हो जाता है, इसीलिये ऋषियों ने इस बात पर बारम्बार बल दिया है, कि जो भी कार्य करो सभी के पूर्व प्रभु की प्रार्थना करो और भगवान् को सम्मुख रखकर ही सब कार्यों को करो फिर तुम्हें दोष नहीं लगेगा। भगवान स्वयं ही उबार लेंगे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! असुरों को मोहित करने के लिये तथा सुरों को अमृत पिलाने के लिये भगवान् विष्णु ने मोहिनी रूप रखा था। असुरों को लटका दिखाकर उनसे अमृत हथिया कर देवताओं को भर पेट अमृत पिलाकर और असुरों को सींग दिखाकर भगवान् तुरन्त अन्तर्धान हो गये यह समाचार शिवजी ने सुना तो उनकी भी इच्छा हुई कि चलकर देखें भगवान् नर से नारी कैसे बने। इच्छा होते ही पार्वती जी को साथ लेकर नादिया पर चढ़कर वैकुण्ठ में गये। शिवजी तो वैष्णव शिरोमणि हैं, अतः सबसे पहिले जाकर भगवान् विष्णु की स्तुति करने लगे।

भगवान् की स्तुति करते हुए शिवजी कह रहे हैं—"हे जगदीश! आप सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हैं। आपको कहीं न आना है न जाना है, आप जब जहाँ चाहें तब तहाँ ही प्रकट हो सकते हैं। जैसे सर्वव्यापक अग्नि जहाँ चाहे संघर्ष से प्रकट हो जाती है। प्रकट होना क्या आप तो जगन्मय हैं। यह चराचर जगत् ही आपका स्वरूप है। संसार में जो भी भाव हैं, सब आपके

ही आश्रय से उठते हैं, ठहरते हैं सबके आधार आश्रय आत्मा आप ही हैं। सबके हेतु कारण भी आप ही हैं, सबके ईश्वर सर्वेश्वर जगदीश्वर विश्वेश्वर आप ही हैं।

प्रभो ! यद्यपि आप जगन्मय हैं, किन्तु जगत् में और आप में भी कुछ अन्तर है। यह जगत् आप नारायण से जल में बुद् बुद की भाँति उत्पन्न होता है, स्थित रहता है और अन्त में विलीन भी हो जाता है। इसका आदि भी है मध्य भी है, और अन्त भी है, किन्तु आपका न आदि है न मध्य है और न अन्त ही है। आप आदि अन्त से रहित अनादि अविनाशी हैं। आप में यह दृश्यभाव नहीं है। अहं जो द्रष्टाभाव है उससे भी आप रहित हैं द्रष्टादृश्य से भिन्न जो भोक्तापना है वह भी आपमें नहीं है। भोग भी आपको नहीं कह सकते। सारांश यह कि आप द्रष्टादृश्य भोक्ताभोग सबसे परे सत् चित् तथा आनन्द स्वरूप परब्रह्म हैं। संसार में जिनको कोई कामना नहीं, कोई आशा नहीं जो सदा कल्याण कामना करते रहते हैं, जो निरन्तर श्रेय के मार्ग की ओर अग्रसर होते रहते हैं ऐसे मुनि-गण इहलोक तथा परलोक उभयलोकों के सुखों की आसक्ति त्यागकर आपके ही पादपद्मों की पूजा में संलग्न रहते हैं आपकी ही उपासना में निरत रहते हैं, ऐसे आपको बारम्बार प्रणाम है।

प्रभो ! आपका इस मायामय संसार से कोई साक्षात् सम्बन्ध नहीं, संसार मर्त्यधर्मी है; आप अमृतमय हैं। संसार तीनों गुणों का पसारा है आप गुणातीत गुण रहित निर्गुण हैं। संसार में शोक, मोह, तथा विकार विद्यमान हैं आप निःशोक, आनन्द स्वरूप तथा निर्विकार हैं। कोई ऐसी वस्तु नहीं जहाँ आप व्याप्त न हों आप सर्वमय हैं आप इन समस्त मायिक गुणों के विकारों

से पृथक् तथा पूर्णब्रह्म हैं। इतना सब होते हुए भी इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय आपके ही आश्रय से होती है, आप ही इसके जन्म पालन तथा विनाश के एकमात्र कारण हैं। आप ही जगदात्मा तथा जगदीश्वर हैं। स्वयं आपको कोई अपेक्षा नहीं निरपेक्ष होते हुए भी जग के जीवों की अपेक्षा से उनके कर्मों के अनुसार शुभाशुभ फल देते हैं।

प्रभो! आपही द्वैत हैं तथा आपही अद्वैत हैं, आपही जगत् हैं, आपही ईश्वर हैं आपही कार्य हैं, आपही कारण हैं, आपही सत् हैं, आपही असत् हैं खान से निकला हुआ सुवर्ण सुवर्ण ही है जब वही सुवर्ण कुण्डल कंकण, कंठाभरण आदि अनेक रूपों में परिणित होकर नाना नाम रखकर नाना नाम रूपों में पृथक् पृथक् प्रतीत होने लगता है, तब भी उसके सुवर्ण पने में कोई अन्तर नहीं आता। आभूषण के कारण रूप सुवर्ण में और आभूषण बने कार्य रूप सुवर्ण में वस्तुतः कोई भेदभाव नहीं। अज्ञानी लोग ही उसमें भेदभाव मानकर विकल्प करते हैं। आप तो उपाधि से सर्वथा रहित हैं। यह जो भेदभाव की प्रतीति होती है, वह तो गुणों के ही कारण है आप निर्गुण निराकार नित्य निरंजन में भेदभाव सम्भव नहीं।

हे नाथ! भिन्न भिन्न वादों वाले आपको भिन्न भिन्न नामों से पुकारते हैं। कोई तो आपको ब्रह्म कहते हैं। कोई कहते हैं आप धर्म स्वरूप हैं। धर्म कोई आपका रूप मानते हैं कोई प्रकृति और पुरुष से परे परमेश्वर कहकर आपको सम्बोधित करते हैं। कोई विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योग, प्रह्वी, सत्या, ईशाना, और अनुग्रहा इन नौ शक्तियों से युक्त परम पुरुष आपको बताते हैं, कोई आत्मतन्त्र अविनाशी महापुरुष आपको कहते हैं। इन सब नामों से आपकी ही उपासना पूजा की जाती है। जैसे जलको कोई पानी कहते हैं, कोई वारि कहते हैं, कोई पय कहते हैं कोई

नीर कहते हैं, कोई नार कहते हैं तथा कोई अन्य नाम से पुकारते हैं। किसी भी नाम से पुकारें। जो जिस नाम से पुकार कर जल का सेवन करते हैं जलतृप्ति तो सबकी समान भाव से करता है, वास्तव में देखा जाय तो आपका यथार्थ स्वरूप कोई जान ही नहीं सकते। और की बात पृथक् देवतागण जो सत्वगुण से उत्पन्न हुए हैं ब्रह्माजी उनके मरीचादि पुत्र तथा मुझे जो देवाधिदेव महादेव कहते हैं, हम सब भी आपकी तो बात ही क्या आपके रचे इस संसार को भी यथार्थ रूप से नहीं समझ सकते। फिर जो रजोगुणी तथा तमोगुणी प्रकृति वाले आपकी माया से मोहित हुए सदाचार से रहित दैत्य दानव तथा मनुष्य यह अहङ्कार करें कि हम भगवान् के यथार्थ रूप को जानते हैं तो वे अज्ञ हैं माया ने उनकी बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया है भला जो गुणों के अधीन

हैं सदाचार से दूर हैं वे आपको जान ही कैसे सकते हैं।

हे सर्वज्ञ! आपसे कोई बात छिपी नहीं है। आप घटघट की जानने वाले हैं। जैसे आकाश में ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ वायु व्याप्त न हो, इसी प्रकार आप जगत् के अणु परमाणु में अनुप्रविष्ट हो रहे हैं। आप सर्वात्मक हैं, सर्वव्यापक हैं, ज्ञान स्वरूप हैं आप चराचर प्राणियों की सभी प्रकार की चेष्टाओं को समझते हैं। संसार की स्थिति, जन्म और नाश का आपको पूर्ण ज्ञान है आप सभी प्राणियों के कर्म, बन्धन तथा मोक्ष से परिचित हैं।"

शिवजी की स्तुति सुनकर भगवान् विष्णु मुसकराये और बोले—"शिवजी आज तो बड़ी लम्बी चौड़ी स्तुति हो रही है, बात बताइये। वर तो माँगिये।"

शिवजी ने कहा—"नहीं, महाराज! कोई बात नहीं। आप तो क्रीड़ाप्रिय हैं, विनोद के निमित्त कभी कभी गुणों का आश्रय

लेकर आप अनेक अवतार धारण करते रहते हैं। मैं भी जब सुनता हूँ, कि अबके आप कछुआ बनकर समुद्र में तैरने लगे, कभी मछली बनकर विहार करने लगे, कभी ब्राह्मण बनकर भीख माँगने लगे, कभी वीर बनकर संहार करने लगे, कभी आधे नर और आधे सिंह बनकर दहाड़ने लगे, सुनते ही मैं आपके दर्शनों को दौड़ा जाता हूँ। मैंने आपके सभी अवतारों के दर्शन किये हैं। किन्तु अबके ही मैं पिछड़ गया। मैंने सुना आप अबके नर से नारी बन गये। आँखों में काजल और नाक में नथ पहिनकर अद्भुत अनुपम लटका दिखाया। मैंने सुना आपके उस अद्भुत अनुपम अनिर्वचनीय रूप को देखकर दैत्य दानव लोट पोट हो गये अपने आपे; को ही भूल गये। आपने उन असुरों को मोहित करके उनसे अमृत का कलश छीनकर देवताओं को अमृत पिला दिया। अमृत पिलाकर जब आप अन्तर्हित हो गये तब मुझे समाचार मिला। तभी से मेरे मनमें चटपटी लगी हुई है, कि आप स्त्री कैसे बने होंगे। कैसा आपका भुवन मोहनरूप रहा होगा। वैसे ही आप चराचर जीवोंको अपने सौन्दर्य माधुर्य से विमोहित कर लेते हैं, फिर जब वैणी हिलाते हुए मन्द मन्द मुसकराते हुए हावभाव कटाक्ष दिखाते हुए साड़ी ओढ़कर कड़े, छड़े, नूपुर, बिछिया पहिनकर मोहिनी बने होंगे, उस शोभा का तो कहना ही क्या ? तनिक उस रूप की झाँकी मुझे भी करा दीजिये। यह कहने को न रह जाय कि हमने और तो सब अवतारों के दर्शन किये मोहिनी अवतार के दर्शन नहीं कर पाये। मेरे मनमें बड़ा कुतूहल हो रहा है। मैंने मनको बहुत सम-

भाया कि भगवान् सर्वज्ञ हैं, सर्वसमर्थ हैं, मोहन से मोहिनी बन गये होंगे, किन्तु फिर भी मन माना नहीं। मैं अपने दर्शन के लोभ को संवरण कर नहीं सका। इसी निमित्त मैं यहाँ आया हूँ, उस अनुपम रूप की एक बार झाँकी मुझे करा दें। मेरे प्यासे नयनों को दर्शन रूपी अमृत पान करा दें। मेरे कुतूहल को शान्त कर दें मेरी अभिलाषा को पूर्ण कर दें। यही मेरी आपके चरणारविन्दों में प्रार्थना है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! शिवजी ने जब ऐसी स्तुति की तब भगवान् ने अपना मोहिनी रूप दिखा दिया। मोहिनी रूप को देखकर जो कुछ हुआ उसकी कथा तो मैं भागवती कथा में वर्णन कर ही चुका हूँ, इस प्रकार मैंने यह शिवकृत विष्णुस्तुति आपसे कही। अब भगवान् व्यासजी ने जैसे मोहिनी जी की स्तुति की है, उसे मैं आपसे कहूँगा आप सब सावधान होकर श्रवण करें।"

छप्पय

हे मायेश महेश महामहिमा मनमानी।
पावैं पार न शेष शारदा शिव अज ज्ञानी॥
तुम सरवज्ञ सुविज्ञ सकल घटघट की जानों।
धरि अगनित अवतार अलौकिक तानो तानों॥
सुन्यो मोहिनी रूप धरि, असुरनिकूँ मोहित करयो।
करन चहूँ झाँकी मधुर, रूप मोहिनी प्रभु धरयो॥

❧

पद

मोहन ! बने मोहिनी नारी ।
कजरारे कस नैंन नचाये, ओढ़ि पँचरँगी सारी ॥१॥
कड़े छड़े नूपुर धुनि करि कस, असुरनि बुद्धि बिगारी ।
ललना ललित लखायो लटका लट लटकाई कारी ॥२॥
कैसे कमरि करधनी पहिनी कुचनि कंचुकी धारी ।
हार हमेल गुलीबँद धारयो माला मनिमय वारी ॥३॥
कमर लचाय कलश कस पकरयो, आनी बोली प्यारी ।
झाँकी मोइ कराओ केशव, चरनकमल बलिहारी ॥४॥

श्री शिव कृत विष्णु स्तुति

श्रीमहादेव उवाच

देवदेव जगद्व्यापिञ्जगदीश जगन्मय ।
सर्वेषामपि भावानां त्वमात्मा हेतुरीश्वरः ॥१॥
आद्यन्तावस्य यन्मध्यमिदमन्यदहं बहिः ।
यतोऽव्ययस्य नैतानि तत् सत्यं ब्रह्म चिद् भवान् ॥२॥
तवैव चरणाम्भोजं श्रेयस्कामा निराशिषः ।
विसृज्योभयतः सङ्गं मुनयः समुपासते ॥३॥
त्वं ब्रह्म पूर्णममृतं विगुणं विशोकम् ,
आनन्दमात्रमविकारमनन्यदन्यत् ।
विश्वस्य हेतुरुदयस्थितिसंयमानाम् ,
आत्मेश्वरश्च तदपेक्षतयानपेक्षः ॥४॥
एकस्त्वमेव सदसद् द्वयमद्वयं च,
स्वर्णं कृताकृतमिवेह न वस्तुभेदः ।
अज्ञानतस्त्वयि जनैर्विहितो विकल्पो,
यस्माद् गुणैर्व्यतिकरो निरुपाधिकस्य ॥५॥
त्वां ब्रह्मकेचिदवयन्त्युत धर्ममेके,
एके परं सदसतोः पुरुषं परेशम् ।
अन्येऽवयन्ति नवशक्तियुतं परं त्वां,

केचिन्महापुरुषमव्ययमात्मतन्त्रम् ॥६॥

नाहं परायुर्ऋषयो न मरीचिमुख्या,
जानन्ति यद्विरचितं खलु सत्त्वसर्गाः ।
यन्मायया मुषितचेतस ईश दैत्यम्,
मर्त्यादयः किमुत शश्वदभद्रवृत्ताः ॥७॥

स त्वं समीहितमदःस्थितिजन्मनाशं,
भूतेहितं च जगतो भवबन्धमोक्षौ ।
वायुर्यथा विशति खं च चराचराख्यं,
सर्वं तदात्मकतयावगमोऽवरुन्त्से ॥८॥

अवतारा मया दृष्टा रममाणस्य ते गुणैः ।
सोऽहं तद् द्रष्टुमिच्छामि यत् ते योषिद्वपुर्धृतम् ।९।
येन सम्मोहिता दैत्याः पायिताश्चामृतं सुराः ।
तद् दिदृक्षव आयाताः परं कौतूहलं हि नः ॥१०॥

मोहिनी स्तुति

(६८)

असद् विषयमङ्घ्रिं भावगम्यं प्रपन्ना-
नमृतममर वर्यानाशयत्सिन्धुमथ्यम् ।
कपटयुवति वेषो मोहयन् यः सुरारीं,
स्तमहमुपसृतानां कामपूरं नतोऽस्मि ॥*
(श्रीभा० ८ स्क० १२ अ० ४७ श्लो०)

छप्पय

माया तैं जो बने मोहिनी मोहन माधव ।
बन्दन तिनिको करूँ अखिलपति अच्युत यादव ॥
कन्दुक क्रीड़ा करत हिलत कुच कंचुकि बन्धित ।
कोमल कटि अति हिलत वदन विधुचमचम चमकत ॥
कुण्डल काननि कनक के, छवि कपोल जगमग करत ।
मेटे मनको मैल प्रभु, जो विवेक असुरनि हरत ॥

भगवान् सर्वरस हैं। समस्त रसों की समस्तभाव अनुभावों की उत्पत्ति उन्हीं से हुई है। इसलिये सभी भावों में उन्हीं को देखना यही ज्ञान की भक्ति तथा योग की पराकाष्ठा है। भगवान् असुर

---

* मोहिनी भगवान् की स्तुति करते हुए श्रीशुक कहते हैं—"भगवान् श्रीहरि के चरणकमल केवल एकमात्र भक्ति से ही प्राप्त हो सकते हैं, असत् पुरुष उन्हें कभी प्राप्त नहीं कर सकते, उन चरणकमलों की शरण में जो

प्रकृति वाले पुरुषों को मोहित करने के निमित्त कभी वेदों का खण्डन करने लगते हैं, कभी यज्ञों से प्राणियों को हटाते हैं, कभी नास्तिकता का पाठ पढ़ाते हैं। उनके सभी रूपों में यही भाव है, कि अगुण पात्र के समीप गुण भी दोष बन जाता है, अनधिकारी यज्ञ करके भी अनर्थ ही करते हैं, दम्भी पुरुष आस्तिकता की आड़ में भी स्वार्थ सिद्धि करते हैं। अमृत जैसी पवित्र वस्तु को यदि असुर प्राप्त कर लेते तो उसके द्वारा वे संसार में अनर्थ की ही वृद्धि करते, अतः भगवान् ने उनके कामिनी का काम वर्धक आकर्षक रूप दिखाकर अमृत से वञ्चित कर दिया। अमृत के जो यथार्थ अधिकारी थे, उन्होंने भगवत् कृपा से अमृत प्राप्त कर लिया। उस रूप को देखकर कामासक्त पुरुष ही विमोहित होते हैं, जो सत्त्व प्रकृति के भवगत् भक्त हैं, वे तो उस शृङ्गार वर्धक रस में भी अपने प्रियतम को ही निहारते हैं और बारम्बार श्रद्धा भक्ति सहित उस रूप को प्रणाम करते हैं—

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् ने जो मोहिनी रूप रखा था, वह असुरों को अमृत से वंचित करने और सुरों को पिलाने के निमित्त रखा था। जो सात्विक पुरुष इस रूप को श्रद्धा सहित प्रणाम करते हैं और अपनी धर्म की पत्नी को छोड़कर अन्य महिलाओं में भगवत् बुद्धि करके मन ही मन प्रणाम करते हैं वे धर्म रूपी अमृत का स्वाद चखते हैं। अतः भगवान् के मोहिनी रूप को बारम्बार नमस्कार करना चाहिये। मन में कभी मोहिनी रूप का स्मरण हो आवे तो मन ही मन उनकी प्रत्येक चेष्टा को स्मरण करके पुनः पुनः ऐसे प्रणाम करे।

सुर समुदाय आया उसे जिन्होंने समुद्र मथन से प्राप्त अमृत ,पिलाया तथा जो शरणागतों की समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं, जिन्होंने माया से मोहिनी युवती का रूप रखकर देवद्रोही दानवों को विमोहित बनाया। उन श्रीहरि को मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ।"

हे मोहिनी भगवान्! प्रभो! आपके जो ये कमलदल के सदृश मंगलमय शुभ चिन्हों से चिन्हित अरुण वरण के अति आकर्षक मम पड़ने वाले मांसल चरण हैं, और इनमें जो छनछन करके बारम्बार बजते हुए नूपुर हैं, तथा इनमें रक्त वर्ण के परम शोभायमान जो कान्तिमय दशचन्द्रों के सदृश नख हैं, वे आपके भक्तों के तो हृदय के अज्ञान को दूर करते हैं,किन्तु जो अभक्त हैं, कामी हैं, वे उन शब्दायमान और कन्दुक के वेग के साथ धावमान इन पादपद्मों को देखकर विमोहित बन जाते हैं, वे इन्हें हृदय से लगाने को लालायित हो उठते हैं।

हे जनार्दन! आपकी लोमरहित जानुओं की कमनीय के सम्बन्ध में कोई कथन ही क्या कर सकता है, लक्ष्मीजी अपने नूतन अशोक पल्लव के सदृश सुकोमल गुदगुदे करकमलों से शनैः शनैः दबाते दबाते भावावेश में आकर उन्हें चूमने लगती हैं, मानों उनकी अद्भुतता का ही अनुभव करने के निमित्त आपने यह श्री सखी सा रूप धारण करके इन जानुओं को प्रकटित किया है, जो कामियों के काम को उद्दीपित करने वाली तथा भक्तों के हृदय में आह्लाद उत्पन्न करने वाली हैं।

हे उरुक्रम! आपके उत्तमोत्तम उरुओं, कदली वृक्ष के समान चिकनी तथा चढ़ाव उतार की जंघाओं की शोभा अवर्णनीय है, वे कौशेयपीत से ढको होने के कारण एक विचित्र ही वर्ण की दृष्टिगोचर हो रही हैं, तत्वतः वे कनककमल के वर्ण की हैं, उनपर अत्यन्त ही छोटे छोटे सुवर्ण वर्ण के अस्फुटित रोम हैं, रेशमी पीली साड़ी की उनपर आभा पड़ रही है, मानों तपाये सुवर्ण में सुचिक्कण सुवर्ण की आभा सम्मिलित कर दी हो। भक्तों के मनमें इनकी कोमलता और मनोहरता से सुख होता है, किन्तु कामियों के हृदय में तो ये उद्विग्नता उत्पन्न करती हैं।

प्रभो ! आपका जो उन्नत नितम्ब विम्ब है, जो अतिक्षीण साड़ी से ढका है, जो कन्दुक क्रीड़ा के अवसर पर हिलते हुए एक दूसरे से संघर्ष करते हुए दायें बायें कुछ उभरे से गतिमान दिखायी देते हैं, वे भक्तों के हृदय में भव्यभाव भरते हैं और कामिनियों के अन्तःकरण में एक कामयुक्त टीस पैदा करते हैं, ऐसे आप जगन्मोहन के पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

हे विश्वम्भर ! पीपल के पत्ते के सदृश चढ़ाव उतार का जो आपका पतला अत्यन्त क्षीण अत्यन्त मृदुल उदर है, वह त्रिवली से युक्त है, मानों भक्तों के तीनों तापों को मिटाने का प्रतीक है, वह उदर विश्व ब्रह्माण्ड का आश्रय रूप एक अत्यद्भुत अनुपम उपवन है, उसमें नाभिरूप सुन्दर स्वच्छ जीवनयुक्त सरोवर है, जिसमें से उत्पन्न हुए कमल से अजन्मा ब्रह्मा का जन्म हुआ है, वह नाभि सम्पूर्ण विश्वब्रह्माण्ड की जननी है, कामी उसकी कमनीयता पर लट्टू हो जाते हैं और आपके भक्त उसे वारम्बार नमस्कार करते हैं।

हे जगन्माता ! आपके जो ये सुवर्ण वर्ण के कंचुकी से ढके हुए परम कान्तियुक्त स्तनद्वय हैं, इन्हें कामी लोग रसआलय कहते हैं किन्तु हम तो इन्हें पुण्य पयोधर जगज्जीवन तथा अमृत परिपूर्ण श्रीफल ही समझते हैं, जिसका पान करके समस्त चराचर प्राणी जीवन धारण करते हैं, जीवनी शक्ति तो इन्हीं में सन्निहित है, जिन्हें पुत्रभाव से आपने अपने हृदय से सटाकर इस पय का पान करा दिया उन्हें पुनः संसारी माता के स्तन-पय का पान नहीं करना पड़ता। कन्दुक क्रीड़ा के समय हिलते हुए इन पयोधरों को देखकर कामियों का चित्त मदमत्त वन जाता है, वे इन्हें हृदय से सटाने को आकुल वन जाते हैं, जिससे उन्हें पुनः पुनः गर्भवास के क्लेश सहन करने पड़ते हैं। विना इच्छा के

वात्सल्यभाव से आप स्वयं ही कृपा करके हृदय से सटाकर जिसे मुख में इसे दे दें उसी का जीवन धन्य है। वही इस भवसागर से पार हो सकता है।

हे कमनीयकण्ठ ! आपका अत्यद्भुत कंठ जिसमें मणिमुक्ता युक्त अनेक आभूषण शोभा पा रहे हैं जो कण्ठ की शोभा न बढ़ा कर कंठ के कारण स्वयं ही शोभित हो रहे हैं, जिसमें चित्र विचित्र पुष्पों से युक्त वनमाला पड़ी हुई है, जो शंख के समान चढ़ाव उतार का है, जिसमें से अमृतमयी वाणी निसृत होती है, जो करोड़ों कोकिलों के कण्ठ को भी तिरस्कृत करने वाली है उस वेदमयी वाणी वाले कण्ठ का हम ध्यान करते हैं।

हे विशाल बाहो ! आपकी जो चढ़ाव उतार की सुवर्णमयी मृणाल के समान विशाल बाहुएँ हैं, जिनमें पतली पतली उँगलियाँ शोभा दे रही हैं, उँगलियों के नखों की छटा से दशों दिशायें आलोकित हो रही हैं। कन्दुक को लेने के निमित्त जो दशों उँगलियाँ गोल कमल के समान दिखायी दे रही हैं, उनमें की अँगूठी के नग अपनी पृथक कान्ति प्रकटित कर रहे हैं। जो हिलते हुए जुड़ते और खुलते हुए अत्यन्त ही आकर्षित प्रतीत हो रहे हैं, कामी चाहते हैं वे दोनों मृणाल के सदृश विशाल बाहु हमारे कण्ठ का हार बन जायँ और भक्त चाहते हैं, वे अभय प्रदान करने वाले कर कमल हमारे माथे का स्पर्श करें।

हे कमलवदन ! आपके जो ये उत्फुल्ल कमल के समान अपांगयुक्त कजरारे बड़ियारे विशाल नयन हैं, इनमें जो कमनीय कटाक्ष निहित हैं, वे कामियों के हृदय को तो तीक्ष्ण वाणों के सदृश वेधते हैं, किन्तु भक्तों के ऊपर तो ये अनवरत कृपा की वृष्टि करते रहते हैं। नयनों के ऊपर जो ये काली काली टेढ़ीटेढ़ी

भ्रुकुटी हैं, वे विषयासक्त नर पशुओं को दो प्रत्यञ्चा सी प्रतीत होती हैं, जिसकी चोट से वे लोट पोट हो जाते हैं, वे ही भ्रुकुटियाँ भक्तों के भवभय को भगाने में सदा सतर्क रहती हैं।

हे मदनमोहन ! आपके मुखारविन्द की जो यह मन्द मन्द मुसकान है, वह अपने आश्रितों के क्लेशों को दूर भगाने वाली है और कामियों को जगजाल में फँसाने वाली है। आपके मुख में जो यह ताम्बूल की लाली है, वह भक्तों के लिये आपका अनुराग है और कामियों के लिये राग है, आपकी जो शुभ्र स्वच्छ दन्तावली है, वह भक्तों के सदाचार का प्रतीक है और कामियों के लिये हास परिहास का साधन है। आपके मुख में से जो दिव्य आकर्षक सुगन्ध आ रही है, उसे भक्तजन अग्निहोत्र की पावन सुगन्धि मानते हैं, किन्तु कामी उसमें सुरा की मादकता का अनुभव करते हैं।

हे क्रीड़ाप्रिय ! आपकी जो कन्दुक क्रीड़ा है, उसे कामी लोग सत्य मानते हैं और सत्य मानकर उसमें फँस जाते हैं, किन्तु जो आपके आश्रित हैं, प्रपन्न हैं, भक्त हैं वे उसे क्रीड़ा ही समझते हैं, इससे वे आपकी कृपा के अधिकारी बन जाते हैं उन्हें संसार बाधक नहीं होता। वे तो आपकी समस्त चेष्टाओं को क्रीड़ा ही मानते हैं।

हे सर्वरूप ! आप चाहे कच्छ बन जाओ चाहे मत्स्य, चाहे वामन बनो या परशुराम चाहे राम बनो या कृष्ण, चाहे मोहन बनो या मोहिनी वे तो सदा एक ही रूप से जानते और मानते हैं, अतः हे मोहिनी भगवान् ! आपको बारम्बार प्रणाम हो, हम आपके यथार्थ रूप को ही देखें ऊपर के कपट वेष में हमारा चित्त लुभायमान न हो जाय यही आपके पुनीत पादपद्मों में पुनः पुनः प्रार्थना है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! यह मैंने मोहिनी स्तुति कही अब वामन भगवान् के प्रकट होने के लिये कश्यपजी ने उनकी माता अदिति को जैसे भगवान के पूजन का स्तोत्र बताया उसको मैं आपसे कहूँगा । आप सावधानी से श्रवण करें ।"

छप्पय

जग प्रवाह कूँ करन अखण्डित काम बढ़ावन ।
बनें मोहिनी कोटि मदनमोहन मनभावन ॥
प्रानी प्राननि पोसि परम सुख मैथुन मानें ।
ते बन्धन में बँधे देह कूँ सरबसु जानें ॥
माता दुहिता कामिनी, विविध वेष नटवर धरें ।
हम प्रभु जननी जानि तब, पदपदुमनि पुनि पुनि परें ॥

पद

मोहिनि ! तव चरननि सिर नाऊँ ।
जग जननी मन काम न आवे,नहिँ तव रूप लुभाऊँ ॥१॥
नहीं कामिनी मानूँ माता, नहिँ अघ मनमहँ लाऊँ ।
पद पदुमनि महँ परूँ पुलकि पय,प्रेम प्रसादो पाऊँ ॥२॥
कृपा कटाच्छ करो करुनाकरि, शिरकर कमल धराऊँ ।
पाऊँ प्यार अंक सुख पाऊँ, भवजलनिधि तरि जाऊँ ॥३॥
हूँ अबोध भटकत इतउत प्रभु, समरथ नहीं कहाऊँ ।
साधन भजन भक्ति नहिँ जानूँ, रोइ रोइ चिल्लाऊँ ॥४॥

श्री कश्यप कथित भगवत् स्तोत्र

(६६)

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महीयसे ।
सर्वभूत निवासाय वासुदेवाय साक्षिणे ॥*

(श्रीभा० ८ स्क० १६ अ० २६ श्लो०)

छप्पय

सुरनि विजय करि असुर भये राजा त्रिभुवन के ।
सुर जननी अति दुखित गई ढिँगपति चरनन के ॥
विनय करी जय सुतनि होहि व्रत सुगम बताओ ।
कश्यप बोले—करो पयोव्रत हरिहिय लाओ ॥
करि पूजा विनती करो, पुरुष पुरातन परावर ।
वृषभ धरम सब शक्तिधर, नारायन ऋषि रूपनर ॥

भगवान् की उपासना कभी व्यर्थ नहीं जाती । जो जिस भाव से भगवान् की उपासना करते हैं उन्हें उनके भाव की भगवान् उसी भाव से पूर्ति करते हैं । जो इस लोक की कामना

---

* कश्यपजी कहते हैं—"इस प्रकार भगवान् की स्तुति करे— "सर्वसाक्षी सर्वभूत निवास परम पूजनीय भगवान् वासुदेव के लिये नमस्कार है ।"

पूर्ति के निमित्त भी अन्य किसी असमर्थ पुरुष की शरण में न जाकर सर्व समर्थ श्रीहरि की ही शरण में जाते हैं; भगवान् उनकी इह लौकिक कामना तो पूर्ण करते ही हैं उन्हें संसार बन्धन से भी छुड़ा देते हैं। अतः इह लोक तथा परलोक की समस्त कामनाओं की पूर्ति के लिये भगवान् का ही आश्रय लेना चाहिये उन्हीं की शरण में जाना चाहिये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब युद्ध में असुरों ने देवताओं को हरा दिया और देवता श्रीहीन होकर स्वर्ग छोड़कर पृथ्वी पर इधर उधर प्रच्छन्नवेष में विचरण करने लगे तब उनकी माता अदिति को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने सेवा सुश्रूषा से अपने पति को प्रसन्न किया। भगवान् कश्यप ने जब उससे वर माँगने को कहा तो माता अदिति ने यही वर माँगा मेरे पुत्रों को पुनः स्वर्गीय श्री प्राप्त हो।"

इस पर पहिले तो मुनि ने भगवान् की मोह मयी माया को धिक्कारा फिर कहा—"प्रिये! यदि तुम श्रीहरि भगवान् की श्रद्धा भक्ति से उपासना करोगी, तो वे तुम्हारे सभी मनोरथों को पूर्ण कर देंगे। तुम पयोव्रत करो।"

जब अदिति देवी ने पयोव्रत द्वारा भगवान की उपासना की विधि पूछी तो कश्यपजी ने बताया भगवान् की पूजा मूर्ति,वेदी, सूर्य, जल, अग्नि और गुरु जिस मूर्ति में अपनी श्रद्धा हो, वहीं करें। नित्य नैमित्तिक कर्मों से निवृत्त होकर स्वच्छचित्त से श्रद्धा पूर्वक पूजन करने बैठे। पूजन तो द्वादशाक्षर मन्त्र से करे। पूजन से पूर्व भगवान की स्तुति करें। स्तुति इस प्रकार करें।

हे प्रभो! आप समस्त भूतों में वास करने से वासुदेव कहलाते हैं। अथवा समस्त भूत आप में ही निवास करते हैं। सबके

आलय आश्रय स्थान आपही हैं। आप सभी प्राणियों के साक्षी हैं। यह जगत पुरुष प्रकृति के संयोग से होता है, आप पुरुष से भी परे हैं और प्रकृति से भी परे हैं इसीलिये महापुरुष या पुरुषोत्तम कहलाते हैं। आप सर्वसमर्थ षडैश्वर्य सम्पन्न हैं। अतः हे भगवन्! आपको बारम्बार नमस्कार है।

स्वामिन्! कपिल रूप आपका ही है। कपिलावतार लेकर आप ने ही तत्वों की संख्या करने वाले सांख्यशास्त्र का प्रचार किया। जिसे अव्यक्त कहते हैं वह अनिर्वचनीय रूप आपका ही है। सूक्ष्मदर्शी लोग सद् असद् विवेकिनी बुद्धि द्वारा जिसका साक्षात् कार करते हैं वह सूक्ष्माति सूक्ष्म रूप आपका ही है। प्रकृति तथा पुरुष रूप भी आपका ही है। आपने ही चौबीस तत्वों की परिसंख्या की है उन तत्वों के आपही सम्यक ज्ञाता हैं। आपही इस संख्या गिनानेवाले तत्वों को बतानेवाले सांख्य शास्त्र के प्रवर्तक हो अतः गुण संख्यान के हेतु भूत जो आप हैं। ऐसे आपको बारम्बार प्रणाम है।

स्वामिन्! धर्म रूप भी आपका ही है। सर्वश्रेष्ठ होने से ऋषभ या वृषभ भी आपको कहते हैं। वृषभ के सिर होता है सिर पर सींग होते हैं, सो आपके एक नहीं दो सिर हैं। धर्म के प्रधान कर्म रूप यज्ञ में जो प्रायणीय और उदयनीय दो कर्म होते हैं वे ही मानों आपके दो सिर हैं। प्रत्येक सिर में दो दो सींग होने से चार सींग हुए ये चारों वेद ही मानों आपके चार सींग हैं। साधारण वृषभ के चार पैर होते हैं। सत्ययुग में धर्म भी चार पैर वाला होता है। यज्ञयाग प्रधान त्रेता युग में धर्म के तीन ही पैर रह जाते हैं। प्रातःसवन माध्यन्दिन सवन और सायं सवन ये तीनों काल के तीन सवन ही मानों आपके तीन पैर हैं। साधारण वृषभ के हाथ नहीं होते, किन्तु आप तो यज्ञरूप वृषभ हैं। आपकी सप्तर्चि रूप जो सात

वाहुएँ हैं गायत्री, उष्णिक, बृहती, पंक्ति, अनुष्टुप, त्रिष्टुप और जगती ये सात छन्द ही मानों सप्त हस्त हैं। आप इनके द्वारा ही यज्ञ फल को ग्रहण करते हैं। वृषभ तो त्रिवृत की हुई रस्सी में वँधा रहता है सो वेद का मन्त्र, ब्राह्मण और कल्प रूप तीन विद्यायें ही मानों आपके वाँधने को रज्जु है। वृषभ तो रँम्हाता है चिल्लाता है सो यज्ञ में ऋत्विज जो शास्त्रों का उच्चारण करता है, स्तुति पाठ करता है, वही आपका मानों रँम्हाना है ऐसे आप वृषभ रूप होने से श्रेष्ठ हैं, उत्तम हैं, महान् हैं, यज्ञ का फल दिया करते हैं इसलिये आप देव हैं यज्ञ स्वरूप हैं, आपको वारम्वार प्रणाम है।

हे भगवन्! आप शिव स्वरूप हैं कल्याणमय हैं। रुद्र रूप भी आपका ही है। संसार की समस्त शक्तियों को आप ही धारण करने वाले हैं। तथा संसार की जितनी विद्यायें हैं उनके भी एकमात्र अधिपति आप ही हैं। चर, अचर, स्थावर, जङ्गम जितने भी जड़ चैतन्य कहलाने वाले भूत वर्ग हैं उन सबके भी आप ही सर्व समर्थ स्वामी हैं ऐसे आप सर्वमय प्रभु के पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

हे अनादि! हिरण्यगर्भ जो सृष्टि के आदि का रूप है। वह भी आपका ही रूप है। समस्त प्राणियों में जो जीवन शक्ति प्रदान करने वाले प्राण हैं। वह भी आप हैं आप प्राणों के भी प्राण हैं। स्वामिन्! सम्पूर्ण जगत् की आत्मा भी आप ही हैं, इस जगत् के एकमात्र आधार आप ही कहे जाते हैं। आपका शरीर क्या है मानो योग और ऐश्वर्य ने ही साकार स्वरूप रख लिया है योग के ईश्वर होने से आप योगेश्वर और षड़ैश्वर्य से युक्त होने से आप ईश्वर और भगवान् कहलाते हैं। संसार में जितने प्रकार के योग हैं, उन सबके हेतु-कारण आप ही हैं। ऐसे सर्व शक्तिशाली सर्वेश्वर को हमारा वारम्वार नमस्कार है।

हे देवाधि देव ! इन्द्र, रुद्रादि देव तो पीछे उत्पन्न हुए इनकी उत्पत्ति तो सकारण है, किन्तु आपका कोई कारण नहीं आदि देव तो एकमात्र आप ही हैं। आप सबके सत्ती भूत हैं आपको नमस्कार है। आपका निवास क्षीर सागर में है नार ही आपका अयन स्थान है, इसीलिये आप नारायण कहलाते हैं। आप बदरिकाश्रम में तपस्या करने वाले ऋषि रूप रख कर साधना का रहस्य प्रकट करने वाले नर और नारायण मुनि भी आप ही हैं पापों को हरण करने वाले हरि भी आप ही कहलाते हैं, ऐसे आप अचिन्त्य रूप के पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

प्रभो ! आप प्रणतों के क्लेश काटने के कारण केशव कहलाते हैं। आपका सुन्दर शरीर मरकत मणि के सदृश श्याम वर्ण का है। श्याम शरीर के ऊपर सुवर्ण वर्ण का सुहावना पीताम्बर आप धारण किये हुए हैं। संसार की सम्पूर्ण शोभा के आप एक मात्र स्थान हैं। ऐसे आप पीताम्बरधारी वनवारी वृन्दावन विहारी के युगल चरणों में बारम्बार नमस्कार है।

हे वरेण्य ! गायत्री मन्त्र द्वारा आपकी ही उपासना की जाती है, संसार में जितने भी शापानुग्रह में समर्थ वरदान देने वाले देव हैं आप उन सबमें सर्वश्रेष्ठ वरदाता हैं, जिस पुरुष को आप जो चाहे सो वर दे सकते हैं, इसीलिये विकार के हेतु उपस्थित होने पर भी जिनके मनमें विकार नहीं उत्पन्न होता ऐसे धीर वीर गम्भीर पुरुष सभी की आशा परित्याग करके आपके पादपद्म की पावन पराग का ही आश्रय लेते हैं, उसी की उत्तम रीति से उपासना करते हैं, उसी को अपनी जीवन मूरि समझते हैं, ऐसे आप विश्वविदित वरदाता के चरण कमलों की धूरिकी हम बारम्बार वन्दना करते हैं।

हे उपासना के एक मात्र आलय ! देवताओं की घ्राणेन्द्रिय में आपके दिव्य सुगन्धियुक्त पादपद्मों की सुवास समा गयी

हैं, तभी तो वे स्वर्ग के समस्त ऐश्वर्य को तुच्छ समझकर आपके चरण कमलों की उपासना की स्पृहा रखते हैं। यही दशा जगन्माता भगवती लक्ष्मी जी की है, उन्हें जब देखो तभी आपके नील कमल के सदृश कोमल अरुण चरणों को अपनी जंघा पर रखकर गुदगुदे हाथों की हथेलियों से सुहराती ही रहती हैं, सदा सर्वदा आप सर्वात्मा की सेवा में ही संलग्न बनी रहती हैं। जब उन चरण कमलों में इतना भारी आकर्षण है, कि चञ्चल चित्त वाली चंचला कहलाने वाली लक्ष्मी जी भी एक पल को उनका परित्याग करना नहीं चाहतीं, तो हम जैसे अकिंचनों की तो बात ही क्या है। हे भगवन्! हमारे ऊपर भी दया हो, हम पर भी कृपा दृष्टि की वृष्टि की जाय, हमें भी अपनी देव दुर्लभ पूजा का अवसर प्रदान किया जाय।

कश्यप मुनि अदिति देवी को उपदेश करते हुए कह रहे हैं—"हे देवि! ऐसे प्रार्थना करके फिर द्वादशाक्षर मंत्र से भगवान् की पाद्य अर्घ्य आचमनीयादि से सविधि पूजा करोगी तो भगवान् तुम्हारी मनोकामना अवश्य पूर्ण करेंगे।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार अपने पति की बतायी विधि से माता अदिति ने भगवान की पूजा की। उनकी पूजा से प्रसन्न होकर प्रभु प्रकट हुए। स्वयं ही उनके यहाँ अवतरित होने का आश्वासन देकर अन्तर्हित हो गये। वर देने के लिये भगवान के प्रकट होने पर भगवती अदिति ने जैसे भगवान की स्तुति की उस प्रसङ्ग को मैं आगे कहता हूँ।"

छप्पय

नमो नमः शिव शक्ति सर्व कारन सब समरथ ।
यज्ञेश्वर अज रुद्र तत्व समर्भें न जथारथ ॥
मरकत मनि सम श्याम सुघर सुन्दर सुखकारी ।
हे वरेण्य वर वृषभ श्रेष्ठ पीताम्बर धारी ॥
धीर पुरुष कल्यान हित, पद पराग नित सिर धरें ।
सेवें सुर श्री सतत जिनि, करुनाकर किरपा करें ॥

पद

नमो नमः सन्तनि हितकारी ।
महामहिम सब भूतबास विभु, सांख्य शास्त्र परचारी ॥१॥
यज्ञमूर्ति हरि वृषभ शक्तिधर, विद्या वहु विस्तारी ।
देह योग ऐश्वर्यमयी जिनि, जगमय जग संहारी ॥२॥
नर नारायन ऋषी तपस्वी, वदरी विपिनविहारी ।
मरकत मनि सम श्याम सुघर अँग, वर पीताम्बरधारी ॥३॥
प्रभु पद पदुम पराग परसि प्रिय, भये मुक्ति अधिकारी ।
सो वरेन्य वरदाता सुरवर, विसरें सुधि न हमारी ॥४॥
जिनि चरननि विधि हर सुर सेवें, कमलाउर सुखभारी ।
बार बार वन्दौं तिनि प्रभुपद, जो अघहर सुखकारी ॥५॥

श्री कश्यप कथित भगवत् स्तोत्र

कश्यप उवाच

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महीयसे ।
सर्वभूतनिवासाय वासुदेवाय साक्षिणे ॥१॥
नमोऽव्यक्ताय सूक्ष्माय प्रधानपुरुषाय च ।
चतुर्विंशद्गुणज्ञाय गुणसंख्यानहेतवे ॥२॥
नमो द्विशीर्ष्णे त्रिपदे चतुःशृङ्गाय तन्तवे ।
सप्तहस्ताय यज्ञाय त्रयीविद्यात्मने नमः ॥३॥
नमः शिवाय रुद्राय नमः शक्तिधराय च ।
सर्वविद्याधिपतये भूतानां पतये नमः ॥४॥
नमो हिरण्यगर्भाय प्राणाय जगदात्मने ।
योगैश्वर्यशरीराय नमस्ते योगहेतवे ॥५॥
नमस्त आदिदेवाय साक्षिभूताय ते नमः ।
नारायणाय ऋषये नराय हरये नमः ॥६॥
नमो मरकतश्यामवपुषेऽधिगतश्रिये ।
केशवाय नमस्तुभ्यं नमस्ते पीतवाससे ॥७॥
त्वंसर्ववरदः पुंसां वरेण्य वरदर्षभ ।
अतस्ते श्रेयसे धीराः पादरेणुमुपासते ॥८॥
अन्ववर्तन्त यं देवाः श्रीश्च तत्पादपद्मयोः ।
स्पृहयन्त इवामोदं भगवान् मे प्रसीदताम् ॥९॥

अदिति द्वारा भगवान् की स्तुति

(७०)

यज्ञेश यज्ञपुरुषाच्युत तीर्थपाद
तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गलनामधेय ।
आपन्नलोकवृजिनोपशमोदयाद्य,
शं नः कृधीश भगवन्नसि दीननाथः ॥*
(श्रीभा० ८ स्क० १७ अ० ८ श्लो०)

छप्पय

अदिति पयोव्रत करयो भये सन्तुष्ट मुरारी ।
प्रकट परावर भये चतुरभुज भवभयहारी ॥
सहसा सम्मुख श्याम निरखि सहमी सुरमाता ।
उठिकें इस्तुति करै जयति जय अग जग त्राता ॥
यज्ञ पुरुष अच्युत अलख, अविनाशी अज अखिल पति ।
उत्पति थिति लय हेतु हरि, विश्वम्भर प्रभु अगति गति ॥

शुद्ध चित्त और सच्ची लगन से यदि तीर्थ व्रत यज्ञ तथा अनुष्ठान द्वारा श्रीहरि की आराधना की जाय तो फिर

---

* भगवान् के वर देने के लिये प्रकट होने पर माता अदितिदेवी भगवान् की स्तुति करती हुई कह रही हैं—"हे यज्ञेश ! हे यज्ञपुरुष ! हे अच्युत ! हे तीर्थपाद ! हे तीर्थकीर्ति ! हे श्रवणमङ्गलनामधेय ! हे शरणागत आर्त हरोदय ! आदिपुरुष ! हे दीनानाथ ! हे भगवन् ! कल्याण करो।"

भगवान् का सिंहासन डोलने लगता है वे अपने स्थान पर रह ही नहीं सकते, तुरन्त ही भक्त के सम्मुख प्रकट हो जाते हैं, क्योंकि वे तो अपने अनुगतों पर कृपा करने के लिये सदा सर्वदा कातर बने रहते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! कश्यप जी से उपदेश ग्रहण करके देवमाता अदिति पयोव्रत का अनुष्ठान अत्यन्त ही भक्ति भाव से करने लगीं। उनके व्रत से सर्वान्तर्यामी श्री हरि अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। वे तुरन्त ही अपने शंख, चक्र, गदा और पद्मधारी चतुर्भुज रूप से भगवती अदिति के सम्मुख प्रकट हो गये। उस समय की भगवान् की शोभा अत्यन्त ही कमनीय थी उसका वर्णन वाणी द्वारा हो ही नहीं सकता, वे तपाये हुए सुवर्ण के समान पीत वर्ण का रेशमी दुपट्टा अपने श्री अंगपर धारण किये हुए थे। पद्म के समान विशाल उत्फुल्ल नयन, पद्म के समान खिला हुआ अद्भुत आनन वक्षःस्थल में पद्म की माला धारण किये हुए पद्म के समान चारों हाथों में शंख, चक्र, और गदा के साथ पद्म को भी धारण किये हुए पद्मनाभ अपने पद्म के समान सुकोमल चरणों का दर्शन कराते हुए अदिति देवी के सम्मुख खड़े हो गये।

सहसा अपने सम्मुख सर्वान्तर्यामी सर्वेश्वर को खड़ा देखकर माता तो भौचक्की सी रह गयी। वह निर्णय ही न कर सकी अब क्या करूँ, संभ्रम के साथ सहसा वह खड़ी हो गई और फिर दंडवत प्रणाम की। प्रणाम के अनन्तर स्तुति भी करनी चाहिये। किन्तु स्तुति करे कैसे उसका कंठ तो गद्‌गद हो गया था प्रसन्नता की प्रबलता के कारण उसका सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो रहा था। प्रयत्न करने पर भी वाणी बाहर नहीं निकलती थीं, बड़े कष्ट से रुक रुक कर वह स्तुति करने लगी।

स्तुति करते हुए अदिति माता कहती हैं—"हे प्रभो ! आप

तो यज्ञेश हैं, अत्यंत श्रम के साथ बहुमूल्य शुद्ध सामग्रियों से दीर्घकाल तक सविधि यज्ञ करने पर अत्यन्त ही कष्ट से आप यज्ञों में कभी कभी प्रकट होते हैं। सो मैं तो स्त्री हूँ यज्ञयाग तो मैं अकेले कर नहीं सकती। आप मेरे इस अल्प से व्रत के कारण अल्प आराधना से अल्प काल में ही इतने सन्तुष्ट हो गये, कि मुझे प्रत्यक्ष आकर दर्शन दिये,यह आपकी अपने अनुगतों के ऊपर अकारण अनुकम्पा ही है। अतः हे यज्ञ पुरुष! आप मेरा कल्याण करें।

हे भगवन् ! आप अच्युत हैं आप अपने स्थान से कभी च्युत नहीं होते आप सदा सर्वदा स्वमहिमा में ही प्रतिष्ठित रहते हैं। आप जो अवतरित होते हैं वह आपकी च्युति नहीं है आप तो सुर साधु गौ और ब्राह्मण तथा अपने आश्रितों के निमित्त अवतार धारण करते हैं। आपके चरणकमल तीर्थ स्वरूप हैं। इस चरण कमल का जिससे भी संसर्ग हो गया वही तीर्थ बन जाता है वही समस्त प्राणियों को पावन बनाने में समर्थ हो जाता है आपके पादपद्मों से प्रवाहित होने वाली भगवती गंगा समस्त प्राणियों के पापों को प्रशमन करने की सामर्थ्य रखती हैं, जो उनके समीप आता है। जो उनका दर्शन स्पर्श तथा पान करता है जो उनमें मज्जन करता है वही निष्पाप बन जाता है। आपके पादपद्मों का ही यह पुण्य प्रभाव है कि उनके संसर्ग से भगवती सुरसरि सर्व तीर्थमयी बन गयी हैं। ऐसे आपके पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

हे पुण्यश्लोक ! आपकी कीर्ति भी तीर्थरूपा है। आपके पादपद्मों के दर्शन पापियों को कहाँ हो सकते हैं, पादपद्मों से निसृता गंगा भी सर्वत्र सुलभ नहीं है, किन्तु आपकी कीर्ति तो सर्वत्र गायी जा सकती है। जो आपकी कीर्ति का गान तथा श्रवण करते हैं, वे भी तीर्थस्वरूप हो जाते हैं किन्तु प्रभो!

भगवान् का सिंहासन डोलने लगता है वे अपने स्थान पर रह ही नहीं सकते, तुरन्त ही भक्त के सम्मुख प्रकट हो जाते हैं, क्योंकि वे तो अपने अनुगतों पर कृपा करने के लिये सदा सर्वदा कातर बने रहते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! कश्यप जी से उपदेश ग्रहण करके देवमाता अदिति पयोव्रत का अनुष्ठान अत्यन्त ही भक्ति भाव से करने लगीं। उनके व्रत से सर्वान्तर्यामी श्री हरि अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। वे तुरन्त ही अपने शंख, चक्र, गदा और पद्मधारी चतुर्भुज रूप से भगवती अदिति के सम्मुख प्रकट हो गये। उस समय की भगवान् की शोभा अत्यन्त ही कमनीय थी उसका वर्णन वाणी द्वारा हो ही नहीं सकता, वे तपाये हुए सुवर्ण के समान पीत वर्ण का रेशमी दुपट्टा अपने श्री अंगपर धारण किये हुए थे। पद्म के समान विशाल उत्फुल्ल नयन, पद्म के समान खिला हुआ अद्भुत आनन वक्षःस्थल में पद्म की माला धारण किये हुए पद्म के समान चारों हाथों में शंख, चक्र, और गदा के साथ पद्म को भी धारण किये हुए पद्मनाभ अपने पद्म के समान सुकोमल चरणों का दर्शन कराते हुए अदिति देवी के सम्मुख खड़े हो गये।

सहसा अपने सम्मुख सर्वान्तर्यामी सर्वेश्वर को खड़ा देखकर माता तो भौचक्की सी रह गयी। वह निर्णय ही न कर सकी अब क्या करूँ, संभ्रम के साथ सहसा वह खड़ी हो गई और फिर दंडवत प्रणाम की। प्रणाम के अनन्तर स्तुति भी करनी चाहिये। किन्तु स्तुति करे कैसे उसका कंठ तो गद्गद हो गया था प्रसन्नता की प्रबलता के कारण उसका सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो रहा था। प्रयत्न करने पर भी वाणी बाहर नहीं निकलती थी बड़े कष्ट से रुक रुक कर वह स्तुति करने लगी।

स्तुति करते हुए अदिति माता कहती हैं—"हे प्रभो! आप

तो यज्ञेश हैं, अत्यंत श्रम के साथ बहुमूल्य शुद्ध सामग्रियों से दीर्घकाल तक सविधि यज्ञ करने पर अत्यन्त ही कष्ट से आप यज्ञों में कभी कभी प्रकट होते हैं। सो मैं तो स्त्री हूँ यज्ञयाग तो मैं अकेले कर नहीं सकती। आप मेरे इस अल्प से व्रत के कारण अल्प आराधना से अल्प काल में ही इतने सन्तुष्ट हो गये, कि मुझे प्रत्यक्ष आकर दर्शन दिये,यह आपकी अपने अनुगतों के ऊपर अकारण अनुकम्पा ही है। अतः हे यज्ञ पुरुष! आप मेरा कल्याण करें।

हे भगवन्! आप अच्युत हैं आप अपने स्थान से कभी च्युत नहीं होते आप सदा सर्वदा स्वमहिमा में ही प्रतिष्ठित रहते हैं। आप जो अवतरित होते हैं वह आपकी च्युति नहीं हैं आप तो सुर साधु गौ और ब्राह्मण तथा अपने आश्रितों के निमित्त अवतार धारण करते हैं। आपके चरणकमल तीर्थ स्वरूप हैं। इस चरण कमल का जिससे भी संसर्ग हो गया वही तीर्थ बन जाता है वही समस्त प्राणियों को पावन बनाने में समर्थ हो जाता है आपके पादपद्मों से प्रवाहित होने वाली भगवती गंगा समस्त प्राणियों के पापों को प्रशमन करने की सामर्थ्य रखती हैं, जो उनके समीप आता है। जो उनका दर्शन स्पर्श तथा पान करता है जो उनमें मज्जन करता है वही निष्पाप बन जाता है। आपके पादपद्मों का ही यह पुण्य प्रभाव है कि उनके संसर्ग से भगवती सुरसरि सर्व तीर्थमयी बन गयी हैं। ऐसे आपके पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

हे पुण्यश्लोक! आपकी कीर्ति भी तीर्थरूपा है। आपके पादपद्मों के दर्शन पापियों को कहाँ हो सकते हैं, पादपद्मों से निसृता गंगा भी सर्वत्र सुलभ नहीं है, किन्तु आपकी कीर्ति तो सर्वत्र गायी जा सकती है। जो आपकी कीर्ति का गान तथा श्रवण करते हैं, वे भी तीर्थस्वरूप हो जाते हैं किन्तु प्रभो!

आपकी कीर्ति भी शास्त्रों में गायी गयी है, शास्त्रों का ज्ञान सभी को नहीं होता शास्त्रज्ञ भी सर्वत्र नहीं मिलते, सब आपकी कीर्ति गा भी नहीं सकते तब सर्व साधारण का उद्धार कैसे हो सो, भगवन् ! आपने उनके लिये भी सुलभता कर दी है आपके असंख्यों नाम हैं, और सभी नाम तीर्थस्वरूप हैं, सभी में अपार शक्ति है, सभी पापों को नाश करने की सामर्थ्य रखते हैं । आपके नामों को जो कोई उच्चारण करेगा वही तीर्थ बन जायगा । उच्चारण न करे केवल अपने कानों से आपके सुमधुर पाप नाशक नामों को सुन ही भर ले तो वे नाम श्रवण मात्र से ही मंगल कारी हैं । उनके श्रवण से ही सभी मंगल स्वयं उपस्थित हो जाते हैं । ऐसे श्रवण मंगल नामधेय आप दीन बन्धु हमारा कल्याण करें ।

हे शरणागत वत्सल ! आपके अवतार के दुष्ट दमन और धर्मसंस्थापन आदि जो अनेक कारण बताये जाते हैं, वे तो गौण हैं । आप तो आदि पुरुष हैं और शरणागतों के दुःख दूर करने के निमित्त ही अवनि पर अवतरित होते हैं, क्योंकि आप दीनों के नाथ हैं, अशरणों के शरण हैं । अनाश्रितों के आश्रय हैं, निष्किंचनों के परम धन हैं । सब के ईश हैं, षडैश्वर्य सम्पन्न हैं । हे भगवन् ! हे भक्तवत्सल ! हे दीन बन्धो ! आप हमारा कल्याण करें । आपको बारम्बार प्रणाम है ।

हे सर्वज्ञ! आप ही इस जगत् के एक मात्र कारण हैं आप ही इस जगत् को बनाते हैं, बनाकर पालते हैं और अन्त में बिगाड़ते भी आप ही हैं । आप सर्वशक्तिवान् हैं, अपनी इच्छा से केवल क्रीड़ा के निमित्त मन विनोद के लिये नाना शक्तियों को धारण करते हैं । निर्गुण होकर भी क्रीड़ा के निमित्त विविध गुणों को स्वीकार करते हैं आप भूमा हैं आप से कोई बड़ा नहीं आप सब से बड़े हैं, आप

सदा सर्वदा स्वरूप में स्थित रहते हैं। आपका पूर्ण बोध हो जाने पर आप स्वयं ही आत्मान्धकार को दूर कर देते हैं। आप विश्वरूप हैं, विश्वम्भर हैं, ऐसे विश्वात्मा विभु के पादपद्मों में बारम्बार नमस्कार है।

हे सर्व समर्थ! प्राणी तभी तक इधर उधर भटकता रहता है, जब तक उसे आपकी प्रसन्नता प्राप्त न हो। कुछ लोग चाहते हैं, हम चिरायु हों, इसके लिये भाँति-भाँति की औषधियाँ खाते हैं, नाना देवी देवताओं की पूजा करते हैं, मन्त्रानुष्ठान करते हैं, किन्तु आपकी शरण में नहीं जाते, आपकी शरण जाने पर तो साधारण आयु नहीं ब्रह्माजी की बराबर,द्विपरार्ध की आयु प्राप्त हो सकती है। कुछलोग चाहते हैं,हमारा दिव्य शरीर हो,जब जैसा चाहें शरीर धारण कर सकें, हम अतुल ऐश्वर्यशाली हों, हमारे ऐश्वर्य के सम्मुख सभी के ऐश्वर्य फीके पड़ जायँ, किन्तु यह अन्य उपासना ओं से नहीं हो सकता है। आपकी प्रसन्नता होने पर स्वेच्छा शरीर तथा अनुपम ऐश्वर्य प्राप्त हो सकता है। कोई स्वर्ग का ऐश्वर्य चाहते हैं, कोई पृथ्वी पर ही रहकर सभी भोगों को भोगने की इच्छा रखते हैं' कोई विल स्वर्ग-पाताल के भोगों की इच्छा रखते हैं, आपकी उपासना करने पर सभी संभव है, जैसा चाहें वैसा सुख प्राप्त कर सकते हैं, कोई अणिमा, गरिमा, लघिमा तथा अन्य समस्त योग सिद्धियों को प्राप्त करना चाहते हैं। आपकी प्रसन्नता से योगकी सकल सिद्धियाँ, धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष तक प्राप्त हो सकती है। आप सर्वदाता हैं, सब कुछ दे सकते हैं, आपके लिये कुछ भी अदेय नहीं कुछ भी दुर्लभ नहीं। संसार बन्धन को सदा के लिये काट सकते हैं जन्म मरण के चक्र को सदा के लिये मेंट सकते हैं। ऋषि मुनि ज्ञानी विज्ञानी आपकी उपासना मोक्ष के निमित्त करते हैं। मैंने तो आप महान् की उपासना एक अत्यन्त ही क्षुद्र कामना से की है। मेरे पुत्रों को

उनके शत्रुओं ने पराजित कर दिया है, उन्हें स्वर्ग से निकाल दिया है। मैं चाहती हूँ, मेरे पुत्र अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लें। यह है तो ऐसा ही कि चक्रवर्ती के समीप जाकर उसे प्रसन्न करके उससे पाव भर आटे की याचना की जाय, किन्तु मैंने तो इसी कामना से आपकी उपासना की है। आपने कृपा करके दर्शन भी दिये हैं, फिर आपके लिये यह कार्य कौन सा कठिन है आप की इच्छा की देरी है, आप जब चाहें तब मेरे पुत्रों को पुनः स्वर्ग के सिंहासन पर बिठा सकते हैं।"

सूतजी कहते हैं—मुनियो! इस प्रकार माता अदितिजी ने भगवान् की स्तुति की, भगवान् ने उन्हें उनके उदर से वामन हो कर अवतार लेकर देवताओं को स्वर्ग दिलाने का वर दिया। और अवतार लेकर वामन बनकर वलि को ठगकर देवेताओं को पुनः स्वर्ग का साम्राज्य प्रदान किया। यह मैंने अदिति माता की स्तुति आप से कही, अब आगे भगवान् ने जैसे मत्स्यावतार धारण किया और उसमें महाराज सत्यव्रत ने जैसे मत्स्य भगवान की स्तुति की, उस स्तुति को आप से कहूँगा।

छप्पय

निज इच्छा तैं करो शक्ति गुन स्वीकृत स्वामी।
सम हिय को हरि लेउ ज्ञानमय निष्कल धामी॥
प्रभु प्रसन्न है जायँ देहिँ दुरलभ वर अबई।
परम आयु ऐश्वर्य अमित इच्छित तनु सबई॥
भूमि स्वरग अपवरग सुख, देहिँ हरहिँ तम मन व्यथा।
जनम मरन मेटैं तुरत, शत्रु विजय फिरि का कथा॥

पद

देहिं वर विश्वेश्वर वरदानी।
मंगलदाता मनहर मोहन, मानद स्वयं अमानी ॥१॥
निरगुन नित्य निरंजन निष्कल, निरविकार निरमानी।
गो द्विज पालक खल दल घालक, बालक बनें बितानी ॥२॥
लै अवतार करें कलक्रीड़ा, वेदनि नेति बखानी।
सतरजतम तें रहित निरन्तर, तऊ बनें गुनखानी ॥३॥
भुक्ति मुक्ति सुख स्वरगहु देवें, त्रिभुवन की रजधानी।
स्वरग सुरनि दै असुर भगाओ, हौं प्रभु अति अज्ञानी ॥४॥

अदिति कृत भगवत् स्तुति

अदितिरुवाच

यज्ञेश यज्ञपुरुषाच्युत तीर्थपाद,
तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गलनामधेय ।
आपन्नलोकवृजिनोपशमोदयाद्य,
शं नः कृधीश भगवन्नसि दीननाथः ॥१॥

विश्वाय विश्वभवनस्थितिसंयमाय,
स्वैरं गृहीतपुरुशक्तिगुणाय भूम्ने ।
स्वस्थाय शश्वदुपबृंहितपूर्णबोध,
व्यापादितात्मतमसे हरये नमस्ते ॥२॥

आयुः परं वपुरभीष्टमतुल्यलक्ष्मीः,
द्योभूरसाः सकलयोगगुणास्त्रिवर्गः ।
ज्ञानं च केवलमनन्त भवन्ति तुष्टात्,
त्वत्तो नृणां किमु सपत्नजयादिराशीः ॥३॥

राजा सत्यव्रत द्वारा मत्स्य भगवान् की स्तुति

(७१)

अनाद्यविद्योपहतात्मसंविद्—
स्तन्मूलसंसारपरिश्रमातुराः ।
यदृच्छयेहोपसृता यमाप्नुयु
र्विमुक्तिदो नः परमो गुरुर्भवान् ॥

(श्री भा० ८ स्क० २४ अ० ४६ श्लो०)

छप्पय

नृपति सत्यव्रत निकट विष्णु मछरी बनि आये ।
शरन माँगि बहु बढ़े भूप मन माहिँ सिहाये ॥
समुझि गये हरि मत्स्य ऋषिनि सँग मोइ बचावें ।
नौका में बैठाइ प्रलय जल माहिं घुमावें ॥
नृप इस्तुति करिबे लगे—प्रभु ही गुरुवर परम हैं ।
नासो माया मोह कूँ, आपु करम अरु धरम है ॥

---

* राजा सत्यव्रत मत्स्य भगवान् की स्तुति करते हुए कहते हैं—"हे भगवन्! अनादि अविद्या से उपहृत हो गया है आत्मज्ञान जिनका तथा अविद्यामूलक संसार के परिश्रम से जो आतुर हो गये हैं। ऐसे पुरुष भी अकस्मात् यदृच्छा से-आपकी कृपा से किसी प्रकार आपकी शरण में पहुँच जाते हैं, वे आपको प्राप्त हो जाते हैं। ऐसे आप हमारे मुक्तिदाता परम गुरु हैं, आपको प्रणाम है।"

जीव अपने पुरुषार्थ से प्रभु को कैसे पा सकता है और महान् से भी महान् भगवान् क्षुद्राति क्षुद्र जीव के सम्मुख कैसे आ सकते हैं। यह जीव तो अनादि अविद्या के बन्धन में ऐसा जकड़ा हुआ है कि पूरा बल लगावे; तो इस अविद्या जंजीर की एक कड़ी को भी नहीं तोड़ सकता। किन्तु इस बन्धन में एक ही आशा है, भगवान् भक्तवत्सल हैं, दीनबन्धु हैं शरणागत प्रतिपालक हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! एक बार महाराज सत्यव्रत कृत माला नदी के किनारे सन्ध्या कर रहे थे। उसी समय एक छोटी सी मछली ने मनुष्य भाषा में राजा से कहा—"राजन्! ये बड़े जलचर जीव मुझे खा जायँगे, मेरी रक्षा करो। राजा ने उसे अपने कमंडलु में रख लिया। वह मछली तो बढ़ती ही गयी बढ़ती ही गयी द्वीप से भी बड़ी हो गयी। अब तो राजा समझ गये यह साधारण मत्स्य नहीं, भगवान् ने ही मत्स्य रूप में अवतार लिया है, राजा को सप्तर्षियों के सहित नौका पर बिठाकर उस नौका को अपने सींग में बाँध कर मत्स्य भगवान् प्रलय के जल में घूमने लगे उस समय मत्स्य भगवान् की स्तुति करते हुए राजा कहने लगे।

राजा सत्यव्रत स्तुति करते हुए कहते हैं—"हे देव! यह जीव अवश है। न यह जन्म लेने में स्वतन्त्र है और न मृत्यु ही इसके वश में है। आप इसे जैसे घुमाते हैं, वैसे घूमता है आप जैसे नचाते हैं, वैसे नाचता है। एक आप की शक्ति है उसे माया कहो, अविद्या कहो उसी की प्रेरणा से यह सब व्यापार चल रहा है। उस अनादि अविद्या ने जीव के यथार्थ बोध को-आत्मज्ञान को-आच्छादित कर लिया है। इसी से जीव इस अविद्या मूलक संसार में ऊँच नीच अनेक योनियों में भटकता फिर रहा है।

विविध योनियों में भ्रमण करने से इसे नानाक्लेश सहने पड़ते हैं, यह माया का ऐसा जाल है, कि जीव ज्यों ज्यों इससे निकलने की चेष्टा करता है, त्यों त्यों इसमें और अधिकाधिक फँसता जाता है। अपने पुरुषार्थ से नहीं—आपके अनुग्रह से—दैव योग से जब आप कृपा करके इसे वरण कर लेते हैं, अपनी शरण में ले लेते हैं, तब यह जीव कृतार्थ हो जाता है। आप ही जब जिसे मुक्त करना चाहते हैं, तब वह मुक्त हो जाता है, आप गुरुओं के भी गुरु हैं, परम गुरु हैं, मैंने तो आपके दर्शनों को कोई प्रयत्न भी नहीं किया था आप ने स्वतः ही अनुग्रह करके मुझे अपनाया है, ऐसे मुक्ति दाता महेश्वर की मैं शरण में हूँ।

भगवन्! जीवों की कैसी बुद्धि विपरीत हो गयी है, जिससे बन्धन बढ़ता है उसी काम को हठपूर्वक करता रहता है, जिनसे जन्म मरण का पथ प्रशस्त होता है, उन्हीं कामों को प्रसन्नता पूर्वक करता है। सोचता तो यह है कि मुझे अमुक वस्तु प्राप्त हो जायगी तो मैं सुखी हो जाऊँगा, अमुक कर्म करने से मेरा दुख दूर हो जायगा, किन्तु वस्तुओं के संग्रह से संसारी कर्मों के करने से उसे और अधिकाधिक दुःख होता है, तमोगुण के प्रभाव से अधर्म को धर्म समझने लगता है। असत् बुद्धि के कारण उलटा बन्धन में दृढ़ता के साथ बँध जाता है। यह असत् बुद्धि और किसी उपाय से दूर हो नहीं सकती। केवल आपकी सेवा के प्रभाव से ही दूर हो सकती है। वास्तविक गुरु तो आप ही हैं आप हमारे हृदय की अज्ञान ग्रन्थिको छेदन कर दें। हे गुरुओं के भी गुरु! हे परम गुरो। हम आपकी शरण में हैं।

प्रभो! इस जीव में चैतन्यांश तो आपका ही है, और अज्ञान तथा भ्रम का अंश अविद्या का है, इस जड़ चैतन्य के संमिश्रण से एक ग्रन्थि पड़ गयी है, एक विचित्रस्थिति हो गयी है, जैसे

सुवर्ण में मल मिल गया हो। चाँदी में अन्य धातु एकीभूत हो गयो हो। सोने चाँदी के साथ मल मिल कर एक हो जाता है, तो वह तोड़ने फोड़ने से पृथक् नहीं हो सकता। हाँ, अग्नि के तपाने से वह शुद्ध हो सकता है। अग्नि ही धातु को पृथक् और मल को पृथक् करने में समर्थ हैं। आप की सेवा ही ऐसी अग्नि है जो हृदय के मल रूप अज्ञान को जलाकर शुद्ध करने में समर्थ हो सकती है। प्रभो! हमें अपनी सेवा प्रदान कीजिये। हे गुरुओं के भी गुरु! हे सच्चिदानन्द प्रभो! हे अखिल अविनाशी देव! आप हमें शिष्य रूप में स्वीकार कीजिये। आपही हमारे गुरु हैं, आपही अज्ञान अंधकार को दूर कर सकते हैं। आपके अतिरिक्त हम और गुरु कहाँ खोजने जायँ? अतः हमने तो आपको ही अपना गुरु स्वीकार कर लिया है। कृपा तो आप ही कर सकते हैं, आपके अतिरिक्त पूर्ण कृपा करने की सामर्थ्य अन्य किसी में भी नहीं।

प्रभो! आप कहेंगे, तुम देवताओं की शरण में जाओ वे कृपा करेंगे, विद्या पढ़ाने वाले, मंत्र दीक्षा देने वाले, धार्मिक कृत्य कराने वाले गुरुओं की शरण में जाओ वे आशीर्वाद देंगे अनुग्रह करेंगे। अन्य माननीय पूजनीय प्राज्ञ पुरुषों के पैर पकड़ो वे सब दया करेंगे। भगवन्! यह सत्य है, पूजा करने वालों पर देवता दया करते हैं, सेवा से सन्तुष्ट होकर गुरु जन भी अनुग्रह करते ही हैं। अन्य प्राज्ञ पुरुष भी प्रणतों पर दया दिखाते हैं, किन्तु हे सर्वेश्वर! देवता, गुरु तथा अन्य प्राज्ञ पुरुष मिल कर जितनी कृपा करते हैं वह आपकी कृपा का दश सहस्रवाँ अंश भी नहीं हो सकती। आप की कृपा रूप सिन्धु के सामने उन सब की कृपा बिन्दु के भी बराबर नहीं हो सकती। कृपा के अपार अगाध सागर तो एकमात्र आप ही हैं, ऐसे अनुग्रहार्णव आप परम गुरु परमेश्वर की हमने शरण ली है। आप हमारे ऊपर कृपा

करें, हमें अपनावें अपने शिष्य के रूप में स्वीकार करें।

प्रभो ! बहुत से गुरु बनने के व्यापारी अज्ञानी पुरुष आकर लोगों से कहते हैं—'बिना गुरु के उद्धार नहीं। तुम हमें अपना गुरु बना लो। हमारे शिष्य हो जाओ, हमारी गुरु-भाव से सेवा-सुश्रूषा किया करो।' जो स्वयं अज्ञान अंधकार में पड़े हुए इधर-उधर भटक रहे हैं, वे दूसरों का क्या उद्धार करेंगे। वे तो लोभ लालच-वश लोगों को फँसाना चाहते हैं, गुरु बनकर अपनी भोग वासनाओं की पूर्ति करना चाहते हैं, ऐसे अज्ञानी गुरुओं के पीछे चलना तो उसी प्रकार है जैसे अन्धे को अगुआ बनाकर उसके पीछे-पीछे चलना। वह तो आगे चलकर निश्चय ही कहीं कूआ खाड़ी में गिरेगा। इसलिये अन्धे को अगुआ बनाना ही क्यों ? क्यों नेत्रहीन के पीछे जायँ ? आप तो सूर्य के समान स्वयं प्रकाश हैं, आपको अन्य किसी भी प्रकाश की अपेक्षा नहीं। आप समस्त इन्द्रियों के साक्षी हैं,मन के भी मन हैं,अन्तःकरण के भी नियामक हैं, अतः आत्मतत्व के जानने के इच्छुक हमने आपको ही अपना एकमात्र पथ-प्रदर्शक नेता तथा गुरु बनाया है। आप हमें इस भवसागर के परली पार पहुँचा दें। हमारा उचित पथ प्रदर्शन करें। आपके अतिरिक्त हम और किसका आश्रय लें ? विवेक-हीन अज्ञानी मानव को गुरु बनाना तो जान बूझकर गड्ढे में गिरना है, अतः आप ही हमारे सर्वस्व हैं, आप ही हमें सुपथ की ओर ले जा सकते हैं, आप ही हमें परिष्कृत पुण्य-पथ दिखा सकते हैं।

स्वामिन् ! बहुत से लोग झोली डंडा लिये इधर से उधर घूमते रहते हैं, हमें गुरु बना लो, हमसे मन्त्र ले लो, बिना गुरु किये कल्याण नहीं, क्षेम नहीं, सुख नहीं, शान्ति नहीं। यह तो सत्य ही है, कि गुरु ही हृदय के अन्धकार को दूर कर सकता है, वही अन्तःकरण में पड़ी ग्रन्थि को खोल सकता है, वही यथार्थ वचन बोल सकता है, किन्तु वैसा गुरु मिले तब तो। ये अज्ञानी

गुरुमानी व्यवहारकुशल पुरुष तो संसारी व्यवहारों में चतुर रहते हैं, ऊपर से उपदेश तो परमार्थ का करते हैं, उनके भीतर वासना धन की भरी रहती है। वे आठ घड़ी यही सोचते रहते हैं, कैसे कोई आँख का अन्धा गाँठ का पूरा मिले। कैसे धनी नर-नारी हमारे चंगुल में फँसें वे परमार्थ के नाम पर बड़े बड़े ढोंग रचते हैं, कुछ लोग फँस भी जाते हैं, उनको वे असद् बुद्धियुक्त कामादि विषयक उपदेश करते हैं। अपने प्रतिद्वंद्वी ऐसे ही व्यापारिक गुरुओं से उनका स्वाभाविक द्वेष होता है, उस द्वेष को वे अनुयायी, अन्धश्रद्धालु, अज्ञानी शिष्य के भीतर भी भरते हैं। राग द्वेष युक्त एक दल बना लेते हैं। अपना अधिक मान कराने के लिये दूसरों को नीचा दिखाने की चेष्टा करते हैं; उनका अपमान करते हैं, सर्व साधारण जनता में उनका विरोध करते हैं, अभियोग चलते हैं। शिष्यों को बटोरा था परमार्थ के नाम से किन्तु उनसे करने लगे, स्वार्थ की सिद्धि। उन्हें आश्वासन तो दिया था, तुम्हें हम संसार सागर से पार पहुँचा देंगे, किन्तु उन्हें और भी अधिक दुस्तर अन्धकार पूर्ण संसार सागर में गिरा देते हैं। उन्हें उभयभ्रष्ट कर देते हैं। जब तक भेंट पूजा देने को द्रव्य रहता है, तब तक उनका आदर सत्कार करते हैं। जब वे धनहीन हो जाते हैं, तो धक्का देकर बाहर कर देते हैं। ऐसे वे संसारी व्यापारी गुरु होते हैं, किन्तु प्रभो! आप तो सर्वसमर्थ हैं, आप्तकाम हैं, आपका ज्ञान भंडार तो अक्षय है, आपका बोध तो अमोघ है; आप सर्वज्ञ सर्वविद् तथा सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। आप सदा सर्वदा सत्य ज्ञान का ही उपदेश करते हैं। उसी आपके यथार्थ ज्ञान द्वारा मानव सरलता से आत्मसाक्षात्कार कर सकता है अपने सत् स्वरूप को उपलब्ध कर लेता है।

हे परमात्मन्! संसार में कोई एक का कोई दो चार दस बीस सहस्र तथा लक्षों का सुहृद् होता है, किन्तु आप तो सम्पूर्ण

भूतों के प्राणिमात्र के सुहृद् हैं। लोक में मनुष्य कुछ सीमित लोगों के प्रिय होते हैं, किन्तु आप तो सर्वप्रिय हैं, सभी को आप प्यार करते हैं, सभी को अपनी सन्तान मानकर स्नेह वरसाते रहते हैं। आप चराचर जगत् के ईश्वर हैं, सबकी आत्मा हैं, सबमें रमण करानेवाले हैं,सबके गुरु होने से ही आपको जगत्गुरु कहते हैं। गुरु भी आप ही हैं और ज्ञान भी आप ही हैं तथा जिसे अभीष्ट सिद्धि इच्छित फल कहते हैं वह भी आप ही हैं। आप घट-घट में व्याप्त हैं,सबके अन्तःकरण में निरन्तर विराजमान रहते हैं, किन्तु यह अत्यन्त ही दुःख की बात है, बहुत ही खेद का विषय है, कि यह मोह-रूपी मदिरा को पान करके मदान्ध बना प्राणी, यह अहङ्कार से अन्धा हुआ जीव तथा विषयों में आसक्त हुआ लोक, आप परमेश्वर को पहिचान नहीं पाता। अत्यन्त निकट-हृदय में विराजमान आपको देख नहीं सकता। भीतर न खोज कर बाहरी पदार्थों में आपका अन्वेषण करता है, यह कैसी विवशता है, कैसी मूर्खता है।

हे सर्वाधार! आप सम्पूर्ण देवताओं में सर्वश्रेष्ठ हैं। आप इस जगत् के एकमात्र आधार हैं, आप पूजनीयों के भी परम पूजनीय हैं, आप परमेश्वर हैं, मैं तत्वज्ञान का उपदेश पाने के निमित्त आपकी शरण में आया हूँ, मुझे किसी संसारी वस्तु की इच्छा नहीं, अभिलाषा नहीं, आकांक्षा नहीं आपको सर्वश्रेष्ठ समझकर ही आपके चरणों में उपस्थित हुआ हूँ, आपके पूजनीय पादपद्मों का आश्रय लिया है। प्रभो! अब आप अपने वचनामृतों से मुझे कृतार्थ कीजिये, मेरे शुष्क हृदय को परमार्थ प्रकाश करने वाले अपने सदुपदेशों द्वारा कृतार्थ कीजिये। अपने सुलझे हुए उपदेशों से मेरे उलझे हुए मन को सुलझाइये। अपने अमोघ उपदेशों से मेरे हृदय की सुदृढ़ग्रंथि को खोल दीजिये। मैं आपके यथार्थ रूप से अपरिचित हूँ, उसे मुझे परिचय कराइये। मुझे

अपने देव दुर्लभ दर्शन देकर कृतार्थ कीजिये। मैं आपकी शरण में हूँ, आप ही मेरे पिता-माता, बन्धु बान्धव, गुरु, परमगुरु तथा सर्वस्व हो। मुझे आशा है, कि आपकी शरण में आने पर मैं रिक्तहस्त रिक्तहृदय नहीं लौट सकता, आप मुझे निजजन जानकर अपना किंकर, सेवक, दास तथा प्रपन्न समझकर अपनावें, यही मेरी आपके पुनीत पादपद्मों में पुनः पुनः प्रार्थना है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब इस प्रकार महाराज सत्यव्रत ने मत्स्य रूपधारी भगवान् से प्रार्थना की, तो उन्होंने प्रलयार्णव में परिभ्रमण करते हुए उन्हें ब्रह्मज्ञान का उपदेश किया जिससे वे कृतार्थ हो गये। यह मैंने संक्षेप में महाराज सत्यव्रत कृत मत्स्य भगवान् की स्तुति कही। अब जैसे महाराज अम्बरीषने भगवान के दिव्यायुध चक्र-सुदर्शन की स्तुति की है, उसे मैं कहूँगा। भगवान् के अस्त्र आयुध, अंग, परिवार, तथा पार्षद सभी भगवत् स्वरूप हैं उनमें और भगवान् में कोई अन्तर नहीं। अतः सुदर्शन-चक्र की स्तुति भी भगवत् स्तुति ही है।"

छप्पय

गुरु खोजन कहँ जायँ, गुरुनिके गुरु तुम स्वामी।
हियतम नासो सपदि जगतपति अन्तरयामी॥
सदा बसो हियमाँहिं अज्ञजन जानि न पावैं।
अवसि अवश तैं तरहिं शरन तव चरननि जावैं॥
नहिँ दीसत अपनो कछु, प्रभु सरबसु ही आपु हैं।
सुहृद, सनेही, सखा, गुरु, भ्राता माता बापु हैं॥

पद

हे हरि! साँचे गुरुवर तुमही।
तुमरी कृपा पाँइ तव पदरज तो तरिजावें तबही ॥१॥
जिनकी कृपा पाइ तम नासै,होहि ज्ञान ततछिनही।
रजत कनक मल अनल मिटावत, त्यों नासत तुम तमही ॥२॥
जितनी कृपा करो तुम माधव, करि न सकें सब सुरही।
अंधे पीछे अंधे धावत, त्यों जड़नर जड़ गुरुहीं ॥३॥
स्वयं प्रकाशक सबके नायक रविसम भ्राजत नितही।
तातें गुरु करि शरन लई तव, चरनकमल नित चितही ॥४॥
आत्मा, गुरु, मित्र, सुहृद सबनिके, पकरे प्रभु तव पदही।
हिय की गाँठि खोलि तम नासो,देओ दरशन अबही ॥५॥

मत्स्य-स्तुति

राजोवाच

अनाद्यविद्योहतात्मसंविद-,
स्तन्मूलसंसारपरिश्रमातुराः ।
यदृच्छयेहोपसृता यमाप्नुयुः,
विमुक्तिदो नः परमो गुरुर्भवान् ॥१॥

जनोऽबुधोऽयं निजकर्मबन्धनः,
सुखेच्छया कर्म समीहतेऽसुखम् ।
यत्सेवया तां विधुनोत्यसन्मतिः,
ग्रन्थि स भिन्द्याद्धृदयं स नो गुरुः ॥२॥

यत्सेवयाग्नेरिव रुद्ररोदनम्,
पुमान् विजह्यान्मलमात्मनस्तमः ।
भजेत वर्णं निजमेष सोऽव्ययो,
भूयात् स ईशः परमो गुरोर्गुरुः ॥३॥

न यत्प्रसादायुतभागलेशम्,
अन्ये च देवागुरवो जनाः स्वयम् ।
कर्तुं समेताः प्रभवन्ति पुंसः,
तमीश्वरं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥४॥

अम्बरीष कृत सुदर्शन स्तुति

(७२)

सुदर्शन नमस्तुभ्यं सहस्राराच्युतप्रिय ।
सर्वास्त्रघातिन् विप्राय स्वस्ति भूयाद् इडस्पते ॥

(श्री० भा० ९ स्क० ५ अ० ४ श्लो०)

छप्पय

अम्बरीष घर अतिथि भये न्योते क्रोधी मुनि ।
प्रथम पियो पय दिवस द्वादशी दुरवासा सुनि ॥
नृप वध करिबे तुरत प्रकट कृत्या मुनि कीन्हीं ।
मुनि के पीछे लग्यो सुदरसन दुरगति कीन्हीं ॥
त्रिभुवन घूमे शरन नहिं, आइ नृपति पकरे चरन ।
भूप विनय करि चक्र की, कहें—देव ! अशरन शरन ॥

जैसे शक्कर का कोई सुंदर खिलौना बनावें, उसमें नाक कान मुख, हाथ, उँगली नख सभी शक्कर के ही होंगे, दुपट्टा, धोती, मुकुट, कुंडल, कंकण आदि वस्त्र आभूषण भी शक्कर के ही

---

* सुदर्शनचक्र की स्तुति करते हुए राजा अम्बरीष कह रहे हैं—'हे सुदर्शनचक्र ! हे अच्युत प्रिय ! हे सहस्र धाराओं वाले ! हे सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्रों के संहारक ! हे इडस्पते ! तुम्हारे लिये नमस्कार है, ब्राह्मण का कल्याण हो, इन्हें शान्ति प्राप्त हो ।

बनेंगे अर्थात् आकृति, रूप, रंग चाहे जैसा बन जाय, उस खिलौने में जो भी कुछ है शकर ही शकर है, शकर के अतिरिक्त कुछ नहीं। नाम रूप के दर्शन होने पर और अदर्शन होने पर भी सभी अवस्था में शकर ही शकर रहेगी। इसी प्रकार सच्चिदानंदघन भगवान् विष्णु के वस्त्र, आभूषण, अस्त्र, आयुध सभी चिन्मय हैं। सभी भगवत् स्वरूप हैं, भगवान् की भाँति ही उनके अंग उपाङ्ग, अस्त्र, आयुध, पार्षद तथा परिवार सभी पूज्य हैं सभी की भगवत् बुद्धि से पूजा तथा स्तुति होती है। भगवान् के शंख चक्रादि चिह्न भगवान् के ही रूप हैं, तभी तो वैष्णव गण अत्यंत श्रद्धा भक्ति के सहित शंख चक्रादि इन परम पावन चिह्नों को बड़े गौरव के साथ धारण करते हैं,। जिस वैष्णव के मस्तक पर भगवान् के चरण चिह्न तिलक रूप में न हों, जिसके अंगों पर भगवान् के आयुधों आदि के छापे न लगे हों, वह तिलक छापों से रहित व्यक्ति वैष्णव कैसा ?

सूतजी कहते हैं—मुनियो ! महाराज अंबरीष एकादशी का व्रत समाप्त करके द्वादशी के दिन ज्यों ही पारायण करने को उद्यत हुए त्यों ही महाक्रोधी दुर्वासा मुनि राजा के अतिथि हुए। राजा ने उन्हें भोजन को निमंत्रित किया। मुनि मध्यान्ह सन्ध्या करने यमुना किनारे चले गये और दीर्घ ध्यान में तल्लीन हो गये। उधर द्वादशी निकलती देखकर राजा ने ब्राह्मणों की अनुमति से जल लेकर व्रत का पारायण किया। मुनि ने जब सुना तो आग बबूला हो गये, राजा को मारने कृत्या उत्पन्न की। राजा की रक्षा सदा भगवान् का सुदर्शन चक्र करता था, उसने मुनि का पीछा किया। मुनि तीनों लोकों में गये किन्तु किसी ने उन्हें शरण न दी। अंत में भगवान् के कहने से वे राजा की ही शरण में आये। तब राजा ने भगवत् बुद्धि से सुदर्शन चक्र की स्तुति की।

सुदर्शन चक्र की स्तुति करते हुए राजा कह रहे हैं—"हे भगवान् के अभिन्नस्वरूप सुदर्शनचक्र ! देखो, 'संसार में जितना तेज है, सभी आपका लीला विलास है,आपके बिना सभी निस्तेज हैं, आपका ही तेज विश्व ब्रह्माण्ड में सर्वत्र व्याप्त है। संसार में अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा ये ही सबसे अधिक तेजस्वी माने जाते हैं। सर्वभक्षी—सबको स्वाहा करने वाले अग्निदेव आप ही हैं। अग्नि में जो तेज है वह उन्हें आप से ही प्राप्त हुआ है। सूर्यदेव में भी आप ही हैं। सूर्य में से आपका तेज पृथक् कर दिया जाय, तो फिर उनमे कुछ शेष रहेगा ही नहीं। दिनमें सूर्य प्रकाश प्रदान करते हैं रात्रिमें जब अस्ताचल को प्रस्थान करते हैं,तब अपने तेज को अग्नि, चन्द्र तथा जल में रख जाते हैं इसीलिये ये तीनों रात्रि में अधिक प्रकाश देते हैं, निशानाथ चन्द्र भी आप ही हैं। सम्पूर्ण नक्षत्रों के स्वामी सोम आप से ही तेज प्राप्त करके तेजस्वी हुए हैं। जल भी आप का ही स्वरूप है। आप ही पृथ्वी बनकर चराचर जीवों को अपने ऊपर धारण करते हैं, आप ही वायु बनकर व्योम में विचरणकरते हैं, आप ही आकाश का रूप रखकर सबको अवकाश देते हैं। आप ही शब्द बन जाते हैं, आप ही विविध रूपों में दीखने लगते हैं। आप ही रस बनकर सबको आस्वादन कराते है आप ही गन्ध बनकर सुगन्ध दुर्गन्ध के रूप में घ्राणेन्द्रिय द्वारा भान होते हैं, आप ही स्पर्श बनकर त्वचा द्वारा व्यक्त होते हैं। आप ही कर्ण, चक्षु, रसना, घ्राण तथा त्वचा बनकर ज्ञानेन्द्रियों के नाम से बोले और जाने जाते हैं, आप ही वाणी, हाथ, पैर, गुदा तथा शिश्न रूप रखकर कर्मेन्द्रियाँ कहलाने लगते हैं।

हे समस्त आयुधों में श्रेष्ठ ! हे सहस्रों धाराओं वाले ! हे सभी शस्त्रों को संहार करने में समर्थ शक्तिशाली देव ! मैं आपके पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ, हे पृथिवी पालक ! आपको

बारम्बार नमस्कार है। आप अब कृपा कीजिये। इन विप्रदेव पर सदय हो जाइये, इनका पिंड छोड़ दीजिये, इन्हें अभय प्रदान कीजिये। हे करुणासागर ! इन ऋषि का कल्याण हो, इन्हें शाश्वती शान्ति प्राप्त हो। इनका भय सर्वथा छूट जाय। आपके प्रेम पात्र बनें।

हे भगवान् के परमप्रिय आयुध ! संसार में आप ही आप तो हैं, आपके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। आप विश्व ब्रह्माण्डों को धारण करने वाले साक्षात् धर्म हैं। जिसे वेदों में ऋत तथा सत्य कहा है वह आपका ही स्वरूप तो है। आप के बिना ऋत और सत्य का अस्तित्व ही नहीं। देवताओं को जिनसे आहार मिलता है वह यज्ञ भी तो आप ही हैं। सम्पूर्ण यज्ञों के भोक्ता, यज्ञों के फल दाता यज्ञ पुरुष भी आप ही हैं। आप ही सम्पूर्ण लोकों की रक्षा करते हैं, आपके द्वारा ही यह चराचर विश्व सुरक्षित है। भगवान् विष्णु के, क्षीरशायी श्रीमन्नारायण के, सबसे श्रेष्ठ, सबसे अधिक तपस्वी, यशस्वी, वर्चस्वी तथा मनस्वी और तेजस्वी अस्त्र आप ही हो, अधिक क्या कहें आप ही सर्वमय हैं सर्व स्वरूप हैं तथा सर्वरक्षक हैं। हे सुनाम ! आप न हो तो संसार में सभी अमर्यादित हो जायँ, किसी प्रकार की मर्यादा ही न रहे। सूर्य स्वेच्छा से जब चाहें तब उदित हों, जब चाहें तब अस्त हो जायँ, चन्द्र इच्छानुसार पूर्ण उदित हों या न उदित हों, समुद्र जब चाहे तब प्रलय करदे, किन्तु आप ही सबको मर्यादा में बाँधे हुए हैं, सम्पूर्ण धर्म की मर्यादा आपके ही द्वारा पालित हो रही है। आप न हों तो ये असुरगण अल्पकाल में ही सभी को भक्षण कर जायँ, किन्तु आप ही इन असुरों का शासन करते हैं, आप इन असुरों के लिये अग्नि स्वरूप हैं। इन दैत्य दानवों को दहन करने में आप दावानल के समान हैं। आप ही त्रिभुवन के रक्षक हो, आप ही विश्व भक्षक हो, आप ही अलौकिक अद्भुत

कर्म कर सकते हैं, आप मन से भी अत्यधिक वेग से दौड़ सकते हैं, आप सब कुछ कर सकते हैं। हे सर्वसमर्थ ! मैं अत्यन्त ही विनय के साथ आपकी वन्दना करता हूँ, दीनभाव से स्तुति करता हूँ, ब्राह्मण के ऊपर सदय होजायँ, इन्हें क्षमा कर दें, इनकी चिन्ता को हटा दें, इन्हें निर्भय बना दें।

हे वेदवाणी के अधिपते ! आप संहारक ही नहीं परम प्रकाशक हैं। मुमुक्षु पुरुष ज्ञान प्राप्ति के निमित्त आपकी शरण में जाते हैं, आप उन महाभाग्यशाली संतों के अज्ञान को अपने धर्म मय तेज से दूर कर देते हैं। असंख्यों महात्माओं को आपने अपने दिव्य तेज से ज्ञान दान दिया हैं, देते हैं और आगे भी देते रहेंगे। आपकी अलौकिक महिमा का कोई भी प्राणी पार नहीं पा सकता और सूर्य चन्द्रमा अग्नि आदि के समस्त तेज को अपने में धारण करते हैं। आप परम वर्चस्वी हैं। यह जो कार्य कारणात्मक सद् असद् रूप दृश्य प्रपंच है, चराचर जगत् है, यह आप का ही साकार स्वरूप है, आप जगन्मय हैं।

हे अपराजित ! आप की कभी भी पराजय नहीं होती। आप विजय स्वरूप हैं, तभी तो आपको सुविज्ञ पुरुष अजित इस नाम से पुकारते हैं। आप की शोभा अद्‌भुत है, आप भगवान् विष्णु के कर कमल में जब विराजते हैं; उस समय आपकी शोभा अवर्णनीय होती है। संग्राम के समय जब श्रीहरि असुरों की सेना में आपको घुमाकर फेंकते हैं, तब दैत्य दानवों के छक्के छूट जाते हैं, वे हतप्रभ होकर आँखें बन्द कर लेते हैं। आप भी जिधर से सर्र करते हुए निकलते हैं उधर ही दैत्य-दानवोंका संहार करते हुए चलते हैं। जिस समय आप असंख्यों दैत्य दानवों के अंग प्रत्यंगों को काटते हुए आगे बढ़ते हैं, तो असंख्यों हाथ, पैर, सिर, उदर, ऊरु, चरण, ग्रीवा, मस्तक कट कट कर इधर उधर बिखरने लगते हैं, ऐसा प्रतीत होता है मानों आपके उदर मे कटे हुए असंख्यों अंग

प्रत्यंग भरे हुए हैं; आप उन्हें अत्यंत वेग से उगलते हुए आगे बढ़े चले आरहे हैं। जिस भाग्यशाली ने आपका यह विकराल भयंकर रूप देखा है, वही आप की समर कालीन शोभा का अनुभव कर सकता है।

हे विश्वरक्षक! समराङ्गण में समस्त शत्रु मिल कर आप पर प्रहार करते हैं आप सबके अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार को सुगमता के साथ सहन कर लेते हैं, किसी का भी अस्त्र शस्त्र आपका बाल भी बाँका नहीं कर सकता, आप सबके ऊपर ही रहते हैं, जगन्नियन्ता भगवान् गदाधर ने आप को असुरों के संहार के ही लिये नियुक्त किया है। आप सदा सर्वदा दुष्टों का ही दमन करते रहते हैं, जिसपर आप प्रहार करते हैं, वह बच नहीं सकता। प्रभो! ये दुर्वासा तो दुष्ट नहीं हैं, ये तो ब्राह्मण हैं, ऋषि हैं, तपस्वी हैं। यदि मेरे निमित्त आप इनका संहार करेंगे तो हमारे कुल में कलंक लग जायेगा, अतः हमारे कुल के कल्याण के निमित्त हमारे परिवार के भाग्योदय के लिये आप इन्हें छोड़ दें। यदि इनका मंगल हो जायगा, कल्याण हो जायगा ये निर्भय बन जायँगे तो आपकी हम पर अत्यंत ही अनुग्रह होगी, महती अनुकम्पा होगी।

हे अस्त्रों में सर्वश्रेष्ठ! यदि हमने कोई पुण्य कार्य किया हो, हमसे यदि कोई सुकृत बन पड़ा हो तो उसके प्रभाव से ये ऋषि भयरहित हो जायँ। यदि हमारे द्वारा उचित समय में योग्य पात्र को कभी दान दिया गया हो, तो ये ऋषि अभय हो जायँ। यदि हमसे यज्ञयाग सुकृत बन पड़े हों, तो उसी के पुण्य प्रभाव से ये विप्र दुःख से छूट जायँ। यदि हमने सविधि स्वधर्म का पालन किया हो, तो वह धर्म आड़े आकर आपके द्वारा इन्हें निर्भय बनादे। यदि हमारे कुल में कभी ब्राह्मण का अपमान न हुआ हो, सदा ब्राह्मणों की सेवा सुश्रूपा तथा भक्ति की जाती हो, तो उस

हमारी कुलपरम्परा की मर्यादा से मुनिवर मोह मुक्त हो जायँ।

हे भगवत् स्वरूप सुदर्शन ! सम्पूर्ण गुणों के एक मात्र आश्रय भगवान् वासुदेव जितने प्रसन्न सर्व भूतात्मभाव से होते हैं, उतने प्रसन्न किसी भी कार्य से नहीं होते, अतः हमने यदि सम्पूर्ण चराचर में आत्मरूप से श्रीमन्नारायण को ही समझा हो और समदर्शी भगवान् हम पर प्रसन्न हों,तो हे अस्त्र देव ! ये विप्रवर तत्काल दुःख से निवृत्त हो जायँ, अभी इसी समय संकट से छूट जायँ,

सूतजी कहते हैं—"मुनिवर ! जब भक्त प्रवर राजा अम्बरीष ने इस प्रकार भगवत्स्वरूप चक्र सुदर्शन की प्रार्थना की, तो सुदर्शन चक्र ने मुनि का पीछा करना छोड़ दिया। राजा की इस स्तुति से दुर्वासा मुनि निर्भय हो गये। यह मैंने आप को अम्बरीष कृत चक्र सुदर्शन की स्तुति सुनाई, अब आप महाराज सगर के पौत्र महाराज अंशुमान् ने जिस प्रकार कपिल भगवान् की स्तुति की है, उसे सावधानी के साथ श्रवण कीजिये।

छप्पय

तुम रवि,शशि, छिति, गगन, वायु, जल अगिनि विषय हैं।
करन, धरम, ऋत, सत्य, यज्ञपति, मख, रक्षक हैं॥
धरमपाल, अतितेज, जगन्मय जगहितकारी।
अजित, असुर संहार, विश्वपति खलदलहारी॥
दुर्वासा दुख दूर हो, कृपा करो कल्याणकर।
बार बार विनती करूँ, बचें विपतितैं विप्रवर॥

पद

सुदरसन ! सबकूँ सुख सरसाओ ।
तुमही तेज सकल तेजनि में तुम ही विश्व बनाओ ॥१॥
तुमही भूत, विषय, मन, इन्द्रिय, तुमहीं मन भरमाओ ।
तुमही पालो तुमही मारो तुम सब स्वाँग रचाओ ॥२॥
तुम अज, अच्युत, अजित अखिलपति, अद्भुत खेल खिलाओ ।
हरि हाथनि तैं छूटो रन में तब तुम प्रलय मचाओ ॥३॥
असुर चरन, उरु, उदर, हृदय, कर, सिर, धड़काटि गिराओ ।
अगनित अंग भंग करि करि कें रनथल विकट बनाओ ॥४
विनवौं बार बार प्रभु पग परि, अधमनिकूँ अपनाओ ।
विप्र वेगि विपदातैं छूटे, ममकुल लाज बचाओ ।

अम्बरीष कृत सुदर्शन स्तुति

अम्बरीष उवाच

त्वमग्निर्भगवान् सूर्यस्त्वं सोमो ज्योतिषां पतिः ।
त्वमापस्त्वं क्षितिर्व्योम वायुर्मात्रेन्द्रियाणि च ॥१॥
सुदर्शन नमस्तुभ्यं सहस्राराच्युतप्रिय ।
सर्वास्त्रघातिन् विप्राय स्वस्ति भूया इडस्पते ॥२॥
त्वं धर्मस्त्वमृतं सत्यं त्वं यज्ञोऽखिलयज्ञभुक् ।
त्वं लोकपालः सर्वात्मा त्वं तेजः पौरुषं परम् ॥३॥
नमः सुनाभाखिलधर्मसेतवे,
ह्यधर्मशीलासुरधूमकेतवे ।
त्रैलोक्य गोप्त्राय विशुद्धवर्चसे,
मनोजवायाद्भुतकर्मणे गृणे ॥४॥
त्वत्तेजसा धर्ममयेन संहृतं,
तमः प्रकाशश्च धृतो महात्मनाम् ।
दुरत्ययस्ते महिमा गिरां पते,
त्वद्रूपमेतत् सदसत् परावरम् ॥५॥
यदा विसृष्टस्त्वमनञ्जनेन वै,
बलं प्रविष्टोऽजित दैत्यदानवम् ।
बाहूदरोर्वङ्घ्रिशिरोधराणि,

वृक्णन्नजस्रं प्रधने विराजसे ॥६॥

स त्वं जगत्त्राण खलप्रहाणये,
निरूपितः सर्वसहो गदाभृता ।
विप्रस्य चास्मत्कुलदैवहेतवे,
विधेहि भद्रं तदनुग्रहो हि नः ॥७॥

यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः ।
कुलं नो विप्रदैवं चेद् द्विजो भवतु विज्वरः ॥८॥
यदि नो भगवान् प्रीत एकः सर्वगुणाश्रयः ।
सर्वभूतात्मभावेन द्विजो भवतु विज्वरः ॥९॥

अंशुमान् कृत कपिल स्तुति

(७२)

न पश्यति त्वां परमात्मनोऽजनो
न बुध्यतेऽद्यापि समाधियुक्तिभिः।
कुतोऽपरे तस्य मनः शरीरधी
विसर्गसृष्टा वयमप्रकाशाः ॥*
(श्री० भा० ९ स्क० ८ अ० २२ श्लो०)

छप्पय

सहस साठ सुत सगर यज्ञ हय खोजन के हित।
कपिलाश्रम में गये लखे मुनि ध्यान समाहित॥
हय लखि समुझे चोर करयो अपराध अधिक जब।
भये भसम पुनि अंशुमान मुनि विनय करी तब॥
रूप जथारथ नहिं लख्यो, हे भगवन्! अब तलक अज।
तो फिर हम अति जीव लघु, कैसे तुमकूँ सकहिं भज॥

---

* कपिल भगवान् की स्तुति करते हुए अंशुमान कह रहे हैं—"प्रभो! जिन परम आत्मा ब्रह्माजी को लोग अजन्मा कहते हैं। वे वेदगर्भ ब्रह्मा आप को आजतक न तो प्रत्यक्ष ही देख सके और न समाधि तथा युक्तियों द्वारा पूर्ण रूप से परोक्ष अनुभव कर सके, जब इतने समर्थ अज आपके स्वरूप ज्ञानमें असमर्थ हैं, तो फिर उन ब्रह्माजी के मन, बुद्धि तथा शरीर से उत्पन्न होने वाले हम साधारण अज्ञानी जीव भला आप को कैसे पहिचान सकते हैं।"

अपने पूर्वजों के अपराधों को जो स्तुति प्रार्थना करके क्षमा करा लेते हैं, संसार में वे ही सत्-पुत्र कहलाते हैं। पुत्र की कामना इसी कारण की जाती है, कि वे अपने पितरों को नरक से तार सकते हैं, अधम योनियों से उद्धार कर सकते हैं, जो पुत्र ऐसा न करके केवल पेट ही पालते रहते हैं, विषयों में ही लिप्त रहते हैं, लोक परलोक का कुछ भी ध्यान नहीं रखते, उनमें और शूकर कूकर के पुत्रों में कोई अन्तर नहीं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! महाराज सगर के दो रानियाँ थीं। एक के साठ सहस्र सुत थे और एक के केवल असमंजस नाम का एक ही पुत्र था। असमंजस के एक पुत्र था अंशुमान्। असमंजस तो पूर्वजन्म का योगी था, वह तो वन को चला गया। राजा ने अश्वमेध यज्ञ किया। स्पर्धा के कारण इन्द्र उनके यज्ञीय घोड़े को चुराकर कपिल मुनि के आश्रम पर बाँध आये। राजा ने साठ सहस्र पुत्रों को घोड़ा खोजने भेजा। कपिल मुनि समाधि में थे, घोड़े को देखकर इन सब ने मुनि को ही चोर समझा, वे इन्हें ताड़ने लगे कुवाच्य कहने लगे अतः अपने अपराध से ये सबके सब भस्म हो गये। फिर राजा ने अपने पौत्र अंशुमान् को भेजा। अंशुमान् ने अपने पितृव्यों की भस्म देखी तो वे सब रहस्य समझ गये और भगवान् कपिल की हाथ जोड़कर गद्गद कंठ से स्तुति करने लगे।

कपिल भगवान् की स्तुति करते हुए अंशुमान् कह रहे हैं—"प्रभो! हमारे पितरों ने आपके यथार्थ स्वरूप को पहिचाना नहीं। इसी कारण उनसे आपका अपराध बन गया। आपको पहिचानना कोई साधारण बात नहीं है। सर्व साधारण पुरुष के लिये आपके सत्स्वरूप को समझना असंभव ही है। साधारण पुरुषों की बात छोड़ दीजिये। जो इस सम्पूर्ण सृष्टि के कर्ता धर्ता विधाता श्रीब्रह्मा जी हैं, जो कि अज कहलाते हैं, वे सर्वलोक

नमस्कृत, सबके जनक कमलयोनि ब्रह्माजी भी अपने से अर्वाग आप अव्यक्त को प्रत्यक्ष नहीं देख सकते। यह कहें कि प्रत्यक्ष न भी देख सकें नाना प्रकार शास्त्रीय युक्तियों द्वारा अथवा ध्यान धारणा समाधि के द्वारा आपका पूर्णरूप से परोक्ष ही ज्ञान हो जाता होगा, सो भी बात नहीं। उन्हें भी सर्वात्मभाव से न प्रत्यक्ष ज्ञान होता है न पूर्णरीत्या परोक्ष ही। जब सब के पितामह ब्रह्माजी की यह दशा है, तब हम तो उन मानसिक पुत्रों के पुत्रों द्वारा मैथुनी सृष्टि से उत्पन्न हुए हैं। हमारे ज्ञान को तो माया अविद्या ने ढक लिया है। हम सब तो ब्रह्माजी की मन बुद्धि तथा शरीर से उत्पन्न होने वालों के भी कितनी पिछली पीढ़ी वाले जीव हैं। आपको तो देवता प्रजापति मनुष्य तथा अन्य योनियों के रूप में रचे हुए जीव भी नहीं जान सकते, फिर हम अज्ञानियों की बात तो पृथक् रही। हमारे पितरों से अज्ञान में जो अपराध हो गया है, हे भगवन ! उसे आप क्षमा कर दें।

प्रभो ! हम संसारी जीव आपको देखना भी चाहें तो कैसे देख सकते हैं। देखिये, एक तो आप की यह बहुरूपिणी माया ही ऐसी ठगिनी है कियहीसमस्त जीवोंको भ्रमारही है। असत् में सत् बुद्धि कर रही है। सत्व रज और तम इन तीनों गुणों का ऐसा चक्कर है, कि पृथिवी लोक ही नहीं स्वर्गादि उत्तम लोकों के जीव भी इन्हीं गुणों के चक्कर में फँस कर ऊँची नीची योनियों में चक्कर काटते रहते हैं। ये तीनों गुण तीनों ही अवस्थामें पिंड नहीं छोड़ते। जब तक जागते रहते हैं, इन्हीं संसारी पदार्थों को देखते रहते हैं, इन्हीं में अन्तःकरण तथा इन्द्रियों को फँसाये रखते हैं, जिन पदार्थों को जागृत में देखते सुनते हैं, उन्हीं को स्वप्न में भी देखते हैं स्वप्न में भी ये त्रिगुणात्मक पदार्थ पीछा नहीं छोड़ते। जब गाढ़ निद्रा में सुषुप्ति अवस्था में चले जाते हैं, तो वहाँ भी अज्ञान में ही लय हो जाता है, उस अवस्था में भी अज्ञान का

ही अनुभव करते हैं। जब तक अन्तःकरण में गुणों का लेश है तब तक आप निर्गुण दिखाई नहीं देते। गुणातीत हो जाने पर ही आप का संस्पर्श संभव हो सकता है। आप कहीं बाहर नहीं हैं सभी के अन्तःकरण में विराजमान हैं, अत्यंत ही निकटतम हैं, किन्तु हम अज्ञानी तो बहिर्मुख हैं इन्द्रियों के द्वार बाहर की ओर हैं, अतः हम बाहरी ही पदार्थों का अनुभव करते हैं। भीतर अन्तःकरण में छिपे आपको देखने में असमर्थ होते हैं। ऐसे तो आप महान् है, दुर्विज्ञेय हैं। सच्चिदानंद तथा ज्ञानघन स्वरूप हैं, फिर आप ही बतावें हम मूढ़मति मंद बुद्धि वाले किन शब्दों द्वारा आपकी स्तुति कर सकते हैं, किस क्रिया से आप को रिझा सकते हैं, क्या कहकर विनती कर सकते हैं।

आप तो मायातीत हैं, विशुद्ध हैं प्रपंच से परे हैं, हम लोग भेद भ्रम युक्त हैं, फिर आप महतोमहीयान् की उपासना चिन्तना कैसे कर सकते हैं। आप का चिन्तन तो विशुद्ध बुद्धि वाले अमायिक परम ज्ञानी ही कर सकते हैं, तभी तो जिनका आत्म स्वरूप के अनुभव से यह गुणमय भेद भ्रम निवृत्त हो गया है,जो कभी माया के चक्कर में पड़े नहीं हैं, उन सनक सनंदन सनत्कुमार तथा सनातन आदि निष्कपट अज्ञान रहित मुनियों द्वारा आप अहर्निशि निरन्तर चिन्तन किये जाते हैं, वे लोग सदा आपका भजन करते रहते हैं।

हे स्वामिन् ! आप गुणातीत हैं माया के तीनों गुणों से आप सर्वदा परे हैं। आपके लिये कोई कर्म नहीं अकर्म नहीं कर्तव्य अकर्तव्य नहीं। विधि नहीं, निषेध नहीं, आप सभी प्रकार के कर्मों से सदासर्वदा रहित हैं। आपमें स्त्री पुरुष, तथा नपुंसक आदि लिङ्गों का भी कोई भेद नहीं, आप सर्वलिङ्ग अथवा अलिंग हैं। आपका कोई नाम नहीं, रूप नहीं, आकृति नहीं, प्रकृति नहीं, ये सभी भाव

आप में से तिरोभाव हो गये हैं। तिरोभाव क्या हो गये हैं आप में ये सब कभी थे ही नहीं। आप तो कार्य कारण से सदा रहित हैं। फिर भी आपकी एक आकृति दिखायी देती है। आप शरीर से प्रतीत होते हैं। हमने सुना है आपने महामुनि कर्दम के यहाँ माता देवहूति के गर्भ से जन्म लिया है, दिव्य चिन्मय शरीर धारण किया है, सो प्रभो! आप का जन्म कुछ कर्मों के अधीन थोड़े ही है। आप पूर्वके संचित कर्मों में से प्रारब्ध भोगने थोड़े ही आये हैं। आपने तो स्वेच्छा से ज्ञानोपदेश के निमित्त यह मुनि रूप रख लिया है। आप लोकसंग्रह के निमित्त तप में निरत रहते हैं। ऐसे गुणातीत ज्ञान स्वरूप आप सच्चिदानन्दघन प्रभु के पाद पद्मों में वारम्बार नमस्कार है।

स्वामिन्! इन अज्ञानी जीवों पर कृपा करो। ये अज्ञ पुरुष आपकी दया के पात्र हैं। पुरुष स्त्री को देखकर स्त्री पुरुष को देखकर काम के अधीन हो जाते हैं, अपने विवेक को खो बैठते हैं, परलोक को भूल जाते हैं। इन अनित्य क्षणभंगुर नाशवान वस्तुओं को व्यर्थ में संग्रह करने में व्यग्र बने रहते हैं। इन्हें एकत्रित करके लोभाभिभूत हुए अपने आप लोभ का जाल बनाकर उसमें फँस जाते हैं और तड़पते रहते हैं।

अपने आस पास के लोगों के पास अधिक विषय सामग्री देखते हैं, उनका अधिक मान सम्मान सुनते देखते हैं, तो अकारण ही ईर्ष्या में जलते भुनते रहते हैं। विषयों के मोहमें अन्धे बन कर भ्रांत चित्त होकर दीन बने आशा लगाये चिन्ता का भार सिर पर लादे, इधर उधर व्यर्थ में भटकते फिरते हैं। इन अनित्य तुच्छ संसारी पदार्थों को ही परम पुरुषार्थ मानकर इनकी प्राप्ति के लिये व्यग्र बने रहते हैं। गृह,कुटुम्ब, दारा, सुत, धन इन्हीं की चिन्ता में व्यग्र रहते हैं।

हे स्वामिन्! बड़े भाग्य से आज आपके दर्शन हुए। अब हमें विषयों की अभिलाषा तुच्छ-सी प्रतीत होने लगी है। नाना कर्म तथा इन्द्रियजन्य विषयों का आश्रय रूप जो हमारा सुदृढ़ मोह पाश था आपके दर्शनों से अब ढीला पड़ने लगा है। आज हम अपना सुदिन समझते हैं, अत्यन्त सौभाग्य का दिवस मानते हैं जो आप ज्ञान स्वरूप मुक्ति के दाता सच्चिदानन्द श्रीहरि का देव दुर्लभ दर्शन प्राप्त हुआ। प्रभो! कृपा करें, स्वामिन्! हम अधमों पर अनुग्रह करें, जिस से आप के स्वरूप का साक्षात्कार हो।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अंशुमान् की इस स्तुति से भगवान् कपिल प्रसन्न हुए,उन्होंने कुमार को अश्व लेजाने की अनुमति दी और पितरों के उद्धार के लिये गंगाजी को लाने की आज्ञा दी, जिसे उनके पौत्र महाराज भगीरथ लाये। जिनसे सगर के साठ सहस्र पुत्रों का उद्धार हुआ। यह मैंने अंशुमान् कृत कपिल स्तुति आप से कही, अब जैसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी माता देवकी के गर्भ में आये और देवताओं ने जैसे गर्भस्थ श्रीहरि की स्तुति की उसे मैं आप से कहूँगा।"

छप्पय

माया मोहित मनुज मोक्षपति ममता में मति।
नहीं भावना करें, आपु तो अगतिनिकी गति॥
नाम,रूप, गुन, करम सबनितैं तुम हरि न्यारे।
काम, लोभ, मोहादि फँसे सब जीव विचारे॥
दारा धन घर कुटुम में, उरझे भटकें सकल जन।
धन्य भये प्रभु दरस करि, तव चरननि महँ बसहि मन॥

पद

कपिल हरि ! करुना सिन्धु कहाओ !
अवतक अज परतच्छ न निरखें, कैसे हमें लखाओ ॥१॥
तुमरी माया जीव भुलानों, नहिं तुम सम्मुख आओ ।
लखो जवनिका मेंतें सब कूँ, पुनि तामें छिपि जाओ ॥२॥
घट घट व्यापक रमो सबनिमें, परि नहिं दीठि दिखाओ ।
भटकि रहे कबतें भव बनमें, अब तो गैल बताओ ॥३॥
दरसन करिकें नस्यो मोह मद, अब अच्युत अपनाओ ।
पुनि पुनि प्रभु पदु पदुमनि पकरें, पार पयोधि पठाओ ॥४॥

अंशुमान् कृत कपिल स्तुतिः

अंशुमानुवाच

न पश्यति त्वां परमात्मनोऽजनो,
न बुध्यतेऽद्यापि समाधियुक्तिभिः ।
कुतोऽपरे तस्य मनः शरीरधी,
विसर्गसृष्टा वयमप्रकाशाः ॥१॥
ये देहभाजस्त्रिगुणप्रधाना,
गुणान् विपश्यन्त्युत वा तमश्च ।
यन्मायया मोहितचेतसस्ते,
विदुः स्वसंस्थं न बहिः प्रकाशाः ॥२॥
तं त्वामहं ज्ञानघनं स्वभाव,
प्रध्वस्तमायागुणभेदमोहैः ।
सनन्दनाद्यैर्मुनिभिर्विभाव्यं,
कथं हि मूढः परिभावयामि ॥३॥
प्रशान्तमायागुणकर्मलिङ्गम्,
अनामरूपं सदसद्विमुक्तम् ।
ज्ञानोपदेशाय गृहीतदेहं,
नमामहे त्वां पुरुषं पुराणम् ॥४॥
त्वन्मायारचिते लोके वस्तुबुद्ध्या गृहादिषु ।
भ्रमन्ति कामलोभेर्ष्यामोहविभ्रान्तचेतसः ॥५॥
अद्य नः सर्वभूतात्मन् कामकर्मेन्द्रियाशयः ।
मोहपाशो दृढश्छिन्नो भगवंस्तव दर्शनात् ॥६॥

गर्भस्थ श्रीहरिकी देवों द्वारा स्तुति

(७४)

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यम्,
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यमृत सत्यनेत्रम्,
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥*

(श्री भा० १० स्क० २ अ० २६ श्लो०)

छप्पय

उदर देवकी हरन भार भू श्रीहरि आये।
अज शिव सुरगन सकल, आइ शुभ वचन सुनाये॥
इस्तुति करिवे लगे कहें—सतव्रत सतधामी।
भूत भविष्यत वरतमान सत साधन स्वामी॥
सत के सत सतमहँ रहत, सदचित आनँद चेत्र हैं।
हम सुर शरनागत सतत, सत ऋत तुमरे नेत्र हैं॥

---

* गर्भस्थ श्रीहरि की स्तुति करते हुए देवगण कह रहे हैं— हरे! आपका व्रत सत्य है, आपकी प्राप्ति का साधन भी सत्य है, तीनों कालमें सत्य हैं, आप सत्य की योनि हैं तथा सत्य में ही सदा आप रहते हैं। आप सत्य के भी सत्य हैं। ऋत और सत्य ये ही दो आपके नेत्र हैं। ऐसे आप सत्यात्मक श्रीहरि की हम सब शरण में हैं।"

भगवान् सत्य स्वरूप हैं, सत्-चित् और आनन्द यही उनकी अभिव्यक्ति करने का सर्वोत्कृष्ट माध्यम है, भाषा अपूर्ण है, फिर वह परिपूर्ण सत्यस्वरूप श्रीहरि के सम्बन्ध में कुछ कह ही क्या सकता है,वहाँ तक न तो वाणी की पहुँच है न मन को। वाणी इन दोनों के द्वारा ही व्यक्त होता है, वे प्रभु तो परात्पर हैं। संसार में जो सबसे पर वस्तु हैं, श्रीहरि उससे भी परे हैं, फिर भी हम यही कह सकते हैं,कि वे सत्यात्मक हैं, सत्य स्वरूप हैं। उन प्रभु के अतिरिक्त इस जगत् में कुछ है ही नहीं, वे प्रभु ही जगत् रूपमें परिणित हो गये हैं, जैसे दूध ही दही बन जाता है, जल ही हिम के रूपमें परिणित हो जाता है, सूत ही वस्त्र बन जाता है, वस्त्र में आप जहाँ भी देखेंगे सूत ही सूत मिलेगा। सूतको वस्त्र से पृथक् कर दो, तो कुछ भी शेष नहीं रहेगा। मिट्टी ही घट का आकार धारण कर लेती है, घटमें से मिट्टी को निकाल लो तो कुछ भी शेष न रहेगा, ऐसे ही इस जगत् में से भगवान् को पृथक् कर दो, सत्य स्वरूप सर्वेश्वर को निकाल दो, तो जगत् का अस्तित्व ही न रहेगा। इससे प्रतीत होता है जगत् कुछ है नहीं। जो भी कुछ है सत् ही सत् है। । उस निष्क्रिय निश्चेष्ट प्रभु की जो भी क्रियायें हैं, जो भी चेष्टायें हैं, वे सब सत्य ही सत्य हैं, असत् की उनमें गंध नहीं, मात्रा नहीं, लेश नहीं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जब पाप बाहुल्य के कारण असुरों के अत्याचारों से पीड़ित होकर, दुखित हुई भूदेवी समस्त ब्रह्मादि देवों के साथ भगवान् की शरण में गयी, और वहाँ जाकर अपनी विपत्ति ब्रह्माजीके द्वारा श्रीहरिको सुनायी,तो भगवान्ने,पृथिवी देवी तथा समस्त देवताओं को आश्वासन देते हुए कहा—"तुम्हारी विपत्ति की बात मुझसे अविदित नहीं है, मैं अविलम्ब ही भूका भार उतारने के निमित्त अवनिपर देवकीदेवी के गर्भ से उत्पन्न होऊँगा। तभी धर्म संस्थापन, असाधु दमन तथा साधु संतों का

पालन पोषण रूप पुण्य कर्म करूँगा। तुम निश्चिन्त होकर मेरे प्राकट्य की प्रतीक्षा करो।

भगवान् के ऐसा आश्वासन देने पर देवगण बड़ी उत्सुकता से भगवान् के शुभागमन की प्रतीक्षा करने लगे। जब सुना भगवती देवकी गर्भवती हैं, यह उनका अष्टम गर्भ है, इसी में सकलभुवनपति चराचर विश्व के प्रभु आ गये हैं, तो ब्रह्मादि समस्त देव मिल कर भगवती देवकी के अद्भुत आलय में गये, तथा सब के सब दोनों हाथों की अंजलि बाँधकर गर्भस्थ गोविन्द की स्तुति विनय करने लगे।

देवता गण भगवान् की स्तुतिःकरते हुए कहने लगे—"प्रभो! आप सत्य व्रत हैं, अर्थात् एकमात्र सत्य को ही आप ने वरण किया है, उसे वरण ऐसा किया है कि आप तदनुरूप ही होगये हैं, आप जो बात एक बार कह देते हैं, या मनसे सोच भी लेते हैं, तो वह सत्य होकर ही रहती है, आप अमोघ संकल्प हैं, आप का संकल्प कभी मोघ-व्यर्थ- जाता ही नहीं,ःआपने क्षीर सागर के तट पर हम सब से कहा था-मैं महा भाग्यवती देवकी देवी के उदर से अविलम्ब उत्पन्न होऊँगा, सो आपने अपनी वाणी को सत्य बना दिया। अपने अमोघ संकल्प को अचिरःकाल में ही मूर्त रूप दे दिया। आप का अपने भक्तों का परि पालन करना यही एक सब से बड़ा व्रत है, आपने स्वयं ही अपने श्रीमुख से भक्त विभीषण को प्रपत्ति के समय स्पष्ट शब्दों में कहा है—"एक बार जो मेरी शरण में आकर कह देता है कि मैं तुम्हारा हूँ, तो उसे मैं सर्वदा सभी प्राणियों से सभी अवस्थाओं में अभय कर देता हूँ, यही है मेरा व्रत". सो, प्रभो !ःआपका यह सत्य है। आपके प्रपन्न शरणागत भक्त आप के इस अमोघ सत्यव्रत के ही कारण सर्वदा निर्भय बने सर्वत्र स्वच्छन्द घूमते हैं। आज तक आप का यह अपूर्व अमोघ व्रत कभी मोघ या व्यर्थ हुआ नहीं। आपने कभी

दूसरा बाण चढ़ाया नहीं। आपके भक्त का कभी नाश हुआ नहीं। अनृत की कभी विजय हुई नहीं। आप का व्रत सदा सत्य रहा है, और आगे भी रहेगा।

भगवन्! संसार में देखा गया है, कि सत्य अपेक्षा रखता है। इस वस्तु से यह सत्य है, इससे भी यह सत्य है। जैसे विषयों से इन्द्रियाँ पर हैं, इन्द्रियों से मन पर है, मन से भी बुद्धि पर है, बुद्धि से भी महत्तत्व पर है, महत्तत्व से भी प्रकृति और प्रकृति से भी पुरुष पर है, पुरुष से भी जो पर है वही परात्पर परमेश्वर है, पुरुषोत्तम है, आप परमेश्वर पुरुषोत्तम ही पर सत्य हैं, आप से परे किसी सत्य की कल्पना कभी हो ही नहीं सकती। ऐसे परात्पर सत्य स्वरूप प्रभु के पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है। हे देव! आप एक हैं, फिर भी कार्य के समय तीन हो जाते हैं। ब्रह्मा विष्णु महेश त्रिदेव आप ही हैं। ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति, बलशक्ति तीन शक्तियों का आप ही रूप रख लेते हैं, प्रकृति, पुरुष, काल बन कर आपही सृष्टि, स्थिति लय करने में समर्थ होते हैं, आपही काल के भूत, भविष्य और वर्तमान तीन रूप बना देते हैं, आप ही ऋक्, यजुः और साम वेद त्रयी के रूप में हो जाते हैं, आपही, प्राजापत्य आवहनीय तथा-गार्हपत्य अग्नि त्रय का रूप रख लेते हैं। आप ही सत्व रज और तम त्रिगुणके रूप में व्याप्त हो जाते हैं, आपही वात, पित्त और कफ तीन रूपों से शरीरों में संचार करते हैं आप ही प्रातः सवन, माध्यान्दिन सवन तथा सायं सवन बनकर उपासकों को फल देते हैं, आप ही उत्तम, मध्यम तथा अधम रूप से अभेद में भेद उत्पन्न करते हैं। आपही आदि मध्य अन्त बनकर आपही बाल, युवा वृद्धावस्था में विभक्त होकर आपही पृथिवी पाताल और स्वर्ग लोकों की कल्पना करके तथा आपही ग्रीष्म वर्षा और हिम त्रिऋतुओं के रूप में दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

संसार में जितने भी त्रित्व हैं, वे सब आप के ही स्वरूप हैं, इसी लिये आप त्रिसत्य कहलाते हैं, आप तीनों कालों में तीनों अवस्थाओं में तीनों लिंगों में तीनों गुणों में और तीनों रूपों में एक सत्य रूप से ही अवस्थित रहते हैं, ऐसे त्रिसत्य की हम सदा सर्वदा शरण हैं।

हे सत्योत्पादक ! समस्त सत्य की उत्पत्ति स्थान आपही हैं सत् करके पृथिवी, अप तेज और त्य करके वायु आकाश इन पंच भूतों को योनि—उत्पत्ति के अयन- आप ही हैं। कच्छ, मत्स्य, वाराह, नृसिंह, वामन, मोहिनी, हयग्रीव, परशुराम आदि जो सत्य अवतार हैं उन सबके उत्पत्ति स्थान आपही हैं अथवा मुख्य प्राण ही देहधारियों में सत्य है, उस मुख्य प्राण के उत्पादक भी आपही हो, संसार में जो भी कुछ सत्य दिखायी देता है, उस सब के कारण हे सत्योत्पादक ! आपही हैं। सृष्टि के पूर्व एक मात्र आपही सत्य रूप में विराजमान थे।

हे वैकुण्ठनाथ ! आप सदा सत्य में ही अवस्थित रहते हैं। मथुरा वैकुण्ठ आदि जो सत्यलोक हैं उन में सदा सर्वदा आपकी स्थिति बनी रहती है। हे प्रभो ! प्रवाह रूप से जो यह सदा सर्वदा संसार चलता रहता है, उसके बाहर-भीतर सर्वान्तर्यामी रूप से आप ही व्याप्त रहते हैं। संसार में कोई स्थान, कोई काल तथा कोई व्यक्ति ऐसा नहीं जिसमें आप अखंड एक रस बन कर व्याप्त न हों, आप जहाँ निहित न हों ऐसी किसी भी वस्तु की कल्पना कभी की ही नहीं जा सकती।

हे सर्वसार स्वरूप ! आप शब्द के भी शब्द हैं, रूप के भी रूप हैं, रस के भी रस हैं, गंध के भी गंध हैं, स्पर्श के भी स्पर्श हैं, चक्षुरादि इन्द्रियों के भी इन्द्रिय हैं, मन के भी मन हैं, प्राणों के भी प्राण हैं, उसी प्रकार सत्य के भी आप सत्य हैं। संसार में हमें जो भी कुछ नाशवान्, क्षणिक, अनित्य, परिवर्तनशील

पदार्थ सत्य की भाँति दिखाई देते हैं, उनमें वास्तविक सत्य के रूप में आप ही बैठे हुए हैं, सबके सार सब के तत्व सब के मूल भूत सत्य आप ही हैं।

हे आलोकस्वरूप ! संसार में जो सुन्दर लगने वाली सुस्निग्ध मधुर अन्तःकरण को आह्लादित करने वाली सूनृत वाणी है, वही मानों आप का दक्षिण नेत्र है, तथा चराचर विश्व को समभाव से देखनेवाली जो भावना है, वह आपका दक्षिण नेत्र है। इस प्रकार ऋत और सत्य ये ही आप के देखने के साधन स्वरूप युगल नेत्र हैं, इन नेत्रों द्वारा ही आप देखते हैं और जीव भी इन्हीं नेत्रों द्वारा आप को देखने में समर्थ हो सकते हैं। संसार में भी सभी प्राणी अंधे ही हैं, यदि दिन में सूर्य से तथा रात्रि में चन्द्र अथवा अग्नि से प्रकाश प्राप्त न हो तो कोई भी प्राणी कुछ भी देख नहीं सकता। सभी इन दो के ही माध्यम से अपनी इष्ट वस्तुओं के देखने में समर्थ हो सकते हैं सब को दिखाने वाले-दर्शन कराने वाले-सूर्य और चन्द्र ये ही मानों आप के दोनों नेत्र हैं। आप की सत्य दृष्टि का ही प्रकाश सूर्य चन्द्र हैं। अतः हे सत्य प्रकाश स्वरूप प्रभो ! हमआपके पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणत होते हैं।

प्रभो ! इस समय आप भगवती देवकीदेवी के उदर में प्रविष्ट हैं, किन्तु आप के लिये भीतर बाहर सब समान हैं, आप के यहाँ भीतर बाहर का भेद भाव ही नहीं है, आप तो त्रिकाल-बाधित, सर्वत्र, सदा सभी स्थानों में एक रूप से रहने वाले हैं। आप का आत्मा या स्वरूप सत्य है, आप सच्चिदानन्द रूप से त्रिभुवन में व्याप्त हैं, आनन्दघन बन कर सब स्थानों में अवस्थित हैं। समस्त जीवों का सभी प्राणियों का एकमात्र कर्तव्य यही है, कि वे सर्वात्मभाव से सब कुछ छोड़कर सभी प्रकार की एषणाओं का परित्याग करके सर्वाभाव से आपकी ही शरण

में जायँ, आप को ही भजें, आप के ही लिये आत्मसमर्पण करें आप ही प्रपन्न पारिजात हैं। आप भक्तवांछा कल्पतरु हैं, कभी भी नष्ट न होने वाले सदा सर्वदा एक सी गति से रहने वाले सत्यात्मक हैं, ऐसे आप सत्य रूप की हम शरण में आये हैं। प्रभो! रक्षा करो, रक्षा करो, हमें अपने चरणों की शरण में ले लीजिये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार ब्रह्मादिक समस्त देव गर्भस्थ श्रीहरि की बड़ी भावना से स्तुति करने लगे। आगे वे और भी जो स्तुति करेंगे उसका वर्णन में आगे करूँगा।

छप्पय

हैं अमोघ संकल्प विचारैं सो है जावै।
जो सत हिय महँ धारि करै साधन सो पावै॥
जो जिह दीखत जगत सत्य तें स्वामि बनायौ।
आदि मध्य अरु अंत सत्यई सत्य कहायौ॥
कहा कहैं कहँ तक कहैं, का कछु है सत बिनु कहीं।?
बिना बीजके वृक्ष प्रभु, जगत माँहिं दीखत नहीं॥

पद

प्रभु तुम सत्य स्वरूप कहाओ।
जग में जहँ तक दीठि पसारें, तुमई सत्य दिखाओ॥१॥
विश्वम्भर जिह विश्व बनायौ, कैसो सुघर लखाओ।
व्यापि रहे अणु अणु में हरिजू, वेदनि पाठ पढ़ाओ॥२॥
ऋत सत रवि शशि नयन तिहारे, तिनितैं तेज लखाओ।
शरन गही प्रभु तव चरननि की, दीन जानि अपनाओ॥३॥

गर्भस्थ श्रीहरि की देवों द्वारा स्तुति (२)

(७५)

एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूल
श्चतूरसः पञ्चविधः षडात्मा।
सप्तत्वगष्ट विटपो नवाक्षो
दशच्छदी द्विखगो ह्यादिवृक्षः॥ ❀

(श्रीभा० १० स्क० २ अ० २७ श्लो०)

छप्पय

विश्व विटप है आदि प्रकृति आश्रय है ताकी।
दुख सुख फल कटु मधुर मूल सत रज तम वाकी॥
अरथ धरम अरु काम मोक्ष रस चारि बताये।
रसन नयन श्रुति घ्रान परस साधन कहलाये॥
शोक मोह क्षुत् पिपासा, जरा मृत्यु स्वाभाव हैं।
सात धातु या विटप की, त्वचा बतावें नाम हैं॥

नन्हें से वट वृक्ष के बीज के भीतर विशाल वट वृक्ष की योजनों लम्बी शाखायें, सैकड़ों उपशाखायें, लाखों पत्ते, अगणित फल और पक्षियों के रहने योग्य अनन्त कोटर पहिले से ही सूक्ष्म रूप से अन्तर्हित रहते हैं। उर्वरा भूमि और जल खाद आदि उपयुक्त साधन मिलने पर उस नन्हें से बीज से विशाल वट वृक्ष बन

❀ देव गण भगवान् की स्तुति करते हुए कहते हैं—"हे भगवन्! इस संसार रूप आदि वृक्ष का एक ही आश्रय है, दो इसमें फल हैं, तीन मूल हैं चार रस हैं, पाँच साधन हैं, छे स्वभाव हैं, सात त्वचा हैं, आठ शाखायें हैं, नौ कोटर अर्थात् छेद हैं और सथा इस पर दो ही पक्षी बैठे हैं।"

जाता है, जिसकी छत्र छाया में अगणित जीव आकर सुख पाते हैं, शान्ति का अनुभव करते हैं। देखा गया है, संसार के पदार्थों में निमित्त और उपादान कारण पृथक् पृथक् होते हैं, किन्तु इस संसार रूप वृक्ष के निमित्त कारण भी श्रीहरि ही हैं और उपादान कारण भी वे ही हैं। वेही स्वयं अपने ही उपकरणों द्वारा अपने आप ही बीज रूपसे वृक्ष बन गये हैं। संसार महीरुह के वे ही सनातन बीज हैं। वे ही वृक्ष के, नानाधातुओं के रूपमें दिखायी दे रहे हैं। वे स्वयं ही सब कुछ बन गये हैं। इस बात को जिन्होंने समझ लिया है और समझ कर दृढ़ता के साथ हृदयंगम कर लिया है, वे इस चित्र विचित्र नाना भाँति के जगत् को देखकर मोह को प्राप्त नहीं होते। वे सब में सर्वत्र उन्हीं सर्वान्तर्यामी श्यामसुंदर का साक्षात् कार करते हैं, उन्हीं का नाना रूपों में अवलोकन करते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! गर्भस्थ श्रीहरि की स्तुति करते हुए ब्रह्मादि देवगण कह रहे हैं। "प्रभो! यह संसार रूप अनादि अनन्त सनातन वृक्ष है। यह वृक्ष कहीं अन्त से नहीं आया है, आप ही स्वयं वृक्ष बन गये हैं। बीज से ही इतने विशाल हो गये हैं।

संसार में समस्त गणनायें नौ और शून्य में ही निर्मित हैं। अर्थात् मुख्य संख्या दश तक ही है, कितनी भी बड़ी से बड़ी संख्या क्यों न हो उसमें एक से नौ तक के अंक और शून्य के अतिरिक्त कुछ भी न होगा। दशमें सबकी समाप्ति है। शून्य अकेला कुछ कर नहीं सकता। बिना अंक के शून्य निरर्थक है, उसका कोई मूल्य ही नहीं, किन्तु अंक के आगे जितने भी शून्य चढ़ते जायेंगे उतना ही उसका गौरव बढ़ता ही जायगा। अतः शून्य की सार्थकता अङ्कों के आगे में ही है। आप के भी इस संसाररूपी महीरुह में पूरी दश वस्तुयें हैं, अर्थात् उसमें सभी

क्षुद्र है, इसमें जो नहीं है, वह कहीं नहीं है।

वृक्ष आश्रय के बिना टिक नहीं सकता। उसे किसी न किसी के आश्रय की आवश्यकता होती है। आपके संसार रूप वृक्ष का एक मात्र आश्रय आपकी प्रकृति ही है। अथवा एक अक्षर ब्रह्म ही आश्रय है।

वृक्ष पर बहुत से फल लगते हैं और सब फल एक ही स्वाद के होते हैं, किन्तु आप के इस अद्भुत पादप में दो ही फल लगे हैं, सुख और दुख, दोनों का स्वाद भी एक दूसरे के विपरीत हैं, एक फल मधुर है दूसरा कड़वा है। दो फल वाला यह वृक्ष एकरस बढ़ता जाता है, इसके फल पककर गिरते भी नहीं। स्वामिन्! उसीमें लटके रहते हैं अथवा पाप और पुण्य ये दो फल हैं।

हे देवाधिदेव ! वृक्ष बिना मूल के स्थिर नहीं रहता। जड़ ही उसे टिकाये रहती है, और वृक्षों में बहुत सी जड़ें होती हैं, किन्तु इस संसार रूप वृक्ष में सत्व, रज और तम रूप तीन ही जड़ें हैं। इन्हीं के आश्रय से यह टिका है। जब ये गुणरूपी जड़ें छोटी बड़ी होती हैं; विषमता को प्राप्त हो जाती हैं, तभी यह वृक्ष बढ़ता है। जड़ों की समानता में इसका बढ़ना बन्द हो जाता है और यह बीज में अन्तर्भुक्त हो जाता है। अथवा उत्तम, मध्यम और अधम कर्म ही इस विशाल वृक्ष की सुदृढ़ तीन जड़ें हैं।

प्रभो! वृक्ष में जब तक रस न हो तब तक बढ़ता नहीं। यह हरा भरा सरस अपने भीतर के रस से ही होता है। इस आपके संसार वृक्ष में एक प्रकार का नहीं चार प्रकार का रस है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप जो पुरुषार्थ चतुष्टय है, वही इसे सरस बनाये हुए है। अथवा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण ही इस वृक्ष को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास इन चार आश्रमों में के द्वारा सरस बनाये हुए हैं। इन्ह

के द्वारा यह विस्तृत बना हुआ है।

स्वामिन ! वृक्ष की बड़ी बड़ी शाखायें फैलकर उसमें से और छोटी छोटी शाखायें निकलकर तब वृक्ष को सुविस्तृत बनाती हैं। इस संसार वृक्ष को शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श का ज्ञान कराने वाली श्रोत्र, चक्षु, रसना, घ्राण और त्वचा ये पांच जानने के साधन रूप पंचेन्द्रियाँ ही इसकी बड़ी बड़ी शाखायें हैं। अथवा वट वृक्ष की शाखाओं से निकलने वाली लटें जो भूमि में आकर जड़ का रूप रख लेती हैं, वे जटारूप शाखायें है, जिनसे वृक्ष सुदृढ़ बना रहता है। अथवा अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, आनन्दमय और विज्ञानमय जो ये पंच कोष ये ही इसकी सुदृढ़ शाखायें हैं।

हे दयालो ! सब अपने स्वभाव से विवश हो जाते हैं, जैसी जिसकी प्रकृति होती है, वह वैसा ही फल पाता है। इस संसार वृक्ष का छै विधि का स्वभाव है। शोक, मोह, जरा, मृत्यु, भूख और प्यास ये जो छै प्रकार की ऊर्मियाँ बतायी गयी हैं, यही इसकी आत्मा है स्वभाव है। इन्हीं स्वभाव के कारण दार्शनिक इसे दुःख मय बताते हैं।

हे दीन बन्धो ! मनुष्य शरीर के ऊपर चर्म के ६ परत चढ़े रहते हैं। वृक्षों में ये छाल के कई परत होते हैं, इस संसार रूप वृक्ष की भी रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि और शुक्र ये सप्त धातुयें ही सात छिलके हैं। इनके कारण ही यह बढ़ता रहता है, इस अनादि वृक्ष की बढ़ती सदा धातुओं के द्वारा होती है। हे अनादिनिधन प्रभो ! वृक्ष को बड़ी बड़ी शाखाओं में से बहुत सी छोटी छोटी शाखायें फूटती हैं, आपके इस संसार वृक्ष की पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन बुद्धि और अहंकार ये अष्ट प्रकृति रूप आठ ही छोटी छोटी शाखायें हैं अथवा देवता, गन्धर्व दानव, राक्षस, पिशाच, तिर्यङ्, मानुष और

समस्त स्थावर ये आठ प्रकार के जीव ही इस वृक्ष की पतरी पतरी शाखायें हैं।

हे अछिद्र अव्रण प्रभो! वृक्षों के तने में पक्षियों के रहने के छोटे छोटे कोटर होते हैं, जिनमें पक्षी सुख पूर्वक निवास करते हैं। आपके इस संसार वृक्ष में एक दो नहीं नौ कोटर हैं। शरीर में जो मुख, दो नेत्र, दो कान, दो नाक और गुदा तथा शिश्न के नौ छिद्र हैं वे नौ छिद्र ही मानो इसके नौ कोटर हैं।

हे प्राणेश्वर! अन्य वृक्षों में असंख्य पत्ते होते हैं, किन्तु आप के इस संसार वृक्ष में दश ही पत्ते हैं। देह में विचरण करने वाले प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय ये दश प्राण ही मानों दश पत्ते हैं। अथवा दशों इन्द्रियों के शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श ग्रहण, गमन, उच्चारण, त्याग तथा आनन्द ये जो दश विषय हैं वे ही मानों इस वृक्ष के पत्ते हैं। इन दशपत्रों द्वारा ही यह हरा भरा दिखाई देता है।

इस प्रकार दश तक की संख्या समाप्त हो गयी, मानों इस वृक्ष में सब कुछ आ गया। जो भी इन्द्रियों द्वारा देखा जाय, मन द्वारा मनन किया जाय, बुद्धि द्वारा विचारा जाय वह सभी इसमें है। परिपूर्ण बीज से यह बना है अतः यह स्वयं भी परिपूर्ण है, इसमें किसी वस्तु का अभाव नहीं। हे प्रभो! यह आपकी परम विचित्र रचना है।

भगवन्! संसार में जो भी लोग रचना करते हैं, उसमें बहुतों का सहयोग होता है, परस्पर में मिलकर सहकारिता के आधार पर रचना तथा विकास आदि होते हैं, किन्तु इस संसार वृक्ष के एकमात्र आप ही उत्पन्न करनेवाले हैं, जैसे मिट्टी से घड़ा, सूत से वस्त्र, जल से हिम तथा दूध से दही और सुवर्णादि धातुओं से आभूषण बन जाते हैं, वैसे ही आपसे ही यह जगत बन गया है। इस

जगत् को बनाने वाले भी आप ही हैं, जब इच्छा होती है, तो अपने आप में ही इसे लीन भी कर लेते हैं, और जब तक इसे रखते हैं तब तक इसका पालन भी आप ही करते हैं, अर्थात् कर्ता भर्ता और हर्ता सभी आप हैं। आप ही उत्पत्ति स्थान हैं, आप ही अधिष्ठान हैं तथा आप ही की अनुग्रह से यह अवस्थित है।

प्रभो! आपकी कोहिरा की भाँति एक परम विमोहिनी माया है, जिनके हृदय पर उस माया का आवरण छा गया है, वे माया मोहित प्राणी आपको नाना रूपों में देखते हैं। जैसे आँखों में दोष हो जाने से एक चन्द्रमा के कई चन्द्र दिखायी देने लगते हैं, जैसे शीशा के सम्मुख शीशा रख देने से उसमें एक ही व्यक्ति के अनेकों प्रतिबिम्ब दिखायी देते हैं, जो अज्ञ हैं, अबोध हैं, मलिन-मति हैं, वे उन्हें अनेक बताते हैं, किन्तु जो विज्ञ हैं, निर्मल बुद्धि वाले हैं, तत्वदर्शी हैं, विद्वान् हैं, ब्रह्मज्ञानी हैं वे इस जगत् को नाना रूपों में नहीं निहारते। वे तो उसे ब्रह्मात्मक ही देखते हैं, वे सर्वभूतों में चराचर प्राणियों में एकमात्र आपको ही सर्वत्र अनुभव करते हैं। उनके लिये यह नाना नाम रूपात्मक जगत् कुतूहल की वस्तु नहीं। वे तो सर्वत्र श्यामसुंदर को ही सबमें निहारते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार समस्त देवतागण देवकी के गर्भ में अवस्थित-से श्रीहरि की स्तुति करने लगे। देवताओं को कुछ काम धन्धा तो है ही नहीं। विपत्ति में भगवान् ही याद आते हैं, अतः उन्होंने बहुत लम्बी-चौड़ी स्तुति की है, उसका वर्णन मैं क्रमशः आगे करता ही रहूँगा।"

छप्पय

ओज रक्त रस मांस अस्थि मज्जा बीरज सब।
धातु सात ये कहीं आठ शाखा कूँ सुनु अब॥
पाँच भूत, मन, बुद्धि आठवाँ अहङ्कार सो।
तरु कोटर नौ कहे छेद नर तनु में हैं जो॥
दश विधि के जो प्रान हैं, पादप पत्ता दश कहें।
जगत सनातन वृक्ष में, जीव ब्रह्म द्वै खग रहें॥

पद

प्रभु जग वृक्ष बीज बनि जाओ।
स्वयं खेत अरु बीज खाद पय, स्वयं बोइ उपजाओ ॥१॥
प्रथम प्रकृतिकूँ आश्रय करिकैं, सुख दुख फल लटकाओ।
त्रिगुन मूल रस चार वरग हैं, साधन करन कहाओ ॥२॥
शोक मोह अरु जरा मृत्यु पुनि, भूख प्यास उपजाओ।
ये स्वभाव हैं सात धातु ई, त्वचा वृक्ष लिपटाओ ॥३॥
मन, धी, भूत, अहं आठहु ये, शाखा तरु फैलाओ।
तनु के द्वार छेद कोटर नौ, पत्र प्रान फहराओ ॥४॥
बीज स्वयं तरुवर बनि जावै, ब्रह्महि ब्रह्म लखाओ।
उतपति थिति लय में तुम हो तुम,पालन करो मिटाओ ॥५॥
माया मोहित लखें विविधि विधि, ज्ञानिहिँ एक दिखाओ।
बार बार बन्दें पद प्रभुजी, सत्य रूप दरसाओ ॥६॥

गर्भस्थ श्रीहरि की देवों द्वारा स्तुति (३)

(७६)

विभर्षि रूपाण्यवबोध आत्मा,

क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य ।

सत्त्वोऽपन्नानि सुखावहानि,

सतामभद्राणि मुहुः खलानाम् ॥*

(श्री भा० १० स्क० २ अ० २९ श्लो०)

छप्पय

शुद्ध सत्वमय विविध बोधमय वेश बनावें ।
सकल चराचर जगत माँहिं आनँद फैलावें ॥
साधुनि कूँ सुख देहिं खलनि परलोक पठावें ।
करि अधरम कूँ नाश धरम की सीख सिखावें ॥
योग समाधि लगाइकें, तव चरननि नौका करें ।
ते नहिं डूबे भव उदधि, गोपद सम ताकूँ तरें ॥

---

*भगवान् की स्तुति करते हुए देवगण कह रहे हैं—"प्रभो ! आप अवबोध आत्मा हैं, बोध स्वरूप हैं। चराचर लोक के कुशल क्षेम के निमित्त आप नाना रूपों को धारण करते हैं, आप के वे रूप विशुद्ध सत्वमय होते हैं तथा सज्जनों को सुख देनेवाले और दुर्जनों का दमन करने वाले होते हैं।"

भूल भुलैया का एक खेल होता है। टेढ़ी मेढ़ी ऐसी रेखायें, बनायी जाती हैं, कि दूरसे देखने वाला इस भ्रम में पड़ जाता है, कि इन इतनी असंख्य टेढ़ी मेढ़ी एक दूसरी से मिली हुई रेखाओं से पार कैसे जाया जायगा, किन्तु जो भूल भुलैयों का निर्माण करता है, वह निर्माण करते समय ही उसमें से निकलने का मार्ग बना देता है, यदि निकलने का मार्ग न बनावे तो खेल ही क्या रहा ? इसी प्रकार भगवान् नाना रूपों में चमकते हुए इस अत्यन्त आकर्षक संसार सागर को बनाकर उसके पार जाने के विविध साधन भी बनाकर रख देते हैं, जो विज्ञ जन हैं, वे प्रभु का आश्रय लेकर उन साधनों द्वारा पार हो जाते हैं, जो अज्ञ जन हैं, वे इसी भवसागर में इधर से उधर असहाय की भाँति भटकते रहते हैं। निर्माता का आश्रय लेने पर इस भूल भुलैया का भेद सहज में ही खुल जाता है। सरलता से बाहर जाने का मार्ग मिल जाता है। मछली जब तक जल के आस पास रहेगी तब तक फँसती ही रहेगी जो जाल वाले के पैर के पास पहुँच जायगी वह कभी भी जाल में न फँसेगी। अतः भगवत् चरणारविन्द ही भवसागर से पार उतारने के सुखद साधन हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! गर्भस्थ भगवान् की स्तुति करते हुए देवगण कह रहे हैं —"प्रभो ! अज्ञ लोग कहते हैं, जो जन्म मरण के चक्कर में फँसा है, जो माता के गर्भ में नौ महीने तक मल मूत्र में फँसा क्लेश भोगता है, जिसे बारम्बार जन्म लेना पड़ता है, वह भगवान् कैसा, जो कर्म भोगों के अधीन है वह स्वतंत्र सर्व समर्थ कैसा ? स्वामिन् ! वे अज्ञ लोग यह नहीं जानते आप विरुद्धधर्माश्रयी हैं। आप सब कुछ करने में-सब स्थितियों में रहने में स्वतंत्र हैं। आप अज्ञान से सर्वदा निर्लेप ज्ञान स्वरूप हैं, आप कर्मों के अधीन होकर जन्म नहीं लेते। आप ने इस चित्र विचित्र रूप से दीखने वाले स-

म्पूर्ण स्थावरजंगमात्मक चराचर जगत् को अपनी लीला से ही बनाया है। फिर अपने आनन्द के लिये जीवों के भोग भुगाने के लिये इसका पालन भी करते हैं। विश्व के कल्याण के निमित्त विशुद्ध सत्वमय अनेक रूप भी धारण करते हैं। रूप रखने पर भी आप नाम रूप से सर्वथा पृथक् ही बने रहते हैं।

हे धर्मस्वरूप ! आप धर्मसंस्थापनार्थ युग युग में अनेक रूप रखकर साधु पुरुषों का परित्राण करते हैं; सज्जनों को सुख देते हैं तथा दुष्कृतियों का विनाश करते हैं, उन पापाचारी असाधु पुरुषों को यथोचित दंड देकर भू का भार उतारते हैं। आप का अवतरण कर्मों के अधीन नहीं होता, आप स्वेच्छा से विविध अवतार लेते हैं।

हे शरणागतवत्सल विभो ! अन्य अनेक जीव इस भव-सागर में भटक रहे हैं, वे पार जाना चाहते हैं, किन्तु यह संसार समुद्र अगाध है अपार है, बिना आपका आश्रय लिये इसे पार जाने का कोई अन्य मार्ग है ही नहीं। आपकी कृपा से ही इसे पार किया जा सकता है। दूसरा कोई उपाय बहुत सोचने पर भी ध्यान में नहीं आता। बहुत से योगी जन समाधि योग द्वारा आप निखिल सत्वधाम परमेश्वर के पुनीत पाद पद्मों को नौका बनाकर, उसी के सहारे इस अगाध भव जल निधि को सुगमता के साथ पार कर लेते हैं। उनको पार जाने में तनिक भी श्रम नहीं करना पड़ता।

कुछ लोग सदैव आप के चरणारविन्दों का ध्यान करते हैं तथा आप के नामों को निरन्तर रटते रहते हैं, उन नामनिष्ठों के सम्मुख यह इतना भारी अगाध अपार अनंत भवार्णव छोटा सा गड्ढा हो जाता है, गौ के खुर से जितना छोटा-सा

गड्ढा बन जाय और उसमें जल भर जाय, इतना सा ही यह भवसागर उनके लिये बन जाता है, इतने छोटे गड्ढे के लिये नौका या अन्य किसी साधन का आवश्यकता ही क्या है, वे आप के नामनिष्ठ अनन्य भक्त उसे लाँघ कर ही पार हो जाते हैं।

प्रभो! कुछ पुरुषार्थी ज्ञानी पुरुष अपने साधनों द्वारा आपसे शक्ति पाकर इस असार सागर को भी तैर कर एकाकी पार हो जाते हैं। आप की अनुग्रह से उनके बाहुओं में इतना बल हो जाता है, कि तैरते-तैरते थकते नहीं, उस पार अकेले पहुँच ही जाते हैं।

किन्तु हे कान्तिमय! सब में तो इतनी सामर्थ्य नहीं होती, सभी तो पुरुषार्थ से तैरकर पार नहीं जा सकते कुछ आपके शरणागत ऐसे भी हैं, जो निर्बल हैं, इतनी दूर तैर नहीं सकते। आप उनपर भी कृपा करते हैं। अपने कुछ ऐसे तद्‌रूप सर्वसमर्थ भक्तों को प्रकटित करते हैं, जो भक्ति-मार्ग भागवत-पथ रूप एक सुदृढ़ नौका बना लेते हैं। उसमें आपकी अनुग्रह का ही सब साज सजाते हैं, आपके पादपद्म ही उस नौका का आधार होता है उसमें आपके प्रपन्न शरणागत भक्तों के साथ बैठकर उस नौका को आपकी आज्ञा से चला देते हैं, वे अपने अनुयायियों सहित उस पार तो पहुँच ही जाते हैं, किन्तु उस दृढ़ नौका को यहीं छोड़ जाते हैं, जिससे और भी भक्तगण उसपर चढ़कर सदा पार होते रहें। सबको पार पहुँचाने की एक सुन्दरतर तरी स्थायी हो जाती है। आपके चरणकमलों की होने से जैसे कमल कभी जल में डूबता नहीं उसी प्रकार वह नौका भी कभी जल में डूबती नहीं।

हे अरविन्दाक्ष! आपके भक्त ही इस भवाब्धि के पार पहुँच सकते हैं। वे भक्त चाहें योगनिष्ठ हों, ज्ञाननिष्ठ हों अथवा भक्ति

निष्ठ हों उनका ही निस्तार है, अभक्तों के लिये वह मार्ग अवरुद्ध है। बहुत से ऐसे लोग हैं, कि वास्तव में जो मुक्त तो हैं नहीं; किन्तु भ्रम-वश जैसे अपंडित अपने को पंडित मानने लगता है, अधनी अपने को धनी अनुभव करने लगता है, उसी प्रकार वैसे ही अपने को मुक्त मान बैठते हैं। और बड़े गर्व से अत्यंत अभिमान से कहते हैं, मैं वही आत्मा हूँ। मैं ही ब्रह्म हूँ। जब वे अल्पज्ञ अपने को ही ब्रह्म मानने लगते हैं, तो दूसरों की की हुई पूजा को तो वे प्रेम से ग्रहण कर लेते हैं, किन्तु आपकी पूजा नहीं करते। प्राणी जब तक आपकी पूजा न करेगा आपका भजन न करेगा, तब तक उसका चित्त शुद्ध कैसे होगा? ऐसे वे अविशुद्ध बुद्धि व्यक्ति दूसरों से तो अपने चरण छुवाने की लालसा रखते हैं, किन्तु स्वयं वे आपके अमल विमल अरुण चरणारविन्दों की आराधना से विमुख बने रहते हैं और आपको छोड़कर तप आदि दूसरे साधनों में संलग्न रहते हैं, तो साधन का तो फल मिलना ही ठहरा। कोई भी कार्य निष्फल तो जाता नहीं। वे तपादि साधनों से भले स्वर्ग को प्राप्त कर लें, यहाँ तक कि ब्रह्मलोक तक भी पहुँच जायँ, किन्तु वहाँ जाकर भी उनका पतन अवश्य हो जायगा। वे नीचे अवश्य गिर जायँगे। हम किसी वस्तु को ऊपर फेंके, तो जब तक नीचे का वेग रहेगा, तब तक वह वस्तु ऊपर जायगी, किन्तु जहाँ वेग कम हुआ कि वह तुरन्त नीचे गिर जायगी, क्योंकि आधार के बिना कोई वस्तु अधबर में ठहर नहीं सकती। ऊपर कोई आधार हो तो उसके सहारे सदा टिकी रह सकती है। इस जगत् के एकमात्र आधार तो हे कमलनयन! आप ही हैं। उन अल्पज्ञ ज्ञानमानी अविशुद्ध बुद्धिवाले व्यक्तियों ने आपके पादारविन्दों का आश्रय तो छोड़ ही दिया है, वे तो अहं का प्रचलित अर्थ देह को ही ब्रह्म मानते हैं। फिर वे ऊपर ठहर कैसे सकते हैं। अधःपात ही उनके लिये निश्चित मार्ग

हैं। क्योंकि वे भक्ति-भाव से शून्य तथा अशुद्ध चित्तवाले होते हैं। अतः कोई भी मार्ग क्यों न हो, सबमें आपकी भक्ति की ही परमावश्यकता रहती है भक्ति ही सार है। शेष सभी निस्सार है। अभक्त का पतन सुनिश्चित है।

किन्तु हे श्यामसुन्दर! जो अभक्त नहीं हैं, आप के भक्त हैं, जो आप के चरणारविन्दों में सुदृढ़ प्रेम रखते हैं, वे उन अल्पज्ञों की भाँति अपने मार्ग से कभी परिभ्रष्ट नहीं होते। वे कहीं डगमगाते भी हैं, तो आप उन्हें सम्भाल लेते हैं, कारण कि उन्होंने अपना सर्वस्व आप को अर्पण जो कर दिया है, जो सर्वात्मभाव से आपकी शरण में आ जाते हैं, आपको आत्मसमर्पण कर देते हैं, उनके लिये तो आप ही आधार हैं, आप ही उनके रक्षक पालक और परित्राता हैं वे निर्भय हो जाते हैं, उन्हें भ्रष्ट होने का भय नहीं होता। पतन होने की आशंका नहीं रहती। वे सदा सर्वदा सर्वत्र अपने आप को आप के द्वारा सुरक्षित समझते हैं। कितने भी बड़े अन्तराय उपस्थित क्यों न हो जायँ, कैसे भी भारी से भारी भय क्यों न आ जायँ। कितनी भी बड़ी विघ्नों की सेना उनके ऊपर चढ़ाई क्यों न कर दे। वे उस विघ्नों की सेना के अधिपति के ऊपर से-उस अन्तराय की अनी के सेनापति के सिर के ऊपर-पैर रखकर आप की कृपा से निर्भय चले जाते हैं। वे स्वच्छन्द विचरण करते हैं, क्योंकि वे मानते हैं और उपासना के बल से अनुभव करते हैं, कि आप ही इस जगत के एक मात्र आधार हैं और आप की भक्ति करना यही इस संसार सागर से पार होने का सुगम सरल साधन है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार देवताओं ने गर्भस्थ श्री हरि की स्तुति की अभी वे और भी स्तुति करेंगे उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।

छप्पय—

जो जन अतिशय भक्त सतत पद पदुमनि ध्यावें।
स्वयं तरें जग तरन हेतु तरनी तजि जावें॥
निरमल चित जिनि नहीं ज्ञानमानी अभिमानी।
पतित होहिं तिनि चरन कमल महिमा नहिं जानी॥
माधव जे पद दास हैं, ते न कबहुँ नीचे गिरें।
विघननि के सिर पैर दै, निरभय ते चहुँ दिशि फिरें॥

पद

भक्तभय मेटे चरन तिहारे।
चरन नाव चढ़ि पार करें भव, जामें छोड़ि किनारे॥१॥
अनुयायी निरभय चढ़ि उतरें, संयम श्रद्धावारे।
जे अभिमानी ज्ञानी ध्यानी, ते डूबें मझधारे॥२॥
जिनि पद पकरे पूजा कीन्हीं, भक्ति करी अघजारे।
तिनहिं विघन बाधा कछु नाहीं, प्रभुपद रहैं सहारे॥३॥

गर्भस्थ श्रीहरि की देवों द्वारा स्तुति (४)

(७७)

सत्वं विशुद्धं श्रयते भवान्स्थितौ,
शरीरिणां श्रेय उपायनं वपुः।
वेदक्रियायोगतपः समाधिभि-
स्तवार्हणं येन जनः समीहते ॥*॥
(श्री भा० १० स्क० २ अ०, ३४ श्लो०)

छप्पय

धारें जग थिति हेतु सत्वमय शुभ वपु भगवन्।
तप समाधि अरु ज्ञान योगतें पूजें सब जन ॥
यदि विशुद्ध वपु आपु न धारें ज्ञान अमल कहँ।
गुन प्रकाश तें गुनी, सबहिँ अनुमान करें तहँ॥
मन बानी के विषय नहिँ, वेद नेति कहिके तजें।
भक्ति भाव तें भक्त जन, करि दरसन तुमकूँ भजें ॥

---

* गर्भस्थ भगवान् की स्तुति करते हुए देवगण कह रहे हैं—"प्रभो! आप शरीरधारियों की स्थिति के निमित्त विशुद्ध सत्त्व का आश्रय ग्रहण करके विश्व कल्याणार्थ श्रेयष्कर शरीर धारण करते हैं, जिसके द्वारा प्राणी, वेद, क्रिया, योग तप और समाधि आदि साधनों से आपका पूजन करते हैं।

भगवान् निर्गुण हैं, निर्विकार हैं, निरञ्जन है, नाम रूपसे रहित हैं, इसमें हमें कोई विवाद नहीं, किन्तु हम तो सगुण साकार रूप के उपासक हैं, उन्हीं की मनोहर मूर्तिका ध्यान करते हैं, उन्हीं के मंगलमय नामों का गान करते हैं और उन्हीं की त्रिभुवन तारिणी भुवनमन मोहिनी लीलाओं का श्रवण तथा कथन करते हैं।

भगवान् वैकुण्ठ, साकेत गोलोक तथा क्षीरसागर आदि स्थानों में होंगी, किन्तु हमें तो वे अवधविहारी वृन्दावन विहारी आदि रूपों में ही रुचिकर हैं, हम तो उन्हें वृन्दावन की वीथियों में, यमुना के पुलिनों में गोवर्धन की तलहटी में गौओं के साथ ही देखना अधिक रुचिकर मानते हैं। वे नन्द प्रांगण में चाहे माखन के लिये मचल रहे हों, मां से तकरार कर रहे हों अथवा अन्य कोई क्रीड़ा कर रहे हों, किन्तु घर में तो हम उन्हें माताओं के साथ खेलते देखना चाहते हैं। गोष्ठ में ग्वाल वालों के साथ, सखी सहेलियों के साथ अथवा गौ वछड़ों के साथ खेलते देख कर सुखी होते हैं, गोपाङ्गनाओं के घरों में माखन चोरी करते हुए, नाना उत्पात करते हुए वे हमें भले लगते हैं। व्रज और गोष्ठ के बाहर वन में सखाओं के साथ विविध क्रीड़ा करते हुए, गोपियों के साथ छेड़ छाड़ करते हुए हमें भाते हैं। जो गुम्म सुम्म सिहासन पर बैठा हो;ऐसा हमें सगुण ब्रह्म-गंभीर भगवान् भी—नहीं भाता। फिर गुण रहित विना हाथ पैर के निर्गुण निराकार ब्रह्म की तो वात ही क्या है।

आप सोचें-हमारी इन्द्रियाँ ऐसी बनी हैं कि वह बिना किसी रूप की कल्पना किये किसी का अनुमान ही नहीं कर सकतीं। बिना कुछ नाम का संकेत किये किसी के सम्बन्ध में कुछ कह नहीं सकतीं। अतः शरीर धारियों के लिये ध्यान के योग्य; लक्ष्य के लिये कोई रूप आवश्यक है। भगवान् तो कल्प तरु हैं, सब की इच्छाओं को पूर्ण करते हैं, इसीलिये वे भक्तों की इच्छा पूर्ति के निमित्त विविध रूप धारण करते हैं। नाना अवतार लेते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! गर्भस्थ भगवान् की स्तुति करते हुए देवगण कह रहे हैं—"प्रभो ! आप त्रिगुणातीत हैं। संसारमें जितने भी जीव हैं, सब सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों के अन्तर्गत हैं किन्तु आप इन तीनों गुणों से परे हैं। इसी लिये आप निर्गुण निराकार निर्लेप कहलाते हैं। फिर भी तीनों गुणों में से जो सर्वश्रेष्ठ सत्त्वगुण है, उस सत्त्वगुण से भी परे एक विशुद्ध सत्त्व है, आप उसी सत्त्व का आश्रय ग्रहण करके एक चिन्मय दिव्य मङ्गल श्री विग्रह धारण करते हैं। आपको स्वयं उसकी कोई आवश्यकता नहीं। आप तो आवश्यकता से परे हैं। फिर भी शरीर धारियों का परम कल्याण हो, वे आप तक पहुँच सकें उनके साधन की सुगमता के निमित्त आप देह धारण करते हैं। जिस मूर्तिका आश्रय करके वेदपाठी वेदाध्ययन करते हैं, नाना क्रिया कलापों द्वारा वैदिक तांत्रिक पद्धतियों से उपासक लोग उसी दिव्य विग्रह की पूजा करते हैं। योगी लोग उसी मूर्ति का आश्रय लेकर नाना योगों के द्वारा स्वरूप दर्शन करते हैं। स्व स्वरूप में अवस्थित होते हैं। तपस्वीगण भाँति-भाँति की तपस्याओं द्वारा तपस्वरूप आप को प्राप्त करते हैं, समाधिनिष्ठ साधक समाधि में आपके उस साकार रूप का साक्षात्कार करते हैं।

प्रभो ! जब आप सगुण साकार होते हैं, तो वर्णाश्रमी प्रजा उसी के द्वारा सभी वर्ण और आश्रमों में सिद्धि लाभ करती है। ब्रह्मचारी गण वेदाध्यन के द्वारा आपको प्राप्त करते हैं। गृहस्थाश्रमी एकादशी, प्रदोष, अमावस्या, पूर्णिमा तथा संक्रान्ति आदि पुण्य तिथियों का उपवास करके, वेदाध्ययन तथा पञ्चयज्ञों द्वारा तथा आस्तिक बुद्धि से और शुभ कर्म करके आपकी उपासना करते हैं। वानप्रस्थाश्रमी ग्रीष्म ऋतु में पंचाग्नि ताप कर वर्षा के दिनों में खुले आकाश में रहकर तथा सरदी में जलमें खड़े होकर और कन्दमूल फल आदि वन्य पदार्थों पर निर्वाह करते हुए

तपस्या के द्वारा आपकी आराधना करते हैं। इसी प्रकार चतुर्थाश्रमी संन्यासी गण ज्ञानाग्नि द्वारा सर्व कर्मों को भस्मसात् करके समाधि में आपका दर्शन करते हैं। इस प्रकार हे भगवन्! आप के अवतार से सभी साधकों का समानरूप से कल्याण होता है।

हे आनन्द घन! वृक्ष से बीज का अनुमान होता है। गर्भ को देखकर पति का अनुमान होता है। कार्य को देखकर कारण के विषय में सोचा जाता है। इस त्रिगुणात्मक जगत् को देख कर यह अनुमान लगाते हैं, कि इसका कोई कर्ता अवश्य होगा जो इस सर्वाधिष्ठान का सर्वसाक्षी है। हे विधाता! यदि आप अवतार धारण न करते तो साधकों को आपका अपरोक्ष ज्ञान कैसे होता? जो साधक आपके कर, चरण, नयन, नासिका तथा कमल नयन के दर्शन करना चाहते हैं, जो आपसे मधुर मधुर वार्ता करने के लिये समुत्सुक रहते हैं। उनके लिये तो आप को नराकृति रखना ही होगा, उनके सम्मुख तो आपको अपना त्रिभुवन कमनीय रूप प्रदर्शित करना ही होगा। इसीलिये हे भगवन्! भक्तों पर अनुग्रह करने के निमित्त आप भगवती महाभागा देवकी के उदर में प्रविष्ट से हुए हैं। प्रविष्ठ से इसलिये कहा कि आकाश के समान बाहर भीतर सर्वत्र व्याप्त के लिये प्रविष्ट होना कहना बनता नहीं।

हे देवाधिदेव! हम लोग जानते हैं, कि इन्द्रियों का नियामक मन है। मनकी स्थिरता बुद्धि के अधीन है। उस बुद्धिका भी जो कोई नियामक है, वही परमात्मा है। इसी प्रकार वेद अन्नमय कोश का वर्णन करके कहता है, नेति यह वह परमात्मा नहीं है, फिर प्राणमय का वर्णन करके कहता है नेति। यह ब्रह्म नहीं। इस प्रकार नेति नेति कह कर जो इस दृश्य प्रपंच से परे है, वही ब्रह्म है, इस प्रकार मनके द्वारा तथा वेदवाणी के द्वारा केवल आपका अनुमान ही कियाजा सकता है। आपके स्वभाव को कोई प्रत्यक्ष न

देख नहीं सकता, केवल कार्य को देखकर जैसे कारण का अनुमान करते हैं, वैसे ही आपके स्वभाव का अनुमान किया जाता है। जब आप के स्वभाव के ही विषय में पूर्ण जानकारी नहीं है, तो फिर आप सर्वसाक्षी के नामों का, आप के अचिन्त्य, अवर्णनीय रूप का, आप निर्गुण के गुणों का, आप कर्मरहित के अनुपम कार्यों का तथा आप अजन्मा के जन्मों का वर्णन कोई कैसे कर सकता है, आप के अवतारों का निरूपण नहीं किया जा सकता। इतना सब होने पर भी जो आपके अनन्य भक्त हैं, आपके सगुण साकार स्वरूप के उपासक हैं, वे उपासना के द्वारा आस्तिकता तपस्या तथा मंत्रजापादि के द्वारा आपके त्रिभुवन कमनीय अचिन्त्य अनवद्य स्वरूप का साक्षात्कार कर लेते हैं, आप के प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त कर लेते हैं।

हे प्रभो ! क्रियायें चाहें लौकिक हों, वैदिक अथवा तान्त्रिक, जब तक उनमें आपके सुमधुर नामों का कीर्तन न होगा, आपके भुवन मोहन रूपका स्मरण न होगा, आप की अलौकिक लीलाओं का कथन, श्रवण तथा ध्यान न होगा, तब तक वे कर्म परिपूर्ण कैसे कहे जा सकते हैं। इसीलिये जो आपके अनन्य उपासक हैं, भावुक भक्त हैं, आपके पादपद्मों का ही जिन्हें एकमात्र सहारा है, वे भक्त जन वर्णाश्रमधर्म का पालन करते हुए लौकिक तथा वैदिक क्रिया कलापों के करते समय आपके मङ्गलमय नाम रूपोंका दूसरों भक्तों द्वारा स्वयं श्रवण करते हैं, अपनी वाणी द्वारा उनका कीर्तन करते हैं, प्रवचनकारों के मुख से स्वयं सुनते हैं, अपने संगी, साथियों, कुटुम्ब, परिवार वालों के साथ मिलजुल कर नाम संकीर्तन करते हैं। आपके रूप का स्मरण करते हैं, ध्यान द्वारा आपका साक्षात्कार करते हैं। वे फिर माता के स्तन पानको नहीं करते, अर्थात् वे संसार सागर से सदा के लिये विमुक्त बन जाते हैं, उन्हें फिर इस भवसागर में भ्रमित नहीं होना पड़ता। आपके

जिनको स्वतः कोई इच्छा नहीं, जो स्वयं कर्मबन्धनों से परे हैं, जिनका कोई कर्तव्य नहीं। जो नित्य, निरञ्जन, निराकार, निरामय और निर्विकार हैं, वे ही सब भक्तों को सुख देने के निमित्त अपने आश्रितों को आनन्द पहुँचाने के लिये सगुणसाकार सुन्दर स्वरूप रखकर अवनि पर अवतरित होते होंगे, तो उस समय इस पृथिवी की शोभा कैसी हो जाती होगी। हम देखते हैं, कुछ क्षणों के लिये कोई साधु-संत, आचार्य या विशिष्ट व्यक्ति किसी स्थान पर आ जाते हैं, तो उनके आने से ही वहाँ कैसी श्री दमकने लगती है, जहाँ वे निवास करते हैं, वह स्थान हठात् सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेता है, जब उनके स्वल्पविभूति वालों के कारण इतनी शोभा हो जाती है, तो वे षडैश्वर्यपूर्ण प्रभु जब बन ठनकर, सुंदर-वपु धारण करके इस अवनि को पावन करते होंगे, तब तो यह पृथिवी पद-पद पर नव हो जाती होगी, अपनी स्वाभाविक कठिनता त्याग कर मृदु से भी मृदुतम बन जाती होगी, कृपण के धन की भाँति उन चरणचिन्हों को अपने वृक्षस्थल में छिपा लेती होगी। दिशायें खिल उठती होंगी, वृक्ष हरे भरे हो जाते होंगे। पहाड़ पिघल जाते होंगे और नदियाँ सुस्थिर हो जाती होंगी। तभी तो भगवती कुन्ती ने रोते रोते श्यामसुंदर से हस्तिनापुर में द्वारकागमन के समय कहा था—"हे नाथ! हे श्यामसुंदर! हे गदाधर! आप द्वारका जा रहे हैं, कैसे कहूँ कि न जाओ। और यह भी नहीं कह सकती कि आप जाओ, किन्तु हे देव! आपके विलक्षण लक्षणों से लांछित अरुण वरण के चरणारविन्दों से चिन्हित यह कुरुजांगल देश की अवनि इस समय जैसी सुशोभित हो रही है, वैसी आपके यहाँ से पधारने पर शोभित न होगी। यह सूनी-सूनी सी हो जायगी, इसमें वह सरसता न रहेगी, उसमें वह मादकता दिखायी न देगी, विधवा के मस्तक पर सिन्दूर का यह लाल चिन्ह जैसे उसका उपहास करता

है, उसी प्रकार आपके बिना यह भू-भाग उपहासास्पद बन जायगा। हे अशरण शरण! आप जब इस देश में विराजते हैं, तो ओषधियों में होड़ लग जाती है, देखें कौन अधिक बढ़कर श्यामसुन्दर को रिझा सकती है। वृक्षों के पुष्पों में प्रतिस्पर्धा हो जाती है, देखें कौन अधिक सुन्दर सुगन्धित होकर श्यामसुंदर की सेवा कर सके। फलों में लाग-डाट होने लगती, कौन सुन्दर सुस्वादु सरस सलौना बनकर श्यामसुन्दर के अधरों के स्पर्श का सौभाग्य प्राप्त कर सके। आकाश अपने विविध प्रकार के रङ्ग प्रकट करता है, दिशायें सुख शान्ति का शृङ्गार कर करके हँस जाती हैं, प्रकृति आह्लादित हो जाती है। सुपक्व ओषधियाँ हिलने लगती हैं, लतायें वृक्षों से लिपट कर मटकर अठखेलियाँ करती रहती हैं, वन विकसित हो जाते हैं, पर्वत पिघल जाते हैं, वे रंग बिरंगे मणि-मुक्ताओं को बखेर देते हैं, अपना सर्वस्व लुटाने के लिये बाहर फैला देते हैं। नदियाँ रोमांचित हो जाती हैं, समुद्र हिलोरें लेने लगते हैं, गरज गरजकर हर्ष प्रकट करते हैं श्याम-सुन्दर तुम्हारे चले जाने पर ये सब म्लान हो जायँगे।" यह तो विरह का दृश्य है, जब भगवान् आ रहे हों उनके प्राकट्य का काल हो उस समय की शोभा समृद्धि और सौभाग्य के सम्बन्ध में तो कुछ कहना ही नहीं बनता।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! प्रकट होनेवाले प्रभु की स्तुति करते हुए देवतागण कह रहे हैं—"प्रभो! यह पृथिवी आपके चरण स्थानीय है, अर्थात् जब आप विराट् रूप धारण करते हैं, तब पृथिवी आपके चरण होते हैं। पृथिवी को आपने पत्नी रूप से भी ग्रहण किया है, इस नाते से भी वह आपकी चरणसेविका दासी है। सर्वप्रथम पृथिवी का उद्धार करके आप इसे रसातल से लाये थे और जल के ऊपर स्थापित करके आपने इसपर चरण रखे थे। सर्व प्रथम आपके चरणों का स्पर्श पाकर पृथिवी का

शरीर रोमांचित हो गया, उसी से ये वृक्षादि उत्पन्न हुए। उसी स्पर्श को पाकर यह पृथिवी देवी अब तक प्रफुल्ल बनी रहती है, और उन्हीं चरणों के स्पर्श के लिये लालायित रहती हैं। अब पृथिवी देवी का सौभाग्य उदय होगा, वह पुनः आपके पादपद्मों का स्पर्श प्राप्त कर सकेगी। अपने उभरे वक्षस्थल पर ध्वज वज्रांकुशादि चिन्हों से चिन्हित उन अरुण मृदुल सुखद चरणों को धारण करेगी। उनकी पीली पराग से भू देवी के वृक्षस्थल पर वे चरणाङ्कित चिन्ह उभर आवेंगे स्पष्ट दिखायी देंगे। भू देवी की संतान हम सब सुरगण उन चिन्हों को देखेंगे, उन्हीं में मुख लगाकर माता के पय का पान करेंगे, तो हम भी धन्य हो जायँगे। कभी लोकपालों पर कृपा करने के निमित्त आप स्वर्ग भी पधारेंगे तो पृथिवी की कृपा से स्वर्ग भी सौभाग्यशाली बन जायगा। चिरकाल से पापियों के पापों से भारभूता भू का भार अब दूर ही हुआ समझिये; जहाँ आपके चरण अवनि पर पड़े नहीं कि पापों के पहाड़ तुरन्त विलीन हो जायँगे, सभी स्वर्ग तथा पृथिवी निवासी प्रमुदित बन जायँगे।

प्रभो ! आप जन्म, मरण, जरा तथा भय इन सभी से परे हैं। आपका जन्म कर्म बन्धनों के कारण, प्रारब्ध भोग के निमित्त नहीं होता। यह सत्य है, कि अन्य संसारी जीवों का जन्म शुभाशुभ कर्मों के भोग के ही निमित्त होता है, किन्तु आपका जन्म लेना तो विनोद है, लीला है, भक्तों को सुख देने वाली क्रीड़ा है। आप इस जगत् के अधिष्ठान रूप हैं, सर्वात्मा हैं, आप इस जगत् की उत्पत्ति करते हैं, उसका पालन करते हैं तथा अन्त में संहार करते हैं। यह भी कुछ आपका कर्तव्य कर्म थोड़ा ही है, इसे भी कोई आप स्वयं कर्तव्य समझकर करते थोड़े ही हैं, यह भी एक अविद्या कृत अधिष्ठान है। आपके बिना यह जगत निस्सार है, आपकी सत्ता से ही यह सत्तावान् है, जैसे जीवात्मा

बिना शरीर व्यर्थ है, उसी प्रकार आपके बिना यह जगत भी व्यर्थ है, सबके सार, सबके तत्त्व, सबके अधिष्ठान एकमात्र आप ही हैं। हे प्रभो ! अब आप अविलम्ब अवनि पर अवतरित होवें।

हे यदुनन्दन ! आपने सब योनियों में सभी प्रकार के अवतार धारण किये, जैसे मत्स्य कच्छप जलचर जीव बने, हयग्रीव, नृसिंह, शूकर, वनचर जीव बने, हंस रूप से नभचर बने, श्रीरामचन्द्र रूप में पृथिवीपाल क्षत्रिय बने, परशुराम रूप में ब्राह्मण बने और उपेन्द्र रूप में देवता बने। स्वामिन् ! आप इन अवतारों में सदा भक्तों की रक्षा गो ब्राह्मणों का प्रतिपालन तथा दुष्टों का दमन और देवताओं को अभय करते रहे, उसी प्रकार इस अवतार में भी आप करें।

मत्स्य अवतार लेकर आपने महाराज सत्यव्रत पर बिना याचना के अपने आप ही अहैतुकी कृपा की, उसी प्रकार इस अवतार में भी आप भक्तों की प्रार्थना की अपेक्षा न करके उनपर स्वयं ही कृपा करें। जैसे मत्स्यावतार में सप्तर्पियों को आपने प्रलय सागर से बचाया, उसी प्रकार इस अवतार में भी आप अपने अनुगतों को भय से बचावें। जैसे वहाँ आपने समस्त बीजों की रक्षा की उसी प्रकार यहाँ भी आप सद्गुण रूपी बीजों की रक्षा करें।

जैसे ब्रह्माजी के यज्ञ में हयग्रीवावतार लेकर आपने वेदों की रक्षा की वैसे ही इस अवतार में भी ज्ञान की रक्षा करें और अपने आश्रित पांडवों के यज्ञ में प्रकट होकर उनकी प्रतिष्ठा की रक्षा करें। उनकी कीर्ति को अक्षुण्ण बनावें। जैसे जलचर मीन होकर भी स्थल चरों की रक्षा की अपने ऐश्वर्य को छिपाकर आप अपने आप नौका को घुमाते रहे, उसी प्रकार इस अवतार में भी

पांडवों को युद्ध रूपी प्रलयानल से बचाने के लिये सारथीपने के हीन जैसे कार्य को करते हुए उनको विजय करावें।

जैसे कच्छपावतार में मंदराचल को धारण करके भी सुखपूर्वक सोते से रहे वैसे ही इस अवतार में भी इतने भारी गोवर्धन पर्वत को सुखपूर्वक धारण करें, जैसे उस अवतार में आपने अमृत की उपलब्धि करायी उसी प्रकार इस अवतार में भी हम देवताओं को दर्शनामृत पान कराते रहें।

हे हरे! जैसे नृसिंहावतार में आपने भक्तवर प्रह्लादजी की रक्षा को असुरों को दंड दिया, उसी प्रकार आप इस अवतार में भी अपने भक्तों पर कृपा करें और असुर रूप में प्रकट हुए राजाओं को दंड दें। जैसे नृसिंहावतार में आपने अपनी गर्जना से शत्रुओं के हृदयों को दहलाया था। उसी प्रकार इस अवतार में भी पांचजन्य की ध्वनि से भक्तद्रोही कौरवों की सेना के छक्के छुटा दें, जैसे वहाँ आपने प्रह्लाद को सिंहासन पर बिठाया था, इस अवतार में भी धर्मराज युधिष्ठिर को सार्वभौम सम्राट के पद पर प्रतिष्ठित कर दें।

हे वेदोद्धारक! जैसे वराहावतार धारण करके आपने भूदेवी का उद्धार किया उसी प्रकार इस अवतार में भी आप असंख्य अबलाओं का उद्धार करें, जैसे भू उद्धार के समय उसमें विघ्न करने वाले हिरण्याक्ष का वध किया उसी प्रकार नरकासुर आदि विघ्नकारक असुरों का इस अवतार में भी नाश करें।

हे ज्ञान स्वरूप! जैसे हंसावतार लेकर आपने सनकादिक ज्ञानियों को तथा लोकपितामह ब्रह्माजी को भी ज्ञान दान दिया, उसी प्रकार इस अवतार में भी आप किंकर्तव्यविमूढ़ बने अर्जुन को भी गीता ज्ञान का उपदेश देकर कृतार्थ करें। उसके सभी संशयों को मेट दें। वहाँ आपने हंसगीता का उपदेश दिया, यहाँ भगवद्

गीता का सर्वोत्कृष्ट उपदेश दें।

हे मर्यादा पुरुषोत्तम ! जैसे रामरूप रखकर आपने पिता के वचन का प्रतिपालन किया उसी प्रकार यहाँ भी आप अपने माता तथा पिता का पालन करें। उन्हें धर्म बन्धन से मुक्त करें। जैसे वहाँ आप वन-वन में घूमे उसी प्रकार यहाँ भी गोचारण के मिस से वनचारी बनिये। जैसे वहाँ आपने असुर के बन्धन में पड़ी अपनी प्रिया सीताजी का उद्धार किया उसी प्रकार शङ्ख चूड़ के फंदे में फँसी अपनी प्रियाओं का उद्धार कीजिये। जैसे वहाँ आपने भरतादि भाइयों की पूजा को ग्रहण किया उसी प्रकार यहाँ भी आप पांडवों की अग्रपूजा को स्वीकृत कीजिये।

जैसे परशुराम अवतार लेकर आपने क्षत्रिय रूप में अवतरित दुष्ट राजाओं का विनाश किया उसी प्रकार इस अवतार में भी भू के भार बने दुष्ट राजाओं का स्वयं भी वध कीजिये और अपने अनुयायी भक्तों से भी वध कराइये। जैसे आपने उस अवतार में गौ की रक्षा के लिये सहस्रबाहु की भुजाओं को काट दिया था, उसी प्रकार इस अवतार में गौओं की रक्षा करते हैं उनका चारण प्रतिपालन करते हुए गो-ब्राह्मण द्रोही सहस्रों असुरों को परलोक पठाकर उनका उद्धार कीजिये।

जैसे वामनावतार में आपने बलि को छलकर हम आश्रित देवों के गये हुए राज्य को पुनः प्राप्त कराया, उसी प्रकार इस अवतार में भी दुर्योधन के अनुयायी भू के भार रूप भूपतियों को मारकर द्रोण भीष्म तथा कर्ण आदि महारथियों को नाति विरुद्ध भी छल से वध कराइये और अपने आश्रित पांडवों के गये हुए राज्य को पुनः दिलाइये।

हे अशरणशरण ! आप सदा से शरणागतों की रक्षा करते आये, हैं सदा करते रहेंगे उसी प्रकार इस समय भी करें, इस

समय भी पृथिवी के बढ़े हुए भार को हलका कीजिये। हम सब सुरगण आपके पुनीत पुण्यमय पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम करते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार गर्भस्थ श्रीहरि की स्तुति करके देवतागण माता देवकी को आश्वासन देते हुए कहने लगे—"माताजी! आप तनिक भी चिन्ता न करें, किसी प्रकार भी भयभीत न हों, आप तो परम भाग्यशालिनी हैं। त्रैलोक्य-वन्दिता हैं, सबके वन्दन करने योग्य हैं, क्योंकि आपके उदर से अखिल ब्रह्मांडनायक समस्त प्राणियों का अभ्युदय करने के अवतीर्ण होने वाले हैं। स्वयं साक्षात् परम पुरुष अवतार लेने वाले हैं, कोई अवतार भगवान् के अंश से होता है, कोई उनकी कुछ कलाओं से होता है। किसी में कुछ काल के लिये आवेश आता है, किन्तु आपके गर्भ से होने वाला यह अवतार तो अपनी संपूर्ण कलाओं के सहित होगा। स्वयं साक्षात षडैश्वर्य समन्न सौन्दर्य माधुर्य तथा समस्त अलौकिक दिव्य गुणगणनिधान, परब्रह्म परमात्मा ही ज्यों के त्यों अवतरित होंगे। उनमें कुछ भी अपूर्णता न होगी, वे सर्व प्रकार से निरपेक्ष निरालंब, निर्विशेष, नित्यनिरंजन, निर्द्वन्द्व, निर्विकल्प, निरीह, निरामय तथा निर्लिप्त होंगे। इस कारण अब आप अपने भाई कंस से किसी भी प्रकार का भय न करें। उसकी तो मृत्यु सन्निकट आ गयी है, वह मरणासन्न है, मृत्यु उसकी प्रतीक्षा में बैठी हुई ही क्षण, लव, निमेष की गणना कर रही है। यह जो तुम्हारा तनय है तुम्हारी ही नहीं, सम्पूर्ण यदुवंश की तथा अखिल विश्व की यह रक्षा करेगा।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! इस प्रकार देवतागण गर्भस्थ श्रीहरि की प्रेमपूर्वक स्तुति करके तथा माता को सब प्रकार से आश्वासन देकर ब्रह्माजी, शिवजी, इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम तथा

समस्त देवतागण अपने अपने लोकों को चले गये। यह मैंने अत्यन्त ही संक्षेप में सारभाग से गर्भस्थ श्रीहरि की देवताओं द्वारा की हुई स्तुति का वर्णन किया, अब आगे भगवान् के अवतरित होने पर उनके प्राकट्य के अनन्तर महाभाग वसुदेवजी ने जैसे उन चतुर्भुज, अरविन्दाक्ष अद्भुत बालक की स्तुति को उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।"

छप्पय

जैसे बनिकें मच्छ नृपति, ऋषि बीज बचाये।
अज मख रक्षा करी अश्वशिर नाथ कहाये॥
कच्छ रूपजल धारि पीठि पै मन्दर धार्यो।
बनिकें प्रभु नरसिंह भक्त प्रह्लाद उबार्यो॥
राम,हंस, बाराह बनि, ऋषि, मुनि भू कीन्हीं सुगति।
परशुराम, बामन बने, हरहु नाथ! तस अब बिपति॥

पद

विभुवर! बिबुधनि बिपति बिदारी।
भीर परी भू भगतनिपै जब, तब तिनि बिपदा टारी॥१॥
मछली बनिकें बीज बचाये, नृप ऋषि तरनी तारी।
बनि हयग्रीव हन्यो हयग्रीवहु, प्रह्लादहु दुखहारी॥२॥
परशुराम बामन बराह बनि, खलदल हने मुरारी।
बनिकें हंस ज्ञान उपदेश्यो, रावन हन्यो खरारी॥३॥
गो द्विज देव धरम मरजादा; रखो सदा सुखकारी।
शरन चरन प्रभु हमने लीन्हीं, राखो लाज हमारी॥४॥

गर्भस्थ हरि स्तुति

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं,
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं,
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥१॥

एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूलः,
चतूरसः पञ्चविधः षडात्मा।
सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो,
दशच्छदी द्विखगो ह्यादिवृक्षः ॥२॥

त्वमेक एवास्य सतः प्रसूतिः,
त्वं सन्निधानम् त्वमनुग्रहश्च।
त्वन्मायया संवृतचेतसस्त्वां,
पश्यन्ति नाना न विपश्चितो ये ॥३॥

बिभर्षि रूपाण्यवबोध आत्मा,
क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य।
सत्त्वोपपन्नानि सुखावहानि,
सतामभद्राणि मुहुः खलानाम् ॥४॥

त्वय्यम्बुजाक्षाखिलसत्त्वधाम्नि,

समाधिनाऽऽवेशित चेतसैके ।
त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन,
कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाब्धिम् ॥५॥
स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन्,
भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः ।
भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते,
निधाय याताः सदनुग्रहो भवान् ॥६॥
येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनः,
त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः,
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ॥७॥
तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद्,
भ्रश्यन्ति मार्गात्त्वयि बद्धसौहृदाः ।
त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया,
विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो ॥८॥
सत्त्वं विशुद्धं श्रयते भवान् स्थितौ,
शरीरिणां श्रेयउपायनं वपुः ।
वेदक्रियायोगतपःसमाधिभिः,

तवार्हणं येन जनः समीहते ॥६॥

सत्वं न चेद् धातरिदं निजं भवेद्,

विज्ञानमज्ञानभिदापमार्जनम् ।

गुणप्रकाशैरनुमीयते भवान्,

प्रकाशते यस्य च येन वा गुणः ॥१०॥

न नामरूपे गुणजन्मकर्मभिः,

निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिणः ।

मनोवचोभ्यामनुमेयवर्त्मनो,

देव क्रियायां प्रतियन्त्यथापि हि ॥११॥

शृण्वन् गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन्,

नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते ।

क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयोः,

आविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥१२॥

दिष्ट्या हरेऽस्या भवतः पदो भुवो,

भारोऽपनीतस्तव जन्मनेशितुः ।

दिष्ट्याङ्कितां त्वत्पदकैः सुशोभिनैः,

द्रक्ष्याम गां द्यां च तवानुकम्पिताम् ॥१३॥

न तेऽभवस्येश भवस्य कारणं,

विना विनोदं बत तर्कयामहे ।
भवो निरोधः स्थितिरप्यविद्यया,
कृता यतस्त्वय्यभयाश्रयात्मनि ॥१४॥
मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंस:,
आजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः ।
त्वं पासि नस्त्रिभुवनं च यथाधुनेश,
भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते ॥१५॥
दिष्ट्याम्ब ते कुक्षिगतः परः पुमान्,
अंशेन साक्षाद् भगवान् भवाय नः ।
मा भूद् भयं भोजपतेर्मुमूर्षोः
गोप्ता यदूनां भविता तवात्मजः ॥१६॥

वसुदेवजी द्वारा चतुर्भुज श्रीहरि की स्तुति

(७६)

विदितोऽसि भवान् साक्षात् पुरुषः प्रकृतेःपरः ।
केवलानुभवानन्द स्वरूपः सर्व बुद्धिदृक् ॥१

(श्री भा ० १० स्क० ३ अ० १३ श्लो०)

छप्पय

कारागृह में प्रकट भये प्रभु घट घट वासी ।
विनय करें वसुदेव नाथ ! तुम अज अविनासी ॥
जानि गयो हौं देव ! प्रकृति तें परें पुरातन ।
करो भरो जग हरो आपु हरि हर चतुरानन ॥
दीखो सबमें एकरस, किन्तु पृथक सबतें रहो ।
सदाकाल प्रभु जो रहें, प्रकट होयँ कैसे कहो ॥

भक्त वत्सल भगवान् अपने अनुगतों पर अनुग्रह करके अवनिपर अपनी अद्भुत अनुकम्पा की वृष्टि करने के निमित्त अवतरित होते हैं। हम सर्व साधारण लोग तो प्रकृति के ही रहस्य को भली भाँति नहीं जान सकते । जान भी कैसे सकते हैं । हमारे पास जानने के साधन वाह्य करण वाहरी इन्द्रियाँ तथा अन्तःकरण-भीतर की इन्द्रियाँ ये ही सब हैं। ये सब प्रकृति

---

१ भगवान् की स्तुति करते हुए वसुदेवजी कह रहे हैं—"प्रभो ! मुझे विदित हो गया कि आप प्रकृति से परे साक्षात् परम पुरुष हैं, आप केवलानुभवानन्द स्वरूप हैं और सबकी बुद्धियों के द्रष्टा हैं।

के नाती पोता हैं। प्रकृति से बहुत पीछे पैदा हुए हैं, इनके द्वारा जब प्रकृति का ही पूर्ण बोध नहीं होता, तो जो पुरुषोत्तम प्रकृति से भी परे हैं उन्हें हम अल्प स्वल्प मति वाले जीव अपनी बुद्धि के द्वारा पहिचान ही कैसे सकते हैं। वे ही जब कृपा करें, वे ही अनुग्रहवश अपने आपको जनाना चाहें तभी जीव जान सकता है। भगवान् सर्व स्वतन्त्र हैं, लहरी हैं, मन मौजी हैं, जब उन्हें जैसी लहर आ जाय तब तैसे ही बन जाते है। बन क्या जाते हैं, वैसे ही दीखने लगते हैं दीखना भी कहना उचित नहीं प्रतीत से होने लगते हैं, प्रतीति प्रीति भी जानने से ही होती है अतः कुछ भी कहने में हम असमर्थ हैं। बस, सब कुछ उन्हीं की इच्छा पर निर्भर है। जब जैसी लीला करते हैं। उसके लिये वैसे ही उपकरण बना लेते हैं। उपकरणों को छाँटना उनका उपयोग करना सब विषय में वे ही प्रमाण हैं। उनकी लीलामें हस्तक्षेप करने का किसी को साहस नहीं। जब कोई दूसरा स्वतन्त्र करता हो, तब तो साहस भी हो सकता है। कर्ता तो एक मात्र वे ही हैं, शेष सब तो उपकरण हैं, मिट्टी के धोंधे हैं। जब जिसे चाहें उठाकर घटा, सकोरा, परई, करई, नाद, हंडी तथा और भी अपनी इच्छानुसार वर्तन बना दें। कोई उन्हें रोकनेवाला नहीं। मतभेद व्यक्त करने वाला नहीं। लाला ही लाला है, जिसे चाहते हैं उसे भी लाल बनाकर लीला लालित्य में लग्न कर लेते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! वसुदेवजी ने जब भगवान् को चतुर्भुज रूप में प्रकट होते देखा, तो वे हक्के बक्के से रह गये। अब तक तो उन्हें यह चिन्ता थी कि मेरे पुत्र होगा, कंस उसे मार देगा, किन्तु जब उन्होंने शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी साक्षात् बाँके बिहारी को देखा, तो वे स्तुति करने को प्रस्तुत हुए। भगवद् दर्शनों से वे ऐसे संभ्रम में पड़ गये, कि भगवान् को संबोधित करना

भी भूल गये नमस्कार, दंडवत् प्रणाम करने की भी सुधि नहीं। वे सहसा चिल्ला उठे—"श्रो हो! मैंने जान लिया जान लिया, मैंने देख लिया देख लिया। मैंने सत्य स्वरूप ज्ञान स्वरूप और आनन्द स्वरूप स्वयं साक्षात् पर ब्रह्म को अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देख लिया। वेद जिसके सम्बन्ध में नेति नेति कहते हैं जो मन तथा वाणी का विषय नहीं बताया जाता। जो विज्ञान तथा आनन्दमय ब्रह्म कहते हैं, जिससे यह सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है। जो अवाङ्मनस गोचर बताया जाता है, जिसे प्राप्त न करके मन के सहित वाणी लौट आती है। जो जो बाह्य दृष्टि के विषय नहीं। उन्हें मैंने चर्म चक्षुओं से देख लिया।

यद्यपि चर्म चक्षु प्राकृत वस्तुओं को ही देख सकते हैं किन्तु यह महान् आश्चर्य की बात है, कि मैंने प्रकृति से परे जो पुरुष हैं, जो भूमि, जल, वायु, तेज, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार इस अष्टधा प्रकृति से तथा जीव से भी परे पुरुषोत्तम हैं, वे ही तो आज चतुर्भुज रूप में अवतीर्ण हुए हैं, मैं जान गया, मुझे अब कोई शंका नहीं रही।

हे स्वामिन्! आप साधारण बालकों की भाँति नहीं हैं। आप देह से, इन्द्रियों से, प्राणों से, तथा मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार इन सभी से परे हैं। आप केवल चैतन्य स्वरूप ही हैं, जैसे हिमकी पुतली बना दी जाय, तो उसमें हाथ, पैर, आँख, कान, मुख आदि सभी दिखायी देंगे किन्तु हिमके अतिरिक्त उसमें दूसरी कोई वस्तु नहीं। इसी प्रकार आपका जो यह श्रीविग्रह दिखायी दे रहा है इसमें केवल आनन्द ही आनन्द भरा है सच्चिदानन्द के अतिरिक्त इसमें प्राकृत किसी भी वस्तु का अंश मात्र भी नहीं है। आप एक मात्र अनुभव गम्य है, वह अनुभव भी आपकी एक मात्र कृपा द्वारा ही साध्य है। हे बुद्धि से परेपुरुषोत्तम

आप ही एक मात्र सबकी बुद्धियों के साक्षी हैं। आपकी ही उपस्थित में बुद्धि व्यवहार कर सकती है, जैसे रात्रि में दीपक की ही उपस्थिति में सब वस्तुओं का ज्ञान होता है। यद्यपि दीपक कोई कर्म नहीं करता वह तटस्थ आपसे साक्षी बना केवल स्थित ही रहता है, उसके रहने से ही घर की समस्त वस्तुएँ प्रकाशित होती रहती हैं। उसके हटजाने पर कुछ भी दिखायी न देगा। इसी प्रकार बुद्धि जो सद् असत् का विचार करती है भले बुरे को बताती है, उसमें यह सामर्थ्य आपकी सन्निधि से हो है। अतः सबके नियामक आप ही हो।

स्वामिन् ! आप माया से रहित होते हुए भी मुक्त जीवों की भाँति नहीं हैं। आप अपनी योग माया द्वारा सत्व, रज तथा तम इन तीनों गुणों से युक्त इस जगत् की रचना करते हैं। जैसे मकड़ी बिना किसी उपकरण के अपने मुख से ही सूत निकालकर जाल की रचना करती है। किन्तु वह जाल बनाकर कभी कभी स्वयं उसमें फँस जाती है, क्यों कि बनाकर उसे उस जाल मे प्रवेश करना पड़ता है, किन्तु आप इस त्रिगुण मय जालको बनाते तो अवश्य हैं। किन्तु कभी फँसते नहीं लोगों की दृष्टि मे तो आप जगत की रचना करके उसमें प्रविष्ट हो जाते हैं। वास्तव में आप उसमें प्रविष्ट होते नहीं प्रविष्टवत दिखायी देते हैं। उससे सर्वदा भिन्न ही बने रहते हैं।

प्रभो ! जैसे महत्तत्व, अहंतत्त्व, शब्द, रूप, रस, गन्ध, और स्पर्श रूप जो कारण तत्त्व हैं, प्रकृति विकारात्मक भाव हैं, ये सब भिन्न भिन्न सामर्थ्य वाले होने के कारण जब पृथक् पृथक् रहते हैं, तब सृष्टि की वृद्धि का कोई कार्य नहीं कर सकते। ये विराट पुरुष को उत्थित करके रचना कार्य में समर्थ नहीं हो सकते। कोई भी विशिष्ट कार्य सम्पादन नहीं कर सकते। जब

ये पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय तथा पंचभूत और मन इन सोलह विकारों के साथ मिल जाते हैं। पृथिवी में जल, तेज वायु और आकाश इनके भी परमाणु पंचीकृत हो जाते हैं, इसी प्रकार सब भूतों में आधेमें शेष चार भूत मिलकर इन कारण तत्वों के साथ सहयोग करने लगते हैं। तब विराट् पुरुष उठ पड़ता है, तभी ये सब ब्रह्माण्ड की रचना करने में समर्थ हो जाते हैं। ये ही सब ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करते हैं और फिर इस सम्पूर्ण ब्रह्मांड में प्रविष्ट हो जाते हैं। इससे यह नहीं माना जाता है, कि ब्रह्माण्ड उत्पन्न होने पर इसमें भूत आदि ने प्रवेशकिया प्रवेशकरना तो एक उपलक्षणमात्र है। महत्तत्त्वसे पृथिवी पर्यन्त ये जितने तत्व हैं। ब्रह्माण्ड के पूर्व भी कारणरूपसे विद्यमान थे। ब्रह्माण्ड उत्पन्न होने पर भी जैसे वस्त्र में सूत ओत प्रोत है, वैसे ही ये पंचभूतादि भी ब्रह्माण्ड मे ओत प्रोत हैं। ब्रह्माण्ड न रहेगा। इसका प्रलय हो जायगा तब भी ये कारण रूप से ज्यों के त्यों बने रहेंगे। जैसे अक्षर हैं, उनका कभी क्षर नहीं होता, वे सदा बने रहते हैं। कई अक्षर मिलकर एक वाक्य की रचना करते हैं। वह वाक्य एक विशेष अर्थ का बोधक बन जाता है। जिस समय अक्षर मिलकर वाक्य बना उस समय भी वे सब शब्द विद्यमान थे। जब अक्षर पृथक पृथक हो जायँगे, तो अक्षर तो ज्यों के त्यों ही बने रहेंगे। अर्थ बोधक वाक्य का लोप हो जायगा। अक्षर तो वाक्य बनने के पहिले भी थे, वाक्य बनने पर भी ज्यों के त्यों बने रहे और वाक्य न रहेगा तब भी बने रहेंगे। इसी प्रकार स्वामिन्! आप भी सर्वस्वरूप हैं सदा विद्यमान रहने वाले हैं, सर्वान्तर्यामी हैं। आप इस त्रिगुणात्मक जगत् में ओत प्रोत हैं फिर भी गुणों के विकारों से आप सदा सर्वदा पृथक रहते हैं। आप

जगत् से निर्लिप्त रहने पर भी उसमें अनुप्रविष्ट से उपलक्षित होते हैं।

स्वामिन् ! सत्व, रज, तथा तम जो त्रिगुण हैं,ये इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किये जाते हैं। तथा बुद्धि द्वारा उनके लक्षणों का अनुमान किया जाता है। आप इन गुणों में व्याप्त हैं, क्योंकि आप सर्वान्तर्यामी हैं, किन्तु आप उनसे सर्वदा निर्लिप्त हैं। आप तो सबमें हैं। सर्वदा हैं परमार्थ स्वरूप तथा सर्वात्म स्वरूप हैं, आप में बाहर भीतर का भेद नहीं। आप सबके भीतर भी हैं, बाहर भी हैं और सबसे सर्वदा पृथक् भी हैं।

प्रभो ! इस निखिल ब्रह्माण्ड में एक मात्र आप ही नित्य हैं। आप ही आत्मा हैं, विभु हैं, अन्तर्यामी हैं, सत्य हैं। परन्तु कुछ लोग आत्मा के जो दृश्य गुण शरीर आदि भाव हैं उन्हें ही सत्य समझते हैं। वे लोग मूढ़ हैं। उनका ऐसा समझना अज्ञान है, मिथ्या है। यह जो कुछ दिखायी देता है वह वाग्विलास मात्र है। वेद नेति नेति कहकर इस दृश्य का, प्रपंच का, ही बाध करते हैं। वे परमात्मा स्वरूप एक मात्र आपको ही सत्य बताते हैं।

स्वामिन् ! सबके जनक, सब के प्रतिपालक तथा संहारक एक मात्र आप ही हैं। आपके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। आप निर्विकार हैं, निर्गुण तथा निष्क्रिय हैं। इस पर यह शंका होती है कि जो स्वयं निर्विकार है इससे प्रकृति-विकृति रूप यह जगत् कैसे उत्पन्न हो सकता है। जो गुण रहित है, उससे गुणों का कार्य रूप यह जगत् रचित कैसे हो सकता है, जो निष्क्रिय है उससे सृजन पालन तथा संहार रूप क्रिया कैसे संभव है। ये सब कार्य तो एक दूसरे के विरुद्ध हैं। जिस अग्नि में स्वयं दाहक शक्ति नहीं, वह दूसरे को कैसे जला सकती है, निर्गुण से गुणमयी सृष्टि कैसे संभव हो सकती है ? सो,हे सर्वज्ञ ! आप के विषय में

कुछ भी असंभव नहीं। कारण कि आप विरुद्ध धर्माश्रयी हैं। आप तृण को पर्वत और पर्वत को तृण कर सकते हैं। आप ईश्वर हैं, सर्व समर्थ हैं आपके लिये कुछ भी असंभव नहीं। आप सर्वाधिष्ठान हैं आपकी सत्ताके विना किसी की सत्ता संभव नहीं। आप की इच्छा के विना कोई किया हो नहीं सकती। निर्गुण होकर भी आपके द्वारा यह गुण मया सृष्टि होती है। कारण कि गुण तो आपके अधान ही हैं, आपके आश्रय में ही रहकर वे सब कार्यों को करते हैं। कार्य तो सब गुणों के ही हैं, किन्तु सर्वाश्रय होने के कारण उन समस्त कार्यों का आरोप किया जाता है आप में ही। आपके साक्षी मात्र रहने पर यह प्रवाह रूप से अनादि काल से चला आया हुआ व्यापार नियमित रूप से चलता रहता है।

जब आप को सृष्टि करनी होती है, तो रजोगुण आप की इच्छानुसार कार्य में प्रवृत्त होता है। आप स्वयं रज प्रधान रक्तवर्ण धारण करके ब्रह्मा बन जाते हैं। पालन के लिये सत्व गुण प्रधान शुक्लवर्ण के विष्णु बनकर चराचर विश्व का पालन करते हैं। जब इस खेल को समाप्त करने की इच्छा होती है तब तमोगुण प्रधान कृष्ण वर्ण का रुद्र रूप रखकर सबका संहार कर लेते हैं। इतना सब होने पर आप इस सब से पृथक् बने रहते हैं। प्रभो! आप धर्म की रक्षा के निमित्त ही नाना रूप रख लेते हैं।

हे विभो! इस समय भूमिपर बहुत से क्षत्रिय भूपतियों के रूप में असुर उत्पन्न हो गय हैं जो प्रजाओंको सतत पीड़ा पहुँचाते रहते हैं, लोक में विप्लव मचाते रहते हैं। उन लोगों के पास असंख्य सेना है। वे राजा नामधारी राक्षस स्वयं ही सेना पति का पद स्वीकार करके उस विपुल सेना का संचालन करते हैं।

उस बलवती सेना को इधर से उधर ले जाते समय प्रजाजनों को प्रपीड़ित करते हैं। उन लोगों में अपार बल है तपस्या के प्रभाव से वे अजर अमर से बन गये हैं, आपके अतिरिक्त अन्य कोई उन दुर्मद तेजस्वी असुरों को मार नहीं सकता। हे अखिलेश्वर! जब-जब धर्म की ग्लानि होती है साधु संत प्रपीड़ित किये जाते हैं, तब तब आप धर्म रक्षार्थ तथा साधु जनों के परित्राण के हेतु अवनि पर अवतरित हुआ करते हैं, अब के आपने मुझ पर कृपा की है, अबके आपने लोक कल्याण के निमित्त मेरे यहाँ अवतार धारण किया है। आप इस अवतार में असंख्य दस्युधर्मी असुर सेनानायकों को तथा उनके द्वारा सञ्चालित असंख्य सेना को मार कर भूका भार उतारेंगे। कुछ को स्वयं मारेंगे, कुछ को दूसरों द्वारा मरवावेंगे। होगा सब आप की ही प्रेरणा से। आपके संकेत पर ही आपके सेवक सेना और सेनापतियों का संहार करेंगे।

हे विभो! हे देवाधिदेव! यह कंस भी कालनेमि नामक पूर्व जन्म का मायावी असुर ही है, यह है तो मेरा सगा सम्बन्धी, किन्तु है महा दुष्ट। इसे आकाश वाणी द्वारा यह ज्ञात हो गया था, कि देवकी के उदर से आप अवतीर्ण होकर इस दुष्ट का संहार करेंगे। तभी से यह खल सतर्क हो गया है, इसने हम लोगों को कारावास में अवरुद्ध कर रखा है। आपसे पूर्व जो आपके ज्येष्ठ भ्राता उत्पन्न हुए, उन सबको इसने जन्मते ही मार डाला है। आपके जन्म की यह अत्यंत ही उत्सुकताके साथ प्रतीक्षा कर रहा है।

प्रतीत होता है, अभी प्रहरियों को आप का प्राकट्य विदित नहीं हुआ जहाँ उसके नियुक्त अनुचरों को आपके अवतार का समाचार मिला, वहाँ ही वे सुनते ही उस दुष्ट के समीप दौड़े

जायँगे और हाँपते हुए कहेंगे—"प्रभो! यशोदा के वालक हुआ है।" इतना सुनते ही वह हाथ में अस्त्र शस्त्र लिये शीघ्रता से दौड़ता हुआ यहाँ आ पहुँचेगा।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार वसुदेवजी विह्वल होकर भगवान् वासुदेव की स्तुति विनय करने लगे। देवकी माता अब तक उस शंख चक्र गदा पद्मधारी साँवरी सलौनी मूर्ति को देखकर अचेत हुई पड़ी थीं। आनंद के आवेग में उन्हें अपने शरीर की भी सुध नहीं थी। वसुदेवजी ने जब कंस के आगमन की वात कही तो सहसा उन्हें चेत हुआ। वे पहिले से ही कंस से अत्यंतभयभीत थीं। अब फिर उन्होंने कंस के शस्त्र लेकर आने की वात सुनीं तो अत्यधिक डर गयीं। डरते-डरते वे भगवान् की आर्त वाणी में स्तुति करने लगीं। अब माता देवकी जिस प्रकार भगवान् की स्तुति करेंगी उस कथा प्रसंग को मैं आगे कहूँगा, आप सब इस पुण्य प्रसंग को प्रेम पूर्वक दत्तचित होकर श्रवण करने की कृपा करें।

छप्पय

निरगुन निष्क्रिय निरविकार निर हैतुक स्वामी।
ताऊ पालो हरो करो जग अन्तरयामी॥
गुन सब कारज करैं करे आरोप तुमहिं में।
तुम सत्ता बिनु नहीं हिलै पत्ता जा जग में॥
मम घर में अवतार ले, हित सबई को करिहो।
मारि असुर भूपति खलनि, भूमि भार प्रभु हरिहो॥

पद

प्रभो ! तुम निरगुण सगुन लखाओ ॥
जानि गयौ हौं परम पुरुष प्रभु सबकी बुद्धि भ्रमाओ ॥१॥
त्रिगुन जगत रचि ओत प्रोत ह्वै, 'मिलिकेंहू विलगाओ ।'
रहो गुननि में गुन नहिं तुममें, माया तैं रचवाओ ॥२॥
सरव समर्थ ब्रह्मव्यापक अज, श्वेत श्याम ह्वै जाओ ।
जग रक्षा हित प्रकटे मम घर, द्विज, सुर धेनु बचाओ ॥३॥
असुर नृपति बनि विचरैं भूपै, तिनिकूँ मारि गिराओ ।
कालनेमि अब कंस बन्यौप्रभु, तातैं हमें बचाओ ॥४॥

देवकी देवी द्वारा भगवत् स्तुति

(८०)

रूपं यत्तत् प्राहुरव्यक्तमाद्यम्,
ब्रह्म ज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम्।
सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहम्,
स त्वं साक्षाद्विष्णुरध्यात्मदीपः ॥ॐ

(श्रीभा० १० स्क० ३ अ० २४ श्लो०)

छप्पय

मौन भये वसुदेव देवकी इस्तुति कीन्हीं।
प्रभो! आपु अव्यक्त बात यह मैंने चीन्हीं॥
व्यापक सब थल ब्रह्म ज्योतिमय निरगुन भगवन्।
हो हरि! सत्तामात्र दीप अध्यात्म सनातन॥
निरविशेष नूतन नवल, निरविकार साकार हो।
अच्युत अखिल अनंत अज, अद्भुत अपरंपार हो॥

भगवत् दर्शन हो जाने पर समस्त वेद शास्त्र स्वतः ही आ जाते हैं। जिसे भगवान् ने अपना कह कर वरण कर लिया, जिसे उन्होंने अपना लिया उसके लिये कौन सा ज्ञान शेष रह

ॐ भगवान् की स्तुति करती हुई भगवती देवकी कह रही हैं—भगवन्! आप वही साक्षात् अध्यात्मदीप विष्णु हैं जिसे वेदों में जगत् का आदि कारण अव्यक्त कहा है, जो ब्रह्म, ज्योति, निर्गुण, निर्विकार, सत्तामात्र, निर्विशेष तथा निरीह इन विशेषताओं से बताया जाता है।

जाता है, उसकी वाणी ही वेद है उसके स्वतः किये हुए कर्म ही शास्त्रोक्त प्रामाणिक कर्म हैं। जब तक भगवत् साक्षात्कार नहीं होता, श्रीहरि दृष्टिगोचर नहीं होते तभी तक समस्त साधन हैं। भगवत् साक्षात्कार होने पर तो कुछ कर्तव्य शेष रहता ही नहीं। उसकी वाणी से स्वयं ही शास्त्रीय ज्ञान प्रकट होने लगता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब श्रीवसुदेवजी ने कंस के भय की बात कही, तब सावधान होकर;देवकीजी ने देखा, उनके सम्मुख शंख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण किये चतुर्भुज भगवान् मंद-मंद मुस्करा रहे हैं। तब उन्हें सहसा आकाशवाणी की बात स्मरण हो आयी। वे समझ गयीं, ये ही साक्षात् महाविष्णु हैं, इन्होंने ही मेरे उदरसे अवतार धारण किया है, तब उन्हें पुत्र भाव तो रहा नहीं ब्रह्म भाव हो गया। उस ब्रह्मभावावेश में वे बिना प्रयत्न के स्वतः ही भगवान् की स्तुति करती हुई कहने लगीं।

देवकीजी ने कहा—"प्रभो! मैं समझ गयी। आप मेरे पुत्र नहीं, सामान्य बालक नहीं। आप तो औपनिषदपुरुष हैं। वेदों में जिसका वर्णन है, जो वेदान्तवेद्य है, श्रुतियों ने जिसे आद्य कारण कहा है, सम्पूर्ण चराचर जगत् जिनसे उत्पन्न हुआ है, ऐसे सबके आदि कारण परात्पर प्रभु महाविष्णु आप हैं।

भगवन्! आप का जो यह स्वरूप दिखाई दे रहा है वह पृथिवी, जल, तेज, वायु, और आकाश इन पंचभूतों से निर्मित व्यक्त रूप नहीं है, आप तो अव्यक्त हैं, इन भौतिक रूपों से विलक्षण हैं। कुछ लोग अव्यक्त परमाणु को भी कहते हैं, जो व्यक्त न हो-जिसका भाग न हो सके-वह सूक्ष्म से सूक्ष्म अव्यक्त परमाणु है, किन्तु आप परमाणु नहीं हैं, आप तो ब्रह्म हैं, सर्वत्र व्यापक हैं, सबसे बड़े हैं।

कुछ लोग प्रकृति को भी ब्रह्म कहते हैं, क्यों कि संसार के जितने पदार्थ हैं, वे सब महतत्त्व से उत्पन्न हुए हैं। प्रकृति से महत् हुआ है, अतः सब से वृहत् प्रकृति की ही ब्रह्म संज्ञा है, सो हे कृपासागर! आप प्रकृति भी नहीं। प्रकृति तो आप की चेरी है, प्रकृति तो जड़ है, कितनी भी बड़ी और शक्तिशालिनी क्यों न हो किन्तु स्वतः यह कुछ कर नहीं सकती। उसे तो संचालित करने वाला चाहिये और आप स्वयं ज्योति स्वरूप हैं चैतन्यघन हैं, आपको प्रकाशित करने के लिये अन्य किसी प्रकाश की आवश्यकता नहीं, आप तो स्वयं प्रकाश स्वरूप हैं। कुछ लोग चेतन पुरुष को ज्ञान, इच्छा तथा प्रयत्नादि गुणों वाला बताते हैं, उनके मत में इच्छा आदि आत्मा का धर्म है, किन्तु आप ऐसे नहीं हैं, आप तो सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों से रहित हैं, अतः निर्गुण हैं आप में इच्छा प्रयत्नादि संभव नहीं, आपको कोई ज्ञानपरिणामी कहे, तो यह भी संभव नहीं हो सकता क्योंकि आप अपरिणामी हैं,अक्षर हैं, विशुद्ध हैं, निर्विकार हैं। आप अन्य किसी शक्ति द्वारा परिणाम को प्राप्त नहीं होते क्योंकि आप के सम्बन्ध में इतना ही कहा जा सकता है कि आप सत्तामात्र हैं। आप चैतन्यघन आनन्द स्वरूप हैं इसके अतिरिक्त आप के सम्बन्ध में कुछ कहना बनता नहीं।

किसी किसी के मत में सामान्य सत्तामात्र होने पर भी प्रतिपक्षी विशेष के कारण वह स विशेष है। अर्थात् वही अद्वितीय नहीं। किन्तु आप सत्तामात्र होने पर अखिलोत्तम हैं, अद्वितीय हैं, निर्विशेष हैं।

स्वामिन्! कुछ लोगों का कथन है, निविशेष होने पर भी आप इस संसार वृक्ष के बीज हैं, इस जगत् के कारण हैं। कारण से ही कार्य होता है। कार्य बिना इच्छा के होता नहीं।

अतः आप किया सहित होंगे, सो भी बात नहीं आप निरीह हैं। इच्छा रहित हैं, स्पृहा से शून्य हैं, आप को किसी प्रकार की आकांक्षा नहीं।

हे जगदाधार! आप विष्णु हैं सबके पूजनीय तथा वन्दनीय हैं। आप अध्यात्म प्रदीप हैं। दीपक अपने प्रकाश से सबको प्रकाशित कर देता है, किसी को कहने की आवश्यकता नहीं होती है, कि यह दीपक है। मेरा अंतःकरण वास्तव में जड़ है, आप के आविर्भावसे-आप के आलोक मात्र से-उसमें चैतन्यता आ गयी, मैं कुछ पढ़ी लिखी भी नहीं, किन्तु आपके दर्शन मात्र से ही मुझे समस्त ज्ञान प्रस्फुटित हो उठा। इसलिये मैं अपने निजी अनुभव से ही कहती हूँ, आप साक्षात् परात्पर परब्रह्मईश्वर महा विष्णु हैं।

प्रभो! मनुष्यों का एक रात्रि दिन ८ प्रहर का होता है। ऐसे १५ दिन का एक पक्ष और दो पक्ष का एक मास। दो मास की एक ऋतु और ६ ऋतुओं का एक वर्ष होता है। मनुष्यों का एक वर्ष देवताओं के एक दिन के बराबर है। ऐसे ३६० दिनों का देवताओं का एक वर्ष होता है, जिसे दिव्य वर्ष कहते हैं। ऐसे १२०० दिव्य वर्षोंका कलि २४०० का, द्वापर ३६०० वर्षों का त्रेता-युग तथा ४८०० वर्षों का सत्ययुग होता है। अर्थात् १२००० दिव्य वर्षों की एक चौकड़ी होती है। ऐसी ५० चौकड़ी बीतने पर ब्रह्माजी की आधी आयु परार्ध होती है, ऐसे दो परार्ध बीतने पर ब्रह्माजी की आयु पूर्ण हो जाती है। उसी समय महाप्रलय होती है। उस महाप्रलय के समय पृथिवी का गंध गुण रस में लीन हो जाता है, गंधहीन पृथिवी जल में लीन हो जाती है, जल रस तेज में लीन हो जाता है। रसहीन जल अग्नि में लीन हो जाता है। तेज स्पर्श में लीन होता है, तेजहीन अग्नि वायु में

मिल जाती है, वायुका स्पर्श गुण शब्द में समा जाता है स्पर्श हीन वायु आकाश में लीन हो जाती है। जब सभी अपने कारणों मे लीन होते हैं, तो आकाश अपने कारण आदि भूत अहंकार में लीन हो जाता है। अहंकार भी महत्तत्व में जाकर लीन होता है, और महत्तत्व भी प्रकृति में विलीन हो जाता है। उस समय हे भगवन्! केवल एक मात्र आप ही अवशेष रह जाते हैं। सबके शेष बचे हुए आप ही हैं, आप किसी में भी लीन नहीं होते हैं सब आप में ही लीन होते हैं, फिर भी आप निर्लेप बने रहते हैं। ऐसे आप सर्व समर्थ की मैं शरण में प्राप्त हूँ।

प्रभो! आप ही प्रकृति के लय स्थान हैं। प्रकृति आपकी ही प्रेरणा से कार्य करती है। स्वामिन्! यह विश्वकाल के अधीन है। काल पाकर ही प्राणी जन्म लेता है, काल पाकर ही मर जाता है। यह सम्पूर्ण विश्व काल की ही चेष्टासे कार्य कर रहा है। काल के परमाणु पर्यन्त अति सूक्ष्म विभाग हैं, किन्तु इनको साधारण मनुष्य समझ नहीं सकते। जितनी देरमें पलक गिरता है,उतने काल की निमेष संज्ञा है, व्यवहार आरंभ तो निमेष में से ही होता है यही काल का सूक्ष्म व्यवहारिक रूप है। निमेष से लेकर संवत् सर पर्यन्त जितने काल के विभाग हैं। संवत्सर से लेकर युग, चतुर्युग, मन्वन्तर, कल्प, महाकल्प, द्विपरार्ध पर्यन्त जितना भी काल का स्वरूप है, वह आपके बिना कुछ भी नहीं है। काल की जो चेष्टा है, उसकी जो महत्ता है वह सब आपके ही ऊपर निर्भर है आपकी ही लीला है। आप सबके स्वामी हैं,ईश्वर हैं, प्रभु हैं। यह प्राणी सदा भय से शंकित रहता है। आपके श्रीचरणों में आकर प्राणी अभय हो जाता है क्यों कि आपके पाद पद्म अभय के स्थान हैं, निर्भयता उन्हीं में निवास करती। अतः हे शरणागत

वत्सल ! हे काल को नियमन करने वाले दयालो ! मैं आपकी शरण लेती हूँ,आपको बारम्बार प्रणाम करती हूँ।"

हे देव ! यह प्राणी मरण धर्मा है। जन्मता है मरता है, फिर जन्म लेता है फिर मरता है। जब यह जन्म ग्रहण करता है, तभी इसके पीछे एक काला सर्प लग जाता है उस सर्प का नाम मृत्यु है। प्राणी उसके नाम से ही काँप उठता है, उससे साक्षात्कार करना नहीं चाहता। उससे वचने के निमित्त भूलोक भुवर्लोक, इन्द्रलोक, रुद्रलोक; वरुणलोक नैऋतिलोक, कुबेरलोक यमलोक वायुलोक, महर्पिलोक जनलोक, तपलोक और ब्रह्मलोक तथा अन्यान्य असंख्यों लोकों में प्राणी घूमता रहता है, किन्तु कहीं भी त्राण नहीं पाता, कहीं भी अपने को सुरक्षित नहीं समझता। कोई भी अपुनरावर्त लोक नहीं है। ब्रह्मलोकपर्यन्त सभी लोक पुनरावर्त लोकों से लौटकर फिर पृथिवी पर मर्त्यलोक में आना पड़ता है। फिर जन्म मरण के चक्कर में पड़ना पड़ता है।

स्वामिन् ! कभी भाग्यवश, आपकी दयावश, आपकी अहैतु की कृपा जब जीव पर हो जाती है, तो आपके भक्त से-विशुद्ध भागवत से-कभी भेंट हो जाती है, वे आपके शरणापन्न होने की विधि तथा कालक्षेप करने का नियम वताते हैं। आपके चरणतक पहुँचा देते हैं। आपकी चरण शरण पाकर जीव कृतार्थ हो जाता है। उसका समस्त श्रम मिट जाता है, वह कृतकृत्य हो जाता है, उसकी समस्त चिंतायें मिट जाती हैं, तब वह पैर पसार कर दुपट्टा तानकर सुख की नींद सोता है, अर्थात् जन्म मरण के चक्र से सदा के लिये विमुक्त हो जाता है। उसका मृत्यु का भय ही नहीं छूट जाता, किन्तु स्वयं वह विकराल काल सर्प उसे अपने अधिकार से पृथक् समझकर निराश होकर निवृत्त हो जाता है। ऐसे आप समस्त संसार को अभय प्रदान करने वाले हैं। महाबली

काल से भी बचाने वाले हैं। फिर आप मुझे भय रहित क्यों न बनावेंगे। मैं भी प्रभो! अपने चचेरे भाई के भय से भयभीत बनी हुई हूँ! नाथ! आप मुझे भी निर्भय बना दो। मेरे भी अपार भय को दूर भगा दो। मुझे भी अपनी कृपा का प्रसाद चखा दो।

हे भक्तों के भय को भगा देने वाले भगवन्! यद्यपि हम आपके भक्त नहीं हैं, फिर भी आपकी शरण में तो प्राप्त हैं। आप के अतिरिक्त हमारा कोई अन्य सहारा नहीं अवलम्ब नहीं, संबल नहीं। आप तो सर्वसमर्थ हैं। आप कंस को मार सकते हैं, अभी अन्तर्हित हो सकते हैं। अन्यत्र प्रकट हो सकते हैं। किन्तु मेरी प्रार्थना यही है कि आप हम लोगों की रक्षा करें। रक्षा भी किसी अन्य शत्रु से नहीं चचेरे भाई के रूप में जो यह दुष्ट है, जिसके लिये कुछ भी अकर्तव्य नहीं, जो सब पाप कर सकता है, अपनी बहिन को बहनोई को तथा भानजों को मार सकता है। इससे हमें बचाइये।

हे कृपासिन्धो! दूसरी मेरी प्रार्थना यह है कि आप बाह्य इन्द्रियों के विषय नहीं हैं, आपको बहिर्दृष्टि वाले व्यक्ति देख नहीं सकते। आपके दर्शन तो अन्तर्दृष्टि वाले त्यागी तपस्वी सद् गुणों से युक्त व्यक्ति ध्यान में ही करते हैं। आप हम जैसे तुच्छ जीवों के सम्मुख हमारे समान गृहमेधी घरके वधिक जिनकी दृष्टि सदा मांस में ही लगी रहती है। कितना भी सुन्दर सरल गौ बकरी का बच्चा होगा, वधिक की दृष्टि में वह एक मांस का ही लोथड़ा है। वह यही देखेगा, इसमें कितना मांस निकलेगा। उसकी दृष्टि शिशुकी सरलता, सुन्दरता, मनोहरता, मृदुलता आदि पर न जायगी। इसी प्रकार हम गृहस्थी लोग साधु संत तथा भगवन्त भी आ जायँ तो उनसे भी विषय वासनाओं की ही

इच्छा रखते हैं। हम लोग विषयों के कीड़े हैं, अतः हमारे सामने प्रत्यत्त अपना यह अलौकिक रूप प्रकट न करें।

हे मधु कैटभ के मारने वाले मधुसूदन! आपके लिये कंस को मार देना कोई कठिन कार्य नहीं है, जब सृष्टि के आदि के परम बली मधुराक्षस को आप ने मार डाला तो फिर यह कंस तो वस्तु ही क्या है, यह किस खेत की मूली है, आप इसे मार सकते हैं। किन्तु अभी इस समय न मारें। अभी आप मार देंगे तो सभी लोग मुझसे डरने लगेंगे कि यह स्त्री है या कोई अलौकिक वस्तु जिसने ऐसा पुत्र उत्पन्न किया जिसने पैदा होते ही मार धार मचादी। फिर मुझसे कोई बात भी न करेगा, सभी मुझसे शंकित रहेंगे। अतः अभी युद्ध न छेड़ें। अभी चक्र या गदा का प्रयोग न करें। हाँ यह आशीर्वाद मुझे अवश्य दें,कि पापी कंस को यह बात विदित न हो, कि आपने मेरे उदर से जन्म ग्रहण किया है।

आप यह कह सकते हैं कि "जब तू मुझे मधुसूदन मानती है, तो भय का काम ही क्या है,कंस मुझसे कोई बलवान् थोड़ा ही है। यह तो सब सत्य है प्रभो! किन्तु आप माता के हृदय की पीड़ा का विचार करें। मेरे ६ पुत्र इस दुष्ट ने मार डाले। इस कारण मेरी बुद्धि अत्यन्त अधीर हो गयी है, मैं अपने धैर्य को खो बैठी हूँ। मुझे अपनी उतनी चिन्ता नहीं मुझे तो आपके ही लिये भय है। यह खल है, आपका जन्म सुनते ही वह दौड़ा चला आवेगा। आते ही बिना सोचे समझे प्रहार कर देगा। जब आपको इस अलौकिक रूप में देखेगा तब तो वह और भी अधिक कुपित हो जायगा। मैं इस रूप से आपको कहीं छिपा भी नहीं सकती। आपका तेज अंधकार में प्रकाश करता है यह कहीं भी छिप नहीं सकता। अभी सहसा कंस आगया। तो कहाँ तो मैं इस शंख को

वृत्त बने नलकूवर मणिग्रीव धनद पुत्रों का उद्धार किया और उन्होंने जिस प्रकार भगवान् की स्तुति की उस कथा प्रसंग को आप से कहूँगा। आप सब समाहित चित्त से श्रवण करने की कृपा करें।

छप्पय

दृश्य प्रलय में लीन एक तुमई बचि जाओ।
आपु काल के काल मृत्यु तैं मोइ बचाओ॥
शरनागत लखि मृत्यु भगे यह रूप छिपाओ।
आयुध लेउ दुराइ द्विभुज शिशु रूप बनाओ॥
प्रलय काल महँ जीव सब, उदर माहिं जाके बसैं।
सोई आये उदर मम, सुनि, सब नर नारी हँसैं॥

पद

प्रभु तुम सगुन रूप धरि आये।
हौ अव्यक्त ब्रह्म ज्योतिर्मय वेदनि विष्णु बताये ॥१॥
जब अज आयु होइ पूरन तब, कारन सबहिं विलाये।
केवल शेष आपु बचि जावें तातैं शेष कहाये ॥२॥
जीवनि काल नचावत नटवर, जगत् चराचर खाये।
सो तुमरे भय डरि कैं भागत निरभय दास बनाये ॥३॥
अगनित विश्वपेट धरि सोवैं, पेट माहिं मम आये।
प्रभु अब दया दीन पै कीजे, खल दुख बहुत दिखाये ॥४॥

नलकूवर मणिग्रीवकृत दामोदर स्तुति(१)

(८१)

कृष्ण कृष्ण महायोगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः ।
व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः ॥*

(श्री भा० १० स्क० १० अ० २९ श्लो०)

छप्पय

मातु जशोदा दाम उलूखल बाँध्यो हरिउर ।
यमलार्जुन के मध्य गये दामोदर नटवर ॥
नलकूवर मनिग्रीव शाप तजि पायो सुर तन ।
इस्तुति करिबे लगे लगायो प्रभु चरननि मन ॥
कृष्ण कृष्ण ! योगी परम ! विश्वरूप भगवान् हैं ।
करन, प्रान, तन, मन, अधिप, काल, सत्य चितज्ञान हैं ॥

जीव न जाने कब से इस भवाटवी में भ्रमण कर रहा है। कब से इस संसार चक्र में चक्कर लगा रहा है। भाग्यवश ही इससे सुकृत कुकृत्य बन जाता है, जिससे यह कभी उच्च योनि में जाता है, कभी नीच योनि में। किसी ने वरदान दे दिया तो देव-

---

* दामोदर भगवान् की स्तुति करते हुए नलकूबर मणिग्रीव कह रहे हैं—"हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! आप आदि पुरुष हैं, प्रकृति से पर हैं। वेदवादी ब्राह्मणगण इस व्यक्त और अव्यक्त रूप से स्थित समस्त विश्व ब्रह्माण्ड को आपका ही स्वरूप मानते हैं।"

योनि में चला गया, किसी ने शाप दे दिया तो शूकर कूकर अंडज या उद्भिज योनि में चला गया। पुण्य बन गया तो अधः नरकादि लोकों में जाकर यातनायें झेलनी पड़ीं। कभी भाग्यवश-अपनी अहैतुकी कृपा करके साक्षात् भगवान् श्रीनन्दनन्दन का स्पर्श प्राप्त हो गया, ब्रह्म संस्पर्श मिल गया, तो जीव कृतार्थ हो जाता है। ब्रह्म संस्पर्श ही के निमित्त तो सब लालायित हैं। वह होता है कृष्ण की कृपा से कृष्ण कब कृपा करते हैं इसे श्रीकृष्ण ही जानें। जब तक कृपा न हो टकटकी लगाये रहो। प्रतीक्षा करते रहो, कभी तो ढुरेंगे ही।

गोकुल में गोपाल कृष्ण ने माता की मथानी फोड़ दी इससे यशोदा मैया ने श्रीकृष्ण की कमर में रस्सी बाँधकर उसे उलूखल से बाँध दिया। अन्य ग्वाल-वालों के साथ उस उलूखल को खींचते हुए दो अर्जुन वृक्षों के बीच से दामोदर निकले उलूखल उरझ गया, खींचने पर दोनों वृक्ष गिर गये। नारदजी के शाप से वरुण के पुत्र नलकूवर मणिग्रीव वृक्ष बने हुए थे। भगवान् के स्पर्श से दोनों शाप मुक्त होकर देवता बन गये। कृतज्ञता प्रदर्शित करते हुए वे भगवान् की स्तुति करने लगे।

नलकूवर मणिग्रीव भगवान् की स्तुति करते हुए कह रहे हैं—"प्रभो! आपका कृष्ण वर्ण है, सबको अपनी ओर आकर्षित करने वाले हैं। आप कोरे ग्वाल-बाल ही नहीं हैं। महान् योगी हैं। योगी तो अपने अनेक रूप ही बना सकता है, किन्तु आप तो इस चराचर विश्व को बनाते हैं, बिगाड़ते हैं, पालन करते हैं, फिर भी निर्लेप बने रहते हैं। आप आनन्द रससार सनानन्द स्वरूप हैं। इस निखिल ब्रह्माण्ड की रचना, पालन तथा संहार करते हुए भी आप शुद्ध, बुद्ध निरञ्जन, निर्विकार तथा परिपूर्ण बने रहते हैं।

हे देव ! एकमात्र आप ही अनादि हैं, अनादि होते हुए भी पुरुष हैं, चैतन्य हैं, जीव नहीं आप शिव हैं, पुरुष ही नहीं परम पुरुष हैं, आत्मा ही नहीं परमात्मा हैं। ये जो काल आदि जगत् के कारण हैं उन सबके भी आप नियन्ता हैं। यह जो कार्य कारण है, व्यक्त अव्यक्त है, चेतन अचेतन है, दृश्य अदृश्य है, सब आपका ही रूप है। काल से लेकर तृण पर्यन्त संसार की जितनी भी वस्तुएँ हैं, और ये वस्तुएँ जिसके द्वारा प्रकाशित हैं, अभासित हैं, सब आपके स्वरूप हैं, आपका ही निरूपण करती हैं, इस बात को वेद कहते है, वेदों के उत्पन्न करने वाले ब्रह्माजी कहते हैं, तथा वेदविद् विप्रगण कहते हैं। सारांश यह है, कि आपकी सत्ता के बिना किसी का अस्तित्व नहीं और आपको छोड़कर कोई सत्य वस्तु नहीं।

प्रभो ! जिसमें जीव रहता है, जिसे क्षेत्र पुर या शरीर कहते हैं, वह भी आपके बिना कुछ नहीं। जिस प्राण से शरीर सजीव या चैतन्य रहता है, जो क्षुधा पिपासा लगाता है, वह प्राण भी आपका ही स्वरूप है। ज्ञानेन्द्रियाँ जिनसे ज्ञान होता है, कर्मेन्द्रियाँ जिनसे कर्म करता है, ये बाह्यकरण तथा मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार ये अन्तःकरण सब आपके ही रूप हैं, आप ही भिन्न-भिन्न नाम रखकर प्रकट हो गये हैं। जीव भी आप ही हैं और सबके स्वामी अन्तर्यामी तथा सबके नियामक आप ही हैं। सबको चलाने वाले काल भी आप ही हैं। ऐश्वर्य, वीर्य यश, श्री ज्ञान तथा वैराग्य इन षड भगों से पूर्णरीत्या युक्त भगवान् भी आप ही हैं। आप ही सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त होने वाले विष्णु हैं, सब कुछ निरन्तर व्यय करते रहने पर भी आपका कुछ भी व्यय होता नहीं। आपकी सामग्री कभी चुकती नहीं सदा सर्वदा ज्यों-की-त्यों ही बनी रहती है। इसीलिये आपको अव्यय कहा है, आप परि-

पूर्ण है। पूर्ण में से पूर्ण निकाल लिया जाय तो भी पूर्ण शेष रहेगा, कभी अपूर्ण न होगा। आप सबके स्वामी हैं, पति हैं, ईश्वर हैं।

हे प्रभो! आप ही इस जगत् के आदि तत्व महत्तत्व हैं। जैसे बीज से सर्वप्रथम अंकुर उत्पन्न होता है, उसी प्रकार इस संसार की उत्पत्ति में आदि अंकुर महत्तत्व ही है, वह आपसे भिन्न नहीं।

हे जगदाधार! सत्व,रज और तम ये तीनों गुण जब साम्यावस्था में रहते हैं, तब चुपचाप निष्क्रिय बने पड़े रहते हैं उस अवस्था में वे सृष्टि कार्य में असमर्थ होते हैं, जब काल रूप आपकी प्रेरणा से गुणों में क्षोभ होता है, तब तीनों गुण साम्यावस्था की स्थिति का परित्याग करके विषम हो जाते हैं, उनमें न्यूनाधिक्य हो जाता है, वही प्रकृति का स्थूल रूप है, तभी महत्तत्व की उत्पत्ति होती है, जब तक गुण साम्यावस्था में निश्चेष्ट अक्षोभ्य रहते हैं वही सूक्ष्म प्रकृति का अविकृत स्वरूप है। सो, प्रभो! आप स्थूल प्रकृति भी हैं, और सूक्ष्म प्रकृति भी हैं। अर्थात् इस जगत् को योनि आप हैं, इस बीज के क्षेत्र भी आप हैं, और इस क्षेत्र में बोने वाला बीज भी आप ही हैं।

इस जड़ प्रकृति में बीज बोने वाले पुरुष भी आप ही हैं और आपही पुरुषाध्यक्ष तथा पुरुषोत्तम हैं। आपसे बड़ा कोई नहीं आपकी बराबरी करने वाला दूसरा अन्य कोई है ही नहीं। आपही सब क्षेत्रों के विकारों को जानने वाले हैं, किस अन्तःकरण में किस समय में कैसा विकार उत्पन्न होता है, इसके एकमात्र ज्ञाता आपही हैं।

हे देव! यह जो दृश्य प्रपञ्च है, यह सब गुणों का प्रसार है। गुणों में क्षोभ होने से ही पंचभूत, अन्तःकरण, इन्द्रियाँ, तथा पंचविषय उत्पन्न होते हैं, अन्तःकरण और इन्द्रियाँ जो भी

प्रत्यक्ष अनुभव करेंगी, जिस वस्तु को ग्रहण करेंगी, वे सब प्राकृत ही होंगे। अर्थात् गुणों का विकार मात्र होंगे। इन प्रत्यक्ष करने वाले इन्द्रियादि साधनों से चाहें कि आपका प्रत्यक्ष अनुभव कर सकें, तो ऐसा होना असंभव है, क्योंकि गुणों से उत्पन्न वस्तु अपनी उत्पत्ति के पश्चात् की वस्तुओं का ही प्रत्यक्ष करने में समर्थ है। पुत्र पिता के विवाह का प्रत्यक्ष कैसे कर सकता है। आप तो जीवों की उत्पत्ति के पहिले से ही विद्यमान हैं। ये प्राणी तो स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण देहों से आवृत हैं। बिना देह के जीव का अस्तित्व नहीं और देह सब आपसे पीछे उत्पन्न हुए हैं। अतः देहाभिमानी कोई भी इन बाह्य इन्द्रियों द्वारा आपका प्रत्यक्ष अनुभव नहीं कर सकता।

प्रभो! आप वास करते हैं, त्रिभुवन में कोई भी अणु परमाणु ऐसा नहीं है जहाँ आपका निवास न हो। सर्वत्र वास करने से तथा दिव्य गुणों के आलय होने से आप वासुदेव कहे जाते हैं। आप षडैश्वर्य सम्पन्न हैं अतः भगवान् हैं। आप चराचर जगत् के बनाने वाले विधाता हैं,आपही सबको प्रकट करते हैं और स्वयं ही सबको शिक्षा देते हैं, आप अपने विशुद्ध सत्व से प्रादुर्भूत होकर प्राणियों को प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं, नहीं आप अव्यक्त अचिन्त्य को अपने साधनों से स्वतः के पुरुषार्थ से कौन जान सकता है?

यद्यपि आप प्रत्यक्ष हैं, फिर भी बहुत से लोग आपको जान नहीं पाते। आपने गुणों का जो घूँघट मार रखा है, उससे आपके मुखचन्द्र को सभी निहार नहीं सकते। ये गुण भी कहीं अन्यत्र से नहीं आ गये हैं, इन गुणों के जनक भी आप ही हैं, आपने ही इन सबको उत्पन्न किया है और ये गुण ही आपके स्वरूपको आच्छादित कर लेते हैं। जैसे मेघ सूर्य से ही उत्पन्न होते हैं

और वे ही सूर्य को ढाँप लेते हैं, इस समय आपने रस्सीरूप गुणों से अपने को बाँध रखा है, कैसे भोले भाले, उलूखल में बँधे हुए बद्ध से प्रतीत हो रहे हैं, किन्तु प्रभो! जानने वाले इस प्रच्छन्नावस्था में भी आपके यथार्थ स्वरूप को समझ लेते हैं।

स्वामिन्! आप इस ब्रज मंडल में नंदयशोदा के प्रांगण में, कमर में रस्सी बाँधकर ऊखल में बँधे हुये इतने ही प्रान्त में आबद्ध नहीं हैं आप तो बृहद् हैं, सर्वव्यापक हैं, परब्रह्म है, सच्चिदानंदघन वेदान्तवेद्य औपनिषद् तत्व हैं।

हे विरुद्ध धर्माश्रयी भगवन्! आप अनादि अव्यक्त अच्युत अन्तर्यामी तथा अज भी हैं फिर भी आप अपने आश्रितोंपर कृपा करके देव, तिर्यक, पशु, पक्षी तथा मानवों में उत्पन्न होते हैं। आप अपने स्वरूप से उतर आते हैं–अवतार धारण करते हैं–गूढ़रूप से तत् तत् योनियों में अपने को छिपानेसे लगते हैं,फिर भी आप छिप नहीं सकते। अग्नि को कितने भी वस्त्रोंमें लपेट कर रख दो अंत में वह प्रकट हो ही जाती है, इसी प्रकार आप जिस योनिमें उत्पन्न होते हैं, वहीं भक्तों द्वारा पहिचान लिये जाते हैं, कि उन योनियों में आप ऐसे अलौकिक कार्य करते हैं, उन योनियों के साधारण जीवों द्वारा ऐसे कार्य असंभव हैं। जैसे हंसावतार में आप साधारण हंस बन गये। जगत् के विधाता भगवान् ब्रह्माजी भी पहिले आप को न जान सके, किन्तु जब आपने दिव्य ज्ञान उस हंस शरीर से ही दिया, तो वे झट आप को पहिचान गये। इसी प्रकार जब मछली बनकर महाराज प्रियव्रत के सम्मुख आप प्रकट हुए, तो पहिले तो उन्होंने आप को साधारण मछली ही समझा, किन्तु जब आप बढ़ते ही गये बढ़ते ही गये सैकड़ों योजन लम्बे चौड़े हो गये, तो वे समझ गये आप भगवान् हैं। इसी प्रकार जब बराह बन कर आप पर्वत के समान हो गये और

पाताल में गयी पृथिवी को दाढ़ पर रखकर उठालाये, तब सबने समझा आप तो साक्षात् विष्णु हैं। इस प्रकार आप जिस योनि में भी अवतार लेते हैं, अपने अद्भुत, अलौकिक, अनुपम तथा असाधारण कार्यों के द्वारा प्रसिद्ध हो जाते हैं, जब अवतार अवस्था में ही आप नहीं छिपते, तो अब तो आप अवतारी हैं, स्वयं साक्षात् भगवान् हैं, फिर इस उदर में बँधी दाम के द्वारा बालक होने पर भी आप कैसे छिप सकते हैं। आप कभी अपनी कलाओं से प्रकट होते हैं, कभी अंशों से। आप ही प्राणियों की सभी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं। आप अब इन व्रजवासियों पर तथा समस्त चराचर जीवों पर कृपा करके, समस्त लोकों के रक्षणार्थ तथा सबकी उन्नति करने के निमित्त अबके अपने समस्त ऐश्वर्य से सम्पूर्ण शोभा से, समस्त पराक्रम से, सम्पूर्ण ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य से सम्पूर्ण कलाओं के सहित-असंख्य अवतारों के जनक- अवतारी रूप में-अवतीर्ण हुए हैं। ऐसे आप परिपूर्णतम प्रभु के पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

सूत जी कहते हैं—मुनियो! नलकूबर मणिग्रीव दोनों धनद पुत्रों ने इस प्रकार भगवान् की बड़ी ही मार्मिक वाणी में स्तुति की। वे और भी स्तुति करेंगे उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।

छप्पय

कौं करम जिनि जीव न उनतैं जाने जाओ।
हो तुम सबके जनक करन मनतैं न लखाओ॥
बासुदेव भगवान् ब्रह्म विधि सब बहु स्वामी।
गुन माया तैं छिपे लखैं चरननि अनुगामी॥
कच्छ मच्छ अवतार धरि, करो अलौकिक करम तुम।
अवतारी बनि प्रकट प्रभु, भये चरन की शरन हम॥

पद

जगत हित हेतु धरी तन नश्वर ।
अधरम बढ़े धरम थापन हित, करी प्रकट तनु सुंदर ॥१॥
कबहूँ पशु पन्छी बनि विहरो, कबहूँ नभचर जलचर ।
माँगी भीख कबहुँ रन जूझो, कबहुँ प्रकटो हरिनर ॥२॥
लौकिक रूप बनाइ तिनहिँ में मिलो एक सो वपुधर ।
किन्तु अलौकिक काज करो जब, तब समुझें नर प्रभुवर ॥३॥
सरल कामाना पूरन करिये, शिशु अवतारी मनहर ।
रूप चतुरभुज धरि के प्रकटे करुनासागर मम घर ॥४॥
बार बार बन्दौ बनवारी, तब पद पदुम निरंतर ।
करो कृपा करुनेश कृपालो ! कलित कमलवरकरधर ॥५॥

नलकूवर मणि ग्रीवकृत दामोदर स्तुति(२)

(८२)

नमः परमकल्याण नमः परममङ्गल ।
वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः ।।❀
(श्रीभा० १० स्क० १० अ० ३६ श्लो०)

छप्पय

प्रभो ! परम कल्यान ! परम मङ्गल ! यदुकुलपति !
वासुदेव ! अति शान्त ! सुखद ! हम दीननि की गति !
करौ कृपालो कृपा शीश पद पदुमनि नावैं ।
जानि दास के दास देउ अनुमति अब जावैं ।।
कथा करन वानी गुननि, कर सेवा मन चरन महँ ।
सिर सब जग जीवनि नमै, नयन लगै प्रभु दरस महँ ।।

मानव शरीर की सार्थकता भगवान् की भक्ति में ही है, जीव अपने समस्त अंग प्रत्यङ्गों का उपयोग एक मात्र भगवान् वासुदेव की सेवा पूजा श्राद्ध भक्ति तथा उपासन में ही लगा दे तो उसका ही मानव जीवन सार्थक है हम लोग ऐसे क्षुद्र माया के जाल में

❀ भगवान् की स्तुति करते हुए नलकूवर मणिग्रीव कह रहे हैं—हे परम कल्याण स्वरूप प्रभो ! आप को नमस्कार है, हे परम मङ्गल स्वरूप आप को नमस्कार है, हे शान्त स्वरूप वासुदेव ! आपको नमस्कार है। हे यदुओं के पति ! आपको बारम्बार नमस्कार है।

फँस गये हैं, जो यलि देवताओं के लिये तैयार की गयी है उसे सूकर कूकर कागों के लिये खिला देते हैं, यह मस्तक इसलिये है, कि चराचर जगत् को भगवान् का ही स्वरूप समझकर इसे उनके सम्मुख नवाता रहे। इसी प्रकार समस्त अङ्गों का विनियोग वृन्दावन विहारी के ही निमित्त करता रहे तभी मानव जन्मका साफल्य है। वाणी से एक मात्र भगवान् की ही स्तुति प्रार्थना करता रहे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् की स्तुति करते हुए कुबेर पुत्र नलकूबर मणिग्रीव आगे कह रहे हैं—"प्रभो! आप परम कल्याण स्वरूप हैं। इस लोक तथा परलोक दोनों ही लोकों में कल्याण करते हैं इसलिये आप परम कल्याणमय हैं। कल्याण का आदि कारण शरीर है, अतः हम सम्पूर्ण शरीर से आपको साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं। आप कल्याण प्रदान तो करते ही हैं मङ्गलदाता भी आप ही हैं। मङ्गल तो लोक में भी विवाह, पुत्र जन्म, धन प्राप्ति आदि कार्य कहे जाते हैं, किन्तु आप तो परम मङ्गल स्वरूप हैं। शरीरोपभोग के लिये परम कल्याण प्रादुर्भूत होता है, इसीलिये आदि में कायिक नमस्कार है। मध्य में वाचिक नमस्कार इसी से मङ्गल होता है। मङ्गल ही नहीं परम मङ्गल स्वरूप आपही हैं। प्रभो! आप सर्वत्र वास करते हैं,अन्तर्यामी रूप से सभी स्थानों में रहते हैं,परम कल्याण और परम मङ्गल के पश्चात् परम शान्ति प्राप्त होती है, शान्ति मन का विषय है अतः अन्त में हम मनसे आप को नमस्कार करते हैं। अतः आदि मध्य और अन्त में काया से वाचा से तथा मन से आप को नमन करते हैं। स्वामिन आप समस्त यादवों के, व्रज के समस्त गोपों के क्या चराचर विश्व के पति हैं अतः आपको बारम्बार नमस्कार है।

हे भूमन्! हे महान् से भी महान्! हे परम ऐश्वर्य सम्पन्न

स्वामिन् ! हे निरपेक्ष ! हे परिपूर्ण प्रभो ! अब हम जाना चाहते हैं, आप हमारे लिये कोई आज्ञा प्रदान कीजिये कोई शिक्षा दीजिये। हम हैं तो अत्यंत दीन किन्तु आप दीनों के बन्धु हैं, हमने अपराध तो अक्षम्य किया है, किन्तु आप तो शरणागत वत्सल हैं, हमारी प्रार्थना यही है, कि आप हमें अपने दासों का दास बनालें। हमारे पिता जी भगवान् रुद्र के मित्र हैं, आपके अनुचर हैं आप हमें उनके किंकर के ही नाते से अपनालें। महर्षि नारद भी आप के अनन्य एक निष्ठ अनुचर हैं, उनका ही सेवक हमें समझें यद्यपि हमने सेवक के सदृश कोई कार्य तो किया नहीं, किन्तु फिर भी उन्होंने किंकर अबोध अज्ञ समझकर हमपर दया ही की, आप उसी नाते से हम पर दया की दृष्टि करें। ये बाल गोपाल जो आप की क्रीड़ा में सहयोग दे रहे हैं, जो उलूखल को शकट बनाकर और आप को वृषभ बनाकर तिकतिक करके हाँक रहे हैं, जिनकी कृपा से ही आप यमलार्जुन के मध्य से निकले और हमारा उद्धार किया उन्हीं गोपों का हमें किंकर समझें। आपके जो भक्त हैं अनुचर हैं, वे अपराधियों पर भी अनुग्रह ही करते हैं, उनका क्रोध भी वरदान ही होता है, उनका शाप भी प्रसाद है, कैसे भी उनका दर्शन हो जाय वह कल्याणप्रद ही है, अमोघ है। देखिये, भगवान् नारद जी का हमने अपमान किया उनकी अवहेलना की तिस पर भी उन्होंने अनुग्रह ही की वे शाप न देते तो आपके देव दुर्लभ दर्शन होते ही कैसे ?

हे भगवन् ! अब आज से हम आपके शरणागत हो जायँ, प्रपन्न बन जायँ, अपने लिये हम कुछ भी न करें। जैसे सती साध्वी स्त्री अपने पति को आत्मसमर्पण करने के पश्चात् न तो अपने ही करम की रह जाती है न किसी दूसरे के ही उपयोग की रह जाती है। उसके समस्त कार्य, सम्पूर्ण चेष्टायें, निखिल

कर्म, सब पति परमेश्वर के ही निमित्त होते हैं। वाणी,कर्ण, चित्त मस्तक और चक्षु ये ६ अंग सदा सर्वदा आप के ही कार्यों में विनियोग हुआ करें।

हमारी वाणी आप के ही सम्बन्ध मे बोले आप के गुण तथा नामों को छोड़कर अन्य कुछ भी उच्चारण न करे। जैसे किसी कन्या का वागदान हो जाने पर वह फिर न किसी दूसरे की ओर जाती है न किसी दूसरे का चिन्तन ही करती है, सर्वात्मभाव से उसीको भजती है, जिसके साथ उसकी सगायी हो गयी है, जिसके लिये वागदान दे दिया गया है। इसी प्रकार हमारी वाणी आप के अतिरिक्त किसी अन्य अनित्य वस्तुओं के काम में न आवे। आप के गुणों का ही गान करती रहे।

हे कर्णधार! कानों का कुछ ऐसा स्वभाव है कि वे जहाँ कहीं संसारी निंदा स्तुति की बात होती है, वहाँ ये स्वतः ही उधर को झुक जाते हैं। इन्हें परचर्चा सुनने में बड़ा रस आता है, किन्तु जैसे बालकों की क्रीड़ा के लिये एक खिलौना बिकता है, उसमें सीता जी के सम्मुख जब श्री राघवेन्द्र की मूर्ति आ जाती है, तब तो वे प्रसन्नता के साथ हाथ जोड़े उत्सुकता के सहित खड़ी रहती हैं, किन्तु जहाँ रावण की मूर्ति उनके सम्मुख आयी, तुरंत वे मुँह फेरकर खड़ी हो जाती हैं,इसी प्रकार प्रभो! हमारे कान बन जायँ जब आप की कथा श्रवण का सुयोग हो, तब तो हमारे ये श्रवण उत्सुकता पूर्वक अतृप्त भाव से उसे श्रवण करते रहें, जहाँ विषय वार्ता छिड़े वहीं मुख मोड़लें, बहरे बन जावें। कर्ण की सार्थकता भागवती कथा के श्रवण में ही है, हमारे श्रवण सार्थक बन जायँ।

हे योगिन! ये हाथ व्यर्थ के कामों में लगे रहते हैं, हाथों की उपयोगिता तो इसी में है कि वे आपकी अष्टयाम की सेवा की समस्त सामग्रियों को संचित करें। अरुणोदय से शयन समय तक

आप को पुनीत परिचर्या में ही इनका विनियोग हो। शारिरिक शुद्धि के लिये भी काम करें, तो इसी उद्देश्य से कि यह शरीर आप की सेवा के निमित्त शुचि-पवित्र बन जाय। आप की सेवा के अतिरिक्त जो भी कर्म हैं वे सब लोकबन्धन कर्म हैं, हमारे हाथों द्वारा वे बन्धन को बढ़ाने वाले कर्म कदापि नहीं हों। मंदिर मार्जन, पार्षदों का स्वच्छता, पुष्प, तुलसी चयन, पुष्प हार बनाना, नैवेद्य तैयार करना। आप की सेवा के निमित्त अन्न, जल, फल, फूल, मूल, ओषधि, ईंधन तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ जुटाना। आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नानीय, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गंध, पुष्प, तुलसी, विल्वपत्र धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल पुंगीफल, दक्षिणा, नीराजन, प्रदक्षिणा, स्तुति, नमस्कार तथा क्षमा याचना आदि कर्मों द्वारा तथा सर्वात्मभाव से समर्पण के जितने कृत्य हैं उन्हें ही हमारे हाथ निरन्तर करते रहें।

हे मन वाणी से परे प्रभो ! हमारा यह अति चंचल मन,इधर उधर की दौड़ लगाना छोड़ दे। आप के अरुण वरण के पादारविन्दों को खूँटा बनाकर उन्हीं में सदा के लिये बँधा रहे। जैसे मीन सदा पानी में ही रहना चाहती है वैसे ही हमारा मन सदा आप के पाद पद्मों में रमा रहे। उन्हीं का निरन्तर मनन करता रहे। चैतन्यता के साथ उन्हीं का चिन्तन करता रहे।

हे स्वामिन् ! हमारा यह सिर बड़ा उद्धत तथा अनवनत है, यह नवल ही नहीं चाहता, सदा ऊँचा ही उठा रहना चाहता है। प्रभो ! यह सम्यक् प्रकार से नमित हो जाय। नित्य निरन्तर प्रणाम ही करता रहे। चराचर विश्वको आपका ही रूप समझकर नत होता रहे। हे जगन्निवास ! यह जगत् आपका देह है, घर है। देह देही का ही रूप मा होता है,देही देह में सर्वत्र रमा रहता है। इसलिये इस जगत् को आप का निवास स्थान समझकर हम जड़

चेतन, चर, अचर, स्थावर, जंगम, स्थूल, सूक्ष्म, चित् अचित सभी को श्रद्धा सहित सिर झुकाते रहें जिसे भी देखें उसी के सम्मुख हमारा यह सिर नत हो जाय। व्रज मंडल ही आपका निवास स्थान है, व्रजमंडल को आपका ही स्वरूप समझकर व्रज के लता तृण गिरि गह्वर सभी के आगे हम नत मस्तक हो जायँ।

प्रभो! यह चक्षु इन्द्रिय सदा चमकीली भड़कीली वस्तुओं को ही देखना चाहती है, नेत्रों का फल तो साक्षात् आपकी भुवन मोहिनी मनोहर मूर्ति को देखते रहने में ही है, किन्तु हमारा इतना सौभाग्य कहाँ, इतना पुण्य तो इन व्रजवासियों के ही भाग्य में बदा है, हम गृहमेधियों-का हिंसकों-का इतना पुण्य कहाँ, किन्तु न सही आपका यह मुरलीधारी साक्षात् दामोदर स्वरूप। आप के जो दो स्वरूप हैं चल रूप में साधु संत, भक्त, वैष्णव, त्यागी, विरागी महात्मा हैं, तथा अचल रूप में आप की प्रतिमादि अर्चा विग्रह हैं उनके दर्शनों में ही हमारी दृष्टि का प्रयोग हो। हमारी दृष्टि आप के स्वरूपों के ही दर्शनों को सदा लालायित बनी रहे।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार धनदकुवेर के पुत्र नलकूवर मणिग्रीव दोनों ने भगवान् की स्तुति की। उनकी प्रदक्षिणा की तथा भगवान् से अनुज्ञा तथा आशीर्वाद प्राप्त करके वे शाप मुक्त होकर अपने लोक को चले गये। यह मैंने नलकूवर मणि ग्रीव द्वारा की हुई दामोदर भगवान् की स्तुति आपसे कही। अब जैसे ब्रह्माजी ने पशुपाल व्रजेन्द्र नन्दन भगवान् की स्तुति की उस कथा प्रसंग को मैं आपसे कहूँगा। आशा है आप इस परम दिव्यातिदिव्य स्तुति को सावधान होकर श्रवण करेंगे।

छप्पय

जड़ चेतन चर अचर जगत सब थावर जंगम ।
व्यापि रहे सब माहिं थूल तैं थूल सूक्ष्मतम ॥
माथो हमरो नवै सबनि में तुमकूँ जानैं ।
साधु संत तव मूर्ति देह तुमरी हम मानें ॥
नलकूवर मणिग्रीव यों, स्तुति करि प्रनमत भये ।
लै आशिष अनुमति तुरत, धनद लोक दोऊ गये ॥

पद

देहिँ वर वरदाता विज्ञानी ।
वासुदेव मंगलमय यदुपति सब सद्‌गुन की खानी ॥१॥
तव गुन नाम प्रेम तैं निशिदिन गावै हमारी वानी ।
कान सुनें गुन संतनि मुख तैं प्रभु तव कलित कहानी ॥२॥
मंदिर मार्जन माल सुमन फल करि परिचरिया पानी ।
चरन कमल चिंतन में चंचल रमै मोर मन मानी ॥३॥
जग हरि समुझि नवै सिर सब कूँ संतनि भगवत् जानी ।
निरखैं नयन साधु प्रतिमा प्रभु, प्रनमों सारँग पानी ॥४॥

नलकूवर मणिग्रीवकृत-स्तुति

कृष्ण कृष्ण महायोगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः ।
व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः ॥१॥
त्वमेकः सर्वभूतानां देहास्वात्मेन्द्रियेश्वरः ।
त्वमेव कालो भगवान् विष्णुरव्यय ईश्वरः ॥२॥
त्वं महान् प्रकृतिः सूक्ष्मा रजःसत्त्वतमोमयी ।
त्वमेव पुरुषोऽध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित् ॥३॥
गृह्यमाणैस्त्वमग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर्गुणैः ।
कोन्विहार्हति विज्ञातुं प्राक् सिद्धं गुणसंवृतः ॥४॥
तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ।
आत्मद्योतगुणैश्छन्नमहिम्ने ब्रह्मणे नमः ॥५॥
यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरेष्वशरीरिणः ।
तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसङ्गतैः ॥६॥
स भवान् सर्वलोकस्य भवाय विभवाय च ।
अवतीर्णोऽशभागेन साम्प्रतं पतिराशिषाम् ॥७॥
नमः परमकल्याण नमः परममङ्गल ।

वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः ॥८॥
अनुजानीहि मां भूमंस्तवानुचरकिङ्करी।
दर्शनं नौ भगवत ऋषेरासीदनुग्रहात् ॥९॥
वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां,
हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे,
दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥१०॥

*ब्रह्माजी द्वारा पशुपाल नंदनन्दन की स्तुति (१)

(८३)

नौमीड्यतेऽभ्रवपुपे तडिदम्बराय,
गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ।
वन्यस्रजे कवलवेत्र विषाणवेणु-
लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय ॥
(श्री भा० १० स्क० १४ अ० १ श्लो०)

छप्पय

ग्वाल बाल सँग खात छीनि जूठो पशुपालक ।
ब्रह्मा मोहित भये चुराये बछरा बालक ॥
ज्यों के त्यों सब रूप धरे हरि अज घबराये ।
महिमा अमित निहारि विनय युत वचन सुनाये ॥
श्याम बरन जलधर सजल, पीताम्बर चपला सरिस ।
मुख मंडल कुण्डल मुकुट, द्युति तैं भासित दशहु दिस ॥

उन महामहिम्न भूमा पुरुष सर्वान्तर्यामी सर्व नियन्ता सच्चिदानंद प्रभु की महिमा को भुलाकर यह जीव ऊँच नीच

---

*सूतजी कहते हैं—मुनियो ! गोपाल कृष्ण की स्तुति करते हुए ब्रह्मा जी कहते हैं—हे ईश ! आपका वपु सजल मेघ के सदृश श्याम वर्णका है । जिस पर चपला के सदृश चमकीला पीताम्बर शोभित हो रहा है, आपका

योनियों में निरन्तर भटकता रहता है, कभी तो अत्यंत छोटा कीट पतंग बन जाता है, कभी महान् से भी महान् इन्द्र, वरुण, कुबेर, प्रजापति बन जाता है। उन पुण्यश्लोक प्रभु की पूर्ण महिमा को ब्रह्माजी भी नहीं जान सकते, फिर अन्य साधारण जीवों की तो बात ही क्या है, भगवान् तो जिसे जनाना चाहते हैं, जिसको वे अपना करके वरण कर लेते हैं, वही उनकी कृपा से उनकी अचिन्त्य महिमा को जान सकता है। अन्य सभी अँधेरे में ही भटकते रहते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अघासुर को मारकर भगवान् ग्वाल बालों के सहित भोजन कर रहे थे। ग्वाल बालों के हाथों से छीन-छीन कर खा रहे थे। आकाश में विराजमान ब्रह्माजी को मोह हो गया यह कैसा परब्रह्म? यह तो प्राकृत साधारण गोप ग्वालों की भाँति आचरण कर रहा है। लाओ इसकी परीक्षा लें। यह सोच कर वे ग्वाल बालों और बछड़ों को चुरा ले गये। भगवान् सब समझ गये और स्वयं ही अनेक रूप रखकर ज्यों के त्यों ग्वाल बाल बछड़े बन गये। जब वर्ष दिन हो गया, तो ब्रह्माजी ने आकर देखा, श्रीकृष्ण तो वैसे ही क्रीड़ा कर रहे हैं, वैसे ही बछड़े बालक विद्यमान हैं। सोचा—श्रीकृष्ण अपनी योगमाया से ले आये होंगे। जहाँ उन्होंने सबको बंद कर दिया

मनोहर मुख मंडल घुँघची के आभूषणों से, कानों के कनकमय कमनीय कुंडलों से मोरपंख के मनहर मुकुट से उद्‌भासित हो रहा है। कंठ में वनमाला शोभित हो रही है अत्यन्त सुकुमार चरणारविन्दों से जो अवनि पर घूम रहे हैं, हाथ में दही भात का कौर लकुट, सींग और मुरली सुशोभित है, ऐसे आप पशुपाल नंदनंदन श्यामसुन्दर के पाद पद्मों में मेरा पुनः पुनः प्रणाम है।

था, वहाँ भी वे ज्यों के त्यों विद्यमान हैं। अब तो ब्रह्माजी का मोह दूर हुआ और उन्होंने वन में आकर वृन्दावन विहारी के पाद पद्मों में साष्टाङ्ग दण्डवत की और बड़े ही मार्मिक शब्दों में स्तुति करने लगे।

ब्रजेन्द्रनन्दन गोपाल श्री कृष्ण की स्तुति करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं—"हे प्रभो! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। पूरे ब्रह्माण्ड के स्वामी होकर तुम नमस्कार क्यों करते हो जी! क्योंकि स्वामिन्! एक मात्र आप ही स्तुति करने के योग्य हैं। ज्ञानी विज्ञानी पुरुष आपको निर्विशेष, निर्गुण तथा निराकार बताते हैं, किन्तु मेरे सम्मुख तो आप सगुण साकार रूप में अवस्थित हैं, आप की अचिन्त्य महिमा को भी मैंने जान लिया है, अतः जिस मन मोहन रूप से आप ने मुझे दर्शन देकर कृतार्थ किया है, मैं उसी रूप को नमस्कार करता हूँ, उसी छवि के सम्मुख प्रणत होता हूँ।

लोग कहते हैं आप अवर्ण हैं। आप का कोई वर्ण नहीं, किन्तु मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि आप के श्री अङ्ग का वर्ण नवीन जल भरे मेघ के समान है।

कुछ लोग कहते हैं आप को वसन की आवश्यकता नहीं। दशों दिशायें ही आप का अम्बर है, किन्तु मैं प्रत्यक्ष आपको पीताम्बर पहिन निहार रहा हूँ, जिसकी आभा बिजली के समान है, जो वायु में फहरा रहा है और जिसकी कान्ति से दशों दिशाय आलोकित हो रही हैं। जो लोग आप को निर्गुण निराकार मानते हैं, वे कहते हैं आप के कंठ हृदय कर्ण आदि अंग हैं ही नहीं फिर उनमें आभूषण धारण करने का तो प्रश्न उठता ही नहीं। जो आपको सगुण साकार लक्ष्मीपति वैकुण्ठ विहारी करके मानते हैं, उनका कहना है, कि आप इतने दिव्य अलौकिक

कण्ठहार तथा बहुमूल्य मणिमालाओं से सुसज्जित रहते हैं, कि ब्रह्माण्ड में उसकी उपमा नहीं, किन्तु मैं देख रहा हूँ, आपके कमनीय कंठ में ब्रज के बनों को जंगली घुँघचियों की रंग बिरङ्गी मालायें पड़ी हुई हैं। उन्हीं से आपकी अद्भुत अवर्णनीय शोभा हो रही है। आपके युगल कर्ण कर्णिका की कमनीय कलियों से मंडित हैं उनमें के कुण्डल दम दम करके दमक रहे हैं चपला के समान चमक रहे हैं। माथे पर मनोहर मयूर मुकुट मटक रहा है, इन सभी के संयोग से आप के मुख कमल की श्री परम दर्शनीय बन रही है। गुञ्जों की मालाओं के बगल में आपादलम्बिनी, मन्दार, पारिजात कुन्द आम्र किसलय तथा कर्णिकार के कुसुमों से बनी बनमाला घन में विद्युत के समान चमक रही है, हिल रही है और भक्तों के मन को अपनी ओर आकर्षित कर रही है।

प्रभो! आपकी इस वनचारी बालगोपाल रूपी झाँकी करके मैं कृतार्थ हो गया। आप रङ्ग बिरङ्गा अँगरखा पहिने हुए हैं, जिसके सभी रंग चमक रहे हैं, उसक ऊपर उदर और कटि के समीप पीताम्बर का पटुका कसकर बँधा है, मानों आप ने उसे दृढ़ता से अपना लिया है, आत्मसात कर लिया है। उस पटुका में दाहिनी ओर मुरली खुँसी हुई है। बगल में बछड़ों को घेरने की लकुटी लगी है। एक हाथ में नरसिंहा है, बीच बीच में आवश्यकता पड़ने पर बाईं ओर उसे आप पटुका में भी खुरस लेते हैं। दाँया हस्त कमल दही भात के कौर से भरा है। उँगलियों में टेंटी, करौंदा, हरी मिरच, नीबू के अचार खुरसे हुए हैं। आप अपने बछड़ों की खोज में अत्यंत मृदुल कमल की पँखुड़ियों से भी सुकुमार नंगे ही चरणों से कुश कंटक कंकड़ियों से भरी कठिन अवनि पर-विचरण कर रहे हैं।

कुछ लोग कहते हैं आप वसुदेवजी के अंग से उत्पन्न होने से वासुदेव हैं, आप का जन्म मथुरा के कारावास में देवकी मैया के उदर से हुआ है, किन्तु यह बात भ्रम मूलक है जो लोग इस रहस्य को जानते नहीं वे ही ऐसी भ्रम मूलक बात कहते हैं, आपका जन्म मथुरा में नहीं गोकुल में ही हुआ। यमुना के उस पार न होकर इस पार गंगा यमुना के मध्य में हुआ। आप वसुदेवात्मज न होकर पशुपांगज हैं। आप वसुदेवनंदन न होकर नन्दनंदन हैं। आप का जन्म परम भाग्यवती जगन्माता यशोदा मैया के ही गर्भ से हुआ है। आप परम सुकुमार व्रजेन्द्रकुमार हैं ऐसे आप वृन्दावन विहारी के पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

प्रभो! आप का रूप दुर्ज्ञेय है, फिर आप की अचिन्त्य महिमा तो अत्यंत ही दुर्ज्ञेय है। सब लोग समझते हैं आप कर्मों के अधीन होकर शरीर धारण करते हैं। किन्तु यह उनकी भूल है। कर्म बन्धन तो ज्ञानी पुरुष को भी स्पर्श नहीं कर सकते सो आप तो साक्षात् ज्ञानस्वरूप ही हैं। फिर आप ने यह शरीर धारण किया ही क्यों? केवल मेरे ऊपर कृपा करके मेरे ही उद्धार के निमित्त आप का यह अवतार हुआ है। आप केवल अपने अनुगत भक्तों के ही निमित्त साकार स्वरूप धारण करते है। यद्यपि मैं भक्त नहीं अभक्त हूँ, निर्मोही नहीं निमोही हूँ, किन्तु हूँ आपका कृपा पात्र इसीलिये एकमात्र मुझपर कृपा करने के निमित्त आपने यह त्रिभुवन सुन्दर स्वरूप रखा है। यह अवतार मेरे ही कल्याण के निमित्त आपने धारण किया है। मुझे जिस शरीर के दर्शन हो रहे हैं, वह पृथिवी, जल, तेज वायु और आकाशादि भूतों से विनिर्मित नहीं। न यह शरीर सत्व, रज तथा तमोगुणी ही है, यह तो सत्व से भी परे एक विशुद्ध

सत्व है, उसी विशुद्ध सत्व से अपनी इच्छानुसार आपने यह विश्वविमोहन वपु बना लिया है। यह रूप आपने व्रज में बनाया है इस लिये ग्वाल बाल रूप है। वह आचार विचार से परे है। मार्ग में चलते चलते दही भात खाते जाते हैं, बछड़ों और बालों का नाम ले ले कर चिल्लाते जाते हैं। खाते खाते सींग को छूते जाते हैं। बाल सुलभ सभी प्राकृत भाव दरसाते जाते हैं। ऐसे रूप की महिमा को कोई मन से भी चाहे कि मैं इसका पार पा जाऊँ तो असम्भव है। औरों की बात तो पृथक् रही, मुझ चतुर्मुख ब्रह्मा को भी जिसे सभी ज्ञानमय कहते हैं आप के इस बाल ग्वाल रूप की महिमा का सम्यक् बोध नहीं। मैं भी इसे यथार्थ रूप से जानने में समर्थ नहीं। फिर जो मेरे बनाये हुए मरीचि, अत्रि, अंगिरा तथा कश्यपादि से उत्पन्न प्राणी तो जान ही कैसे सकते हैं। जब इन्द्रियों के गोचर प्रत्यक्ष सम्मुख खड़े स्वरूप की ही महिमा जानने में मेरे जैसे ज्ञानी चकरा जाते हैं, तब जो रूप सर्वात्ममय है, साक्षात् ज्ञानमय है, सुख स्वरूप है, ऐसे आत्मानन्दानुभव रूप आपकी अचिन्त्य महिमा को तो कोई जान ही कैसे सकता है। फिर चाहे कोई धारणा ध्यान तथा समाधि द्वारा एकाग्रचित्त होकर-समस्त चित्त की वृत्तियों को वश में करके उस अचिन्त्य महिमा का ध्यान करे, तो उसके लिये भी कठिन ही है। बड़े बड़े ज्ञानी आपकी दुर्ज्ञेय महिमा के विषय मे सन्देह में पड़ जाते हैं, तब मुझ जैसा लोककर्मरत रजोगुणी सन्देह में पड़ गया और आपके बाल बछड़ों को चुरा ले गया तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है। फिर भी प्रभो! अपराध तो हुआ ही उसे क्षमा करें। आज मेरा समस्त ज्ञान का अभिमान चूर हो गया। आप यद्यपि अचिन्त्य अप्रमेय तथा दुर्ज्ञेय हैं, फिर भी जो भक्ति मार्ग का आश्रय ग्रहण

करते हैं, उन्हें आप की महिमा का बोध हो जाता है।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! इस प्रकार कैमुतक न्याय से भगवान् की महिमा को दुर्बोध बताते हुए ब्रह्मा जी ने भक्ति को ही भगवत् साक्षात्कार के निमित्त सुलभ बताया, उस प्रसंग को मैं आगे कहूँगा।

छप्पय

बन माला गर धारि बननि बिहरें बनवारी।
कठिन अवनि सुकुमार चरन भटकें पदचारी॥
दधि ओदन कर कौर सींग बंसी छर धरिकें।
दीये दरसन देव दया सेवक पै करिकें।
निज इच्छा निर्मित विमल, बपु महिमा समुझें न अज।
तब फिर अवतारी अलख, रूप जानि को सकै भज॥

पद

सजल घन चरन शरन हौं पाऊँ ॥१॥
पीताम्बर वर बदन विराजै, बार बार बलि जाऊँ ॥१॥ सजल०
मुख मंडल पै अलकैं बिथुरीं, गुञ्ज माल गल ध्याऊँ।
मोर मुकुट कुंडल कानन मन, वनमाला पहराऊँ ॥२॥ सजल०
चरन कमल कर कोमल वंशी, शृङ्ग छरी मन लाऊँ।
खोजत फिरत बाल बछरनि कूँ, छवि लखि परम सिहाऊँ ॥३॥
को कहि सकै महा महिमा प्रभु, निज अघ लखि सकुचाऊँ।
पापी क्रूर कुमति हौं जैसो, तुमरो नाथ कहाऊँ ॥४॥ सजल०

ब्रह्माजी द्वारा पशुपालनन्दनन्दन की स्तुति (२)

(८४)

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव
जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम् ।
स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभिः
ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम् ॥*

(श्री भा० १० स्क० १४ अ० ३ श्लो०)

छप्पय

ज्ञान प्रयास भुलाय नहीं भटके वन जंगल ।
रहि निज घर हरि कथा सुनहिँ संतनिमुख मंगल ॥
मन, बानी, तन नमन समय सब सफल बनावें ।
करि सब को सतकार वृत्ति तव चरन लगावें ॥
जदपि हो तुम अजित प्रभु, तोऊ जीतें भक्त गन ।
कथा कीरतन में निरत, सतत रहत तुमरी शरन ॥

---

*भगवान् की स्तुति करते हुए ब्रह्माजी कह रहे हैं—"प्रभो ! जो मनुष्य ज्ञान प्राप्ति के प्रयास को परित्याग करके संत महात्माओं के मुखारविन्द से निकली आपकी कथा श्रवण करते हैं, तथा मन वाणी और शरीर द्वारा अन

जीव शांति के लिये भटक रहा है, संसारी पदार्थों में शान्ति खोजता है, उन्हें सुख के हेतु संग्रह करता है, किन्तु उनके संग्रह से अशान्ति बढ़ती है और दुख होता है, तब वह तत्व की खोज करता है। एक एक भौतिक पदार्थ को लेता है कहता है यह भी अनित्य है,यह भी परिवतनशील है,यह भी नश्वर है। यह कहते कहते उस अचिन्त्य दुर्बोध परमतत्व को प्राप्त नहीं कर सकता। जो श्रद्धा भक्तिपूर्वक किसी एक में ही मन लगाकर उसी में सर्वान्तर्यामी को देखने की चेष्टा करता है,समस्त चर अचर में अपने ही इष्ट का रूप लखकर सबके सम्मुख नतमस्तक होता है। वही अविलम्ब उन सर्वान्तर्यामी को पालेता है।

सूत जी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् नन्दनंदन की स्तुति करते हुए ब्रह्माजी कह रहे हैं—"भगवन्! आप कहेंगे तुम तो मुझे मोह में डालना चाहते थे, मेरी परीक्षा लेना चाहते थे, किन्तु तुम्हारी एक भी युक्ति चली नहीं। तुम्हे मुँह की खानी पड़ी। मेरे सम्मुख पराजित होना पड़ा। अब तुम आये हो मेरी स्तुति करने के लिये। तुम्हें पता नहीं मेरा नाम अजित है, मुझे कोई साधनों द्वारा जीत नहीं सकता। मन वाणी मुझतक पहुँच नहीं सकते। मैं अचिन्त्य हूँ मुझे कोई तर्क से पा नहीं सकता फिर तुम शरणागति भक्ति क्यों कर रहे हो, मेरी स्तुति प्रार्थना किस निमित्त से कर रहे हो?

सो, हे भक्तवत्सल! यह बात सत्य है, कि आपको कोई जीत

को और आप के भक्तों को नमस्कार करते हैं, वे चाहें अपने घर पर ही रहते हुए *ऐसा जीवन व्यतीत करते हैं, तो हे अजित! वे त्रिलोकी में आप* को जीत लेते हैं। अर्थात् ऐसे लोगों के सम्मुख आप अपने को हारा हुआ मान लेते हैं।"

नहीं सकता, किन्तु यह बात ज्ञान मानियों के सम्बन्ध में सत्य भले ही हो शरणागत भक्तों के सम्बन्ध में यह नियम लागू नहीं। जो सर्वात्मभाव से आपके प्रपन्न हो गये हैं, उनके लिये आप दुर्लभ होने पर भी सुलभ हैं।

स्वामिन्! जो प्रकृति विकृति के विवेचन में ही अपने सम्पूर्ण समय को नहीं लगाते, जो आठों पहर विविक्त सेवी लब्वासी बन कर भक्तों के सत्संगसे वंचित नहीं रहते, जो निरन्तर जीव, जगत, निर्गुण निराकार, अवाङ् मनसगोचर की रट नहीं लगाते रहते। जो इन ज्ञान के प्रयत्नों में ही निरत न रहकर कथा कीर्तन में अपना समय बिताते हैं, उन भक्तों के सम्मुख आप प्रकट हो जाते हैं, निर्गुण से सगुण बन जाते हैं, निराकार रूप से साकार रूप रख लेते हैं। आपके ऐसे भक्त सदा आपके ही कृत्यों में लगे रहते हैं।

वे ज्ञान प्राप्ति के प्रयासों में बहुत प्रयत्नशील नहीं होते, उन साधनों से उदासीन होकर सत्संग में ही समय को बिताते हैं। वे आप के भक्त शरणागत संतों का ही निरंतर सत्संग करते हैं, वे संत यद्यपि एकान्तवासी तथा मौनी होते हैं, किन्तु जब सत्संग स्थान में भगवत् भक्त एकत्रित हो जाते हैं, उस समय उनकी वाणी प्रस्फुटित होती है उस समय वे केवल आपकी और आप के भक्तों की कथा कहने को मुखर बन जाते हैं। वावदूक हो जाते हैं. उनके मुख से धारा प्रवाह आप के गुण निकलते रहते हैं, आप के त्रिभुवन पावन नामों का कीर्तन करते हैं, आप की ललित लीलाओं की वे व्याख्या करते हैं ऐसे पुरुषों की कही हुई कथाओं को जो सुनते हैं। श्रद्धा और भक्ति के साथ सुनते हैं, हाथ जोड़कर दीन भाव से मस्तक झुकाकर श्रवण करते हैं। वाणी से बारम्बार उनका अनुमोदन करते जाते हैं। मन से उनका मनन

करते जाते हैं । वे त्याग का, विधि पालन का विशेष आग्रह भी नहीं करते । कुछ लोगों का सिद्धान्त है, जिस क्षण इन संसारी वस्तुओं से विराग हो जाय उसी समय सन्यास ले लेना चाहिये। अपने निवास स्थान का परित्याग कर देना चाहिये,चाहे गृहस्थ में परिवार के साथ रहता हो, या वन में वानप्रस्थ धर्मों का पालन करता हुआ कुटिया में निवास करता हो, तत्वों का ज्ञान होने पर उसे स्वस्थान को छोड़ ही देना चाहिये,संन्यास ले ही लेना चाहिए। किन्तु शरणागत भक्त ऐसे आग्रह की उपेक्षा कर दे, वह जहाँ भी रहता हो अपने स्थान पर ही रहते हुए कथा कीर्तन में मग्न रहे। कुछ लोग कहते हैं तीर्थयात्रा अवश्य करनी चाहिए तीर्थ यात्रा के बिना गति नहीं। शरणागत भक्त इन वचनों का विशेष आग्रह न करे, क्यों कि गंगा यमुना, त्रिवेणी, गोदावरी, सिन्धु, सरस्वती तथा अन्य सभी तीर्थ अपने आप वहाँ आजाते हैं जहाँ अच्युत भगवान् की कथा होती है, अतः संतों के निवास भगवद् भक्तों के कथास्थल को ही सबसे बड़ा तीर्थ मानकर शरणागत भक्त वहीं निवास करता है, संतों की भक्तिमयी भगवत्लीलामयी भागवती कथाओं को ही सुनकर प्रमुदित होता है। अथवा भक्तों का जो स्थान है अयोध्या, मथुरा द्वारका, वृन्दावन आदि उसी धाम में रह कर मन, वाणी तथा शरीर द्वारा सब को नमस्कार करते हुए अपना कालक्षेप करता है, जीवन के क्षणों को सत्संग में बिताता है, हे नाथ ! ऐसा शरणागत भक्त आप को प्रायः जीत लेता है। प्रायः इसलिये कहा कि ऐसा जीवन व्यतीत करते हुये भी जिसे भीतर से अभिमान हो जाता है, वह आप के दर्शन नहीं पाता। कथा कीर्तन ही जिनका एक मात्र आहार है, ऐसे विनयी नम्र सुशील सरल, सेवा सम्पन्न भक्त ही आपको शरणागति द्वारा पा सकते हैं। त्रिलोकी में ऐसा ही भक्त अजित जित दिग्विजयी

कहला सकता है।

प्रभो ! बड़े बड़े ज्ञानी ध्यानी तपस्वी एकमात्र अभिमान के ही कारण बीच मँझधार में जाकर डूब जाते हैं। ज्ञान का मार्ग तो कृपाण की धार के सदृश दुरूह है, कोई विरला ही उसके द्वारा पार हो सकता है। सर्व साधारण लोगों के लिये तो भक्ति मार्ग ही सरल सुगम सरस सर्वोपयोगी सुलभ सहज साधन है। कहाँ सर्व सद्गुण सम्पन्न, सर्व ऐश्वर्य युक्त सर्वाधार, सर्वान्तर्यामी सर्वसामर्थ्य युक्त सर्वेश्वर, कहाँ यह अल्पगुण, अल्प ऐश्वर्य एक देशीय सीमित साधन वाला जीव, यह अपने ज्ञानसे–स्वस्वरूप के बोध से–आपको कैसे प्राप्त कर सकता है ? कोई विरले करते होंगे, किन्तु सबके लिये यह मार्ग सुखकर सुगम नहीं, कल्याण प्राप्ति का सुगम मार्ग तो आपकी भक्ति-शरणागति-ही है। भक्ति का मार्ग कितना सुगम है, कहीं खोजना नहीं पड़ता। परोपकारी संत स्वतः ही पृथिवी पर घूमते रहते हैं। गृहस्थियों को कृतार्थ करने उन्हें दर्शन देने वे तीर्थ यात्रा के मिससे पर्यटन करते ही रहते हैं, किसी संत में भगवत् भक्ति कर लें आप का साक्षात्कार हो जायगा। गुरु को ही आप का चल विग्रह मान कर भक्ति भाव से पूजन करे उनमें से ही आप प्रकट हो जायँगे। स्त्री अपने पति की ही आप की भावना से पूजा करे-भक्ति करे-आप मिले ही मिलाये हैं आप की अर्चा विग्रह में ही भक्ति भाव प्रदर्शित करे, वहीं से आप प्रकट होकर बोलने लगेंगे,वार्ता करने लगेंगे। माता पिता का ही आप की बुद्धि से आदर करे, वेदज्ञ ब्राह्मण में, अतिथि में,

पृथिवी, जल, वायु, आकाश में कहीं भी आपकी भावना से भक्ति करें। तुलसी आदि पत्रों में,कमल आदि पुष्पों में,श्री फलादि फलों में,पीपल आदि वृक्षों में,कंकड पत्थर किसी में हो आप की भावना से पूजन पाठ, नमस्कार करे तो आप तुरन्त प्रसन्न हो जायँगे। ऐसे सुलभ भक्ति मार्ग को छोड़कर जो अत्यन्त दुरूह ज्ञान मार्ग में भटकते हुए नाना क्लेश उठाते हैं,उनको पूर्ण ज्ञान की स्थिति तो प्राप्त होती नहीं कि केवल दुःख ही दुःख अवशेष रह जाता है। उनको कुछ मिलता मिलाता नहीं। मिले भी कहाँ से, निर्गुण से मिलेगा हो क्या ? शून्य के आगे जितने भी शून्य बढ़ाते चलो बढ़ाने का प्रयास ही शेष है, एक बढ़ाओ चाहें लाख उनका मूल्य शून्य ही है। धान की भूसी के पहाड़ को कितने भी प्रयत्न से-कितने भी वर्षों तक कूटते रहो। उसमें से चावल निकलेंगे ही नहीं। अन्न मिलेगा ही नहीं। केवल श्रम ही श्रम शेष रह जायगा इसी प्रकार ज्ञान मार्ग से तो आप को पाना बड़ा कठिन है। सर्व कर्म समर्पण द्वारा आप को पाना सुगम है। आपके एकनिष्ठ अनन्य शरणागत भक्त तो इसी मार्ग द्वारा आपको प्राप्त कर सके हैं। प्रभो ! इस मार्ग में यह छोड़ो तब इसे ग्रहण करो ऐसा आग्रह नहीं। जिनकी योग मार्ग में रुचि है, वे योग की क्रियाओं के द्वारा अपने मलविक्षेपों को दूर करते हैं, फिर आपकी कथा श्रवण करके अपने सभी कर्मों को आप के अर्पण कर देते हैं उन्हें परमपद की प्राप्ति हो जाती है। उसी प्रकार वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हुए वे आपकी कथाओं में स्थिर मति करते हैं। उन

लौकिक वैदिक कर्मों के अनुष्ठान से अन्तः करण की शुद्धि होती हैं फिर आप की कथा सुनकर उनके मनमें भक्ति उत्पन्न होती है, अपने समस्त यज्ञ यागादि कर्मों को आपके अर्पण कर देते हैं। इस समर्पण विधि द्वारा ही उन्हें आप के यथार्थ स्वरूप का बोध होता है तब वे सुगमता के साथ परम पद के अधिकारी हो जाते हैं।

देव ! कैसे भी, किसी भी कर्म के द्वारा आपके चरणों में अनुराग होना चाहिये। अनुराग तभी होगा जब आपकी महिमा का ज्ञान होगा और महिमा का ज्ञान बिना महात्माओं के मुख से आपकी कथाओं के श्रद्धापूर्वक सुने होने का नहीं। अतः सभी दशाओं में आपके गुणों का श्रवण अत्यावश्यक है। श्रवण भक्ति के बिना कीर्तन, स्मरण पाद सेवन, अर्चन, दास्य, सख्य,तथा आत्मनिवेदन कोई भी भक्ति होने की नहीं, अतः भागवती कथा श्रवण प्रिय भक्तों द्वारा ही आप हे अजित ! जीते जा सकते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! ब्रह्माजी की इस स्तुति में सभी गूढ़ तत्वों का समावेश है, मैं इसे क्रमशः आपके सम्मुख वर्णन करूँगा आप सावधानी के साथ श्रवण करें।"

छप्पय

भक्ति मार्ग कूँ त्यागि ज्ञान हित करहिँ प्रयासा।
पावैं ते बहु दुःख अंत में होहिँ निरासा॥
जैसे थोथी भुसी कूटिकें अन्न न पावैं।
तैसे तजिकें भक्ति ज्ञान मग क्लेश उठावैं॥
सरब करम अरपन करहिँ, कथा सुनें योगी तरहिँ।
लौकिक वैदिक करम प्रभु, भक्ति हेतु हरिजन करहिँ॥

पद

भगति तजि इत उत भटकैं प्रानी ।
सीधो सरल सुगम मारगजिह, पग पग पै तरुपानी ।। १।। भगति०
यह सत असत अचिन्त्य अलौकिक, भ्रम भटकैं अभिमानी ।
भटकैं भगत न रहैं निलयनिज, सुनें भागवत वानी ।। २ ।। भगति०
नमैं बचन तन धानी मनतैं नितनित, जगमय जगपति जानी ।
कथा गंग भक्तनि मुख निकसति, पीवैं ते धनि प्रानी ।।३।। भगति०
ज्ञान हेतु बहु करैं सतत श्रम, भक्ति हेय अति मानी ।
तिनिको व्यरथ सकल श्रम जिनि नहिँ, श्रीपति महिमा जानी ।।४।।
अरपि करम सब पायो प्रभु पद, बहुतक योगी ज्ञानी ।
दासी मुक्ति पलौटे पद नित, धन्य भक्ति महरानी ।।५।। भगति०

ब्रह्माजी द्वारा पशुपाल नन्दनन्दन की स्तुति(३)

[८५]

तथापि भूमन् महिमा गुणस्य ते
विबोद्धुमर्हत्यमलान्तरात्मभिः।
अविक्रियात् स्वानुभवादरूपतो
ह्यनन्यबोध्यात्मतया न चान्यथा ॥❀

(श्रीभा० १० स्क० १४ अ० ६ श्लो०)

छप्पय

निरमल अन्तःकरन अगुन तो महिमा मानें।
इन्द्रिय के नहि विषय स्वयं अनुभव तें जानें॥
नभ हिमकन परमानु भूमि गणना संभव वर।
किन्तु सगुन गुन गनैं करें कारज ते दुष्कर॥
प्रभुवर गुन गन के निलय, गुन गणना को करि सकै।
पावे पद पदुमनि वही, कृपा प्रतीक्षा नित तकै॥

❀भगवान्‌की स्तुति करते हुए ब्रह्माजी कह रहे हैं—"प्रभो! जिन पुरुषों का अन्तःकरण विशुद्ध बन गया है वे चाहें तो आपके निर्गुण रूप की महिमा स्वयं प्रकाश आत्मरूप से जान भी सकते हैं, किसी अन्य प्रकार से नहीं जान सकते। कारण कि आप मन बुद्धीन्द्रिय के विषय नहीं, आप तो निर्विकार हैं तथा स्वानुभव स्वरूप हैं।

वेद शास्त्रों में भगवान के सगुण तथा निर्गुण दोनों ही रूपों का वर्णन है। जो निर्गुण निराकार निर्लेप निराह् निरंजन निर्विकार रूप है, वह इन्द्रिय, मन बुद्धि आदि से परे हैं। जब तक शरीर में तनिक भी अहंभाव रहेगा; संसारी पदार्थों में यत् किंचित् भी अपनत्व की भावना रहेगी तब तक निर्गुण निराकार का साक्षात्कार संभव नहीं, क्योंकि उनका कोई रूप आकार प्रकार तो है नहीं। जिन्होंने कभी बैठकर ध्यान करने का प्रयत्न किया होगा, उन्हें इस बात का कड़ अनुभव होगा कि देह धारियों के लिये अदेही की कल्पना कितनी कठिन है। देहाभिमान के बिना शरीर अधिक टिक नहीं सकता और देहाभिमान के रहते निर्गुण निराकार का साक्षात्कार-ब्रह्म संस्पर्श-प्राप्त नहीं हो सकता। जो सगुण ब्रह्म की उपासना करते हैं, भगवान् की दिव्य अवतारमयी सगुण मूर्ति का ध्यान करते हैं, उनके अंग प्रत्यंगों में,वस्त्र आभूषणों में मन को लगाते हैं। जो कर्म करते हैं भगवान् की सेवा पूजा के ही निमित्त करते हैं, भगवान् को ही अपनी गति मति मान कर उनमें ही सतत चित्त को लगाये रखते हैं, समस्त संसारी पदार्थों को उन्हीं की पूजा का उपकरण मानकर उन्हीं के द्वारा उनकी अर्चना करते हैं, तथा प्रभु प्रसाद पट आभूषण तथा नैवेद्य को ग्रहण करते हैं, वे सुगमता से, सरलता से बिना प्रयास के संसार सागर से सुख के साथ पार हो जाते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् नन्दनन्दन की स्तुति करते हुए ब्रह्माजी कह रहे हैं—"प्रभो! निर्गुण और सगुण आप के दो रूप हैं। दोनों ही दुर्बोध हैं दुर्धर हैं तथापि केवल बुद्धि द्वारा समझने की दृष्टि से निर्गुण रूप की महिमा समझना सुगम है। सबके लिये सुगम नहीं है. जो प्राकृत गुणों में लिप्त

नहीं हैं, जिनका अन्तःकरण मल विक्षेपादि आवरणों से रहित हैं, ऐसे निर्मल चित्तवाले योगीजन स्वानुभव से समझ लेते हैं कि आपकी महिमा स्वरूप और स्वभाव से विकार रहित है। अप्राकृत है क्योंकि प्रकृति तो स्वरूप से ही विकारों वाली है। काल पाकर उसमें विकार स्वयं ही उत्पन्न हो जाते हैं। पुरुष भी प्रकृति का संयोग पाकर विकारवान् सा प्रतीत होने लगता है किन्तु आप प्रकृति से परे हैं अतः अप्राकृत हैं और पुरुष से परे होने से उत्तम होने पर पुरुष तथा पुरुषोत्तम कहलाते हैं। विकार होता है रूप से, सो आप रूप रहित अरूप हैं अतः अरूप में विकार सम्भव नहीं यह जीव कर्माधीन है। कुटिल कर्म इसे जहाँ जहाँ संस्कार वश ले जाते हैं, वहाँ वहाँ इसे भटकना पड़ता है उसे नाना शरीरों से संयोग वियोग करना पड़ता है। जहाँ त्याग ग्रहण है संयोग वियोग है वहाँ ज्ञान टिक ही कैसे सकता है। आप रूप से रहित हैं, कर्म बन्धन से रहित हैं, संयोग वियोग से रहित हैं देह से रहित हैं। देह से होने वाले दुखों का जीव को अनुभव है अतः वह अन्तःकरण विशुद्ध होने पर जान सकता है कि देह रहित अदेही दुःख रहित सदा स्वयं प्रकाश ज्ञान स्वरूप होने से आप की महिमा जानी जा सकती है, परिछिन्नादि रूप से वह नहीं जानी जा सकती। सब कोई भी आप की निर्गुण महिमा को नहीं जान सकते। जो अनन्य हैं वे ही कोई आप को देख सकते हैं, आपकी महिमा को समझ सकते हैं। किन्तु आप की सगुण स्वरूप के गुणों की गणना तो बहुत ही कठिन है। कठिन क्या असंभव है। यद्यपि सम्पूर्ण पृथिवी परमाणुओं की संख्या करना भी असंभव कार्य है, तथापि संभव है कि कोई विलक्षण बुद्धिवाले चिरजीवी समस्त परमाणुओं की संख्या कर भी लें। इसी प्रकार आकाश में कितने हिम कण हैं

उन सब की संख्या भी असंभव है, किन्तु उसे भी कोई योगयुक्त सम्भव है कर लें। ज्योतिर्मण्डल में कितने तारागण हैं, इनकी भी यथार्थ संख्या संभव नहीं, फिर भी संभव है उनकी कोई मेधावी चिरजीवी संख्या करले, किन्तु आप में कितने गुण हैं, इनकी संख्या करना सर्वथा असंभव है क्योंकि आप समस्त गुणों की खान हैं, आप के गुण असंख्येय हैं। स्वयं आप भी चाहें तो उनकी संख्या नहीं कर सकते क्योंकि वे गुण संख्या के परिधि से बाहर हैं। आज तक कोई ऐसी संख्या नहीं जो उन्हें प्रकट कर सके। जैसे आप अनन्त हैं वैसे आप के गुण भी अनन्त असंख्य हैं।

हे देव! आप इस प्रकार दुर्ज्ञेय हैं, तब तो आप की महिमा का बोध हो ही नहीं सकता। सब प्रकार से असंभव ही है। सो, भगवन्! यह भी बात नहीं बहुत से आपके अनन्य भक्त आपको प्राप्त कर चुके हैं, आप के परम पद के अधिकारी बन चुके हैं, वे महाभाग सभी प्रकार के साधनों का परित्याग करके केवल तीन ही कार्य करते हैं। प्रथम तो वे प्रतिपल आप की कृपा की प्रतीक्षा करते हैं। वैसे तो प्राणी मात्र पर आप की कृपा दृष्टि की वृष्टि अनवरत होती ही रहती है, किन्तु उस वृष्टि में हमारे भाग्य की बूँद किस घड़ी गिरेगी भक्त चातक इसी प्रतीक्षा में टकटकी लगाये निरन्तर निहारता रहता है। जैसे वर्षा तो होती रहती है, किन्तु चातक की तृप्ति उससे नहीं होती, वह तो सदा सर्वदा स्वातकी बूँद के लिये लालायित रहता है, यह कोई निश्चय नहीं स्वाँतकी बूँदें कब गिर जायँ, इसलिये वह निरन्तर मुँह फैलाये रहता है, सदा सर्वदा उसी का ध्यान चिन्तन करता रहता है। इसी प्रकार आप के अनुगत अनन्य एकनिष्ठ भक्त इसी प्रतीक्षा में कालक्षेप करते हैं, कि न जाने कब कृपा हो जाय, कब हमारी

पारी आ जाय, कब किस क्षण नन्दनन्दन आकर अपना लें, कब राधारमण आकर हृदयसे सटालें। कब गोपीजन वल्लभ अपना करके स्वीकार लें। कब यशोदानन्दन आकर अपना अभय वरद कर कमल हमारे सिर पर रख दें। कब वे हमारे तन की तपन आकर बुझा दें। इस प्रकार वे उठते वैठते, खाते पीते, चलते फिरते, सोते जागते सदा सर्वदा आप की ही अनुकम्पा की उत्सुकता पूर्वक समीक्षा नहीं सुसमीक्षा करते रहते हैं।

दूसरी बात यह है कि प्रारब्ध के अनुसार उस अनन्य भक्त को जो भी सुख अथवा दुःख प्राप्त हो जाता है, उसका निर्लेप भाव से भोग करता है। प्रारब्ध वश सुख आ जाता है, तो उसे देखकर फूलकर कुप्पा नहीं हो जाता, उसमें आसक्त नहीं होता, उसे अपने आपके साधनों से प्राप्त नहीं मानता, और कदाचित् दुःख आजाय तो उसमें विकल नहीं होता। उसे देखकर घबराता नहीं रोता नहीं। वह समझता है ऋतुओं के धर्मानुसार स्वतः ही वृक्षों में फल फूल आजाते हैं, सरदी गरमी हो जाती है, इसी प्रकार प्रारब्ध वश जैसा भी भोगने को होना है वैसा ही सुख दुःख आ जाता है, उसे निर्लिप्त भाव से भोगता रहता है।

तीसरा कार्य यह यह करता है; कि सदा सर्वदा हृदय से अर्थात् मन से, वाणी से और शरीर से सदा आप को नमो नमः न मम-नमस्कार करता रहता है। वह मन से सदा कृष्णाय नमः वासुदेवाय नमः हरये नमः परमात्मने नमः यही सोचता रहता है। जो भी पदार्थ आता है उसे कहता है यह श्रीकृष्ण भगवान् के लिये है-न मम- मेरे लिये नहीं है। इसी प्रकार वाणी से सदा भगवान् के नामों में चतुर्थी विभक्ति लगाकर उनमें नमः शब्द को जोड़कर उच्चारण करता है। रामाय नमः नारायणाय नमः गोपी-जन वल्लभाय नमः भगवते वासुदेवाय नमः तथा शरीर से भगवन्

विग्रहों को, सन्त महात्माओं को, गौ ब्राह्मणों को, देवता, द्विज, गुरुजन; प्राज्ञपुरुष तथा सम्पूर्ण चराचर विश्व को ही भगवान का स्वरूप समझकर साष्टांग प्रणाम करता रहता है। नमो नमः नमो नमः यही व्यापार मन, वाणी तथा शरीर से करता रहता है ऐसा कृपा प्रतीक्षक, स्वकर्म विपाक भोक्ता, त्रिविध नमन करने वाला भक्त ही-फिर चाहें वह योग्य हो अयोग्य हो साधनयुक्त हो साधन विहीन हो-जैसे पुत्र अपने पिता के धन का उत्तराधिकारी होता है, उसी प्रकार वह आपके मुक्ति पद का, आप के चरणार विन्दों का, आपकी भक्तिका, आपके परमपद का स्वतः ही अधिकारी बन जाता है, उसे अन्य कोई भी प्रयास नहीं करना पड़ता। यही सब सोचकर मैंने आप के पाद पद्मों का सहारा लिया है। मुझे आप से पराजित होने में कोई लज्जा नहीं, कोई संकोच नहीं कोई झिझक नहीं। आप तो मेरे जनक हैं। मैं आप की शरण मे हूँ, आप मेरे अक्षम्य अपराध को अपना अनुचर समझ कर क्षमा करें।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! इस प्रकार ब्रह्माजी ने भक्ति मार्ग का उत्कर्ष बताते हुए अपने अज्ञान कृत अपराध के लिये भगवान् के पाद पद्मों में बारम्बार क्षमा याचना की। अब आगे वे जिस प्रकार और भी अत्यंत सरलता से क्षमा याचना करेंगे तथा भगवान् की महत्ता और अपनी क्षुद्रता का कथन करेंगे वह कथा प्रसंग मैं आप को आगे सुनाऊँगा। आप इस भक्ति शरणागति के प्रसङ्ग को दत्तचित्त होकर श्रवण करें।

छप्पय

कृष्ण कृपा कब करें लगन जिनकी चातकवत।
भोगें सुख दुख सहज भाग्यवश जो कछु आवत॥
मन तैं वच तैं और देह तैं तुमकूँ विनवै।
हरिमय जगकूँ जानि विनय तैं सब कूँ प्रनवै।
यों जो जीवन धारि प्रभु, शरनागत बनि कें रहैं।
पावैं पितु धन पुत्र ज्यों, मुक्ति चरन तब त्यों लहैं॥

पद

सगुन है निरगुन हू तैं प्यारो।
जदपि दुरूह रूप दोऊ परि, सगुन सुरूप तिहारो॥१॥ सगु०
बरसा बूँद भले गनि लेवै, नच्छत्तर ग्रह तारो।
भू कण गिनहिं किन्तु महिमा तव, को गिनि सकै विचारो॥२॥स०
उत्सुक ह्वै तव कृपा प्रतीक्षा, करै तुम्हार सहारो।
सुख दुख भोगें समुझि करम फल, सरवसु तुम पै वारो॥३॥सगु०
ज्यों पावै सुत सहज पिता धन, त्यों पद मुक्ति सम्हारो।
करें छिमा शरनागतवत्सल, प्रभु अपराध हमारो॥४॥ सगु०

ब्रह्माजी द्वारा पशुपालनन्दनन्दन की स्तुति (४)

[८६]

पश्येश मेऽनार्यमनन्त आद्ये
परात्मनि त्वय्यपि मायिमायिनी ।
मायां वितत्येक्षितुमात्मवैभवम्,
ह्यहंकियानैच्छमिवार्चिरग्नौ ॥

(श्री भा० १० स्क० १४ अ० ६ श्लो०)

छप्पय

नाथ ! कुटिलता लखें कुमति मेरे मन आई ।
जो मायापति अलख तिनहिं माया दिखलाई ॥
कहँ अर्चि कहँ अनल विन्दु कहँ सिन्धु मुरारी ।
समुझयो निजकूँ ईश गई मेरी मति मारी ॥
मोह जाल नैंननि भयो, बनि मदान्ध अति अघ करे ।
भोजन के सुख समय में, ग्वाल बाल बछरा हरे ॥

भगवान् की माया ऐसी प्रबल है, कि बड़े-बड़े ज्ञानी भी इस के चक्कर में फँस जाते हैं। माया का जाल ही ऐसा है कि इसके आश्रय में आने पर प्रायः सभी-कुछ ही काल के लिये सही फँस

भगवान् की स्तुति करते हुए ब्रह्माजी कह रहे हैं—"प्रभो ! मेरी मूर्खता तो देखें, जो बड़े बड़े मायावियों को भी अपनी माया से मोहित

जाते हैं। भगवान् जिनकी रक्षा करें, जो उनके चरणों की शरण ले लें, वे ही बच सकते हैं। नहीं तो इस माया की महिमा ही ऐसी है कि इसमें से निर्दोष निकल जाना बहुत ही कठिन कार्य है।

सूतजी कहते हैं—'मुनियो! भगवान् से अपने अपराध की क्षमा याचना करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं—"प्रभो! आर्य लोग किसी पर संदेह नहीं करते, किसी पर अविश्वास नहीं करते, किन्तु मैंने जगत्पिता के ऊपर सन्देह किया। मायेश के प्रति माया का जाल बिछाया, अनन्त का अन्त देखना चाहा। अनादि का पता लगाया, समस्त मायावियों को भी अपनी माया से विमोहित बनानेवाले विभु को भी मोहित करने के उपाय किये। आर्य तो सुजन तथा विज्ञ कहलाते हैं, मैंने दुर्जनता तथा मूढ़ता की। यह अनार्यपन है। कहाँ आप अनादि अनंत और कहाँ मैं आपके ही नाभि कमल से उत्पन्न होने वाला द्विपरार्ध आयु वाला देव। कहाँ आप प्रकृति पुरुष से परे पुरुषोत्तम और कहाँ मैं प्रकृति संश्लिष्ट व्यक्ति। कहाँ आप मायापति और कहाँ मैं माया के अन्तर्गत कार्य करने वाला। कहाँ तो आपने अपनी योगमाया से चराचर को विमोहित बना रखा है, कहाँ मैं आप मायावियों के परम गुरु को अपनी क्षुद्र माया से मोहित करने का प्रयत्न करने वाला। मैं चाहता था आप पर अपनी माया का प्रभाव दिखाकर आप को चकित कर दूँ और अपनी माया के प्रभाव को स्वयं देखकर हर्षित

करते हैं ऐसे आप अनादि अनंत परम पुरुष परमात्मा को भी मैंने माया के द्वारा अपना वैभव दिखाना चाहा। मैं आपके सामने क्या मुँह दिखा सकता। अनन्त अग्नि के सम्मुख एक क्षुद्र चिनगारी का अस्तित्व ही क्या है?

होऊँ। किन्तु पीछे ज्ञान हुआ, यह मेरी मूर्खता थी, अज्ञानीपन तथा महान् धृष्टता थी। भला अग्नि का विस्फुलिङ्ग महान् अग्नि के समीप है ही क्या ? जैसे एक बिन्दु जल सिन्धु की समता करना चाहे, एक कण-महान् अन्नराशि को अपनी महिमा से चकित बनाना चाहे, जैसे एक बालक अपनी फूँक से सुमेरु को उड़ाकर उस क्रीड़ा को देखकर प्रसन्न होना चाहे। इसी प्रकार मैं ग्वालबाल तथा बछड़ों को चुराकर आप की सामर्थ्य की परीक्षा करना चाहता था। आप को विस्मित तथा चिन्तित हुआ देखना चाहता था। आप पर अपना प्रभाव स्थापित करना चाहता था।

प्रभो! आप अच्युत हैं। स्वयं भी आप कभी च्युत नहीं होते और अपने अनुगत भक्तों को भी च्युत होने से बचाते हैं। आप अपनी शरण में आये हुए अपने अनुगतों के सभी अपराधों को क्षमा कर देते हैं।

हे परमपिता! आपने ही ऊँच नीच छोटे बड़े सभी जीवों को उत्पन्न किया है। गरुड़ आपके अनुगत भक्त हैं, यदि वे सर्पों को भक्षण करते हैं, तो इस में उनका क्या दोष ? आपने उनका आहार ही यह बना दिया है, उनके स्वभाव का निर्माण ही ऐसा किया है। इसी प्रकार मेरी उत्पत्ति ही रजोगुण से है। रजोगुण में अहंकार की प्रबलता तो होती ही है। रजोगुणी अपने को ही सर्व श्रेष्ठ समझता रहता है। मैंने जो भी किया अपने गुण के अनुरूप ही किया, किन्तु नाथ ! आप तो शरणागतवत्सल हैं। जैसे गौ अपने बच्चे के मैले को भी जिह्वा से चाट लेती है, उसी प्रकार आप अपने जनों के अपराधों की ओर ध्यान नहीं देते। छोटों का तो स्वभाव ही है भूल करना किन्तु बड़े उसे सुधार लेते हैं और छोटों के अपराधों की ओर ध्यान नहीं देते।

मैंने भूल से अज्ञान वश अपने को ही सबका जनक चराचर

का स्वामी मान लिया था। मैं समझता था मेरा नाम अज है मैं किसी से उत्पन्न नहीं हुआ हूँ, मैं ही ब्रह्माण्ड का स्वामी हूँ, वेद-गर्भ—होने से मुझे ही सबका ज्ञान है, मैं ही सबका पितामह हूँ। जगत् का एकमात्र कर्ता मैं ही हूँ। मैं इसी तिमिरान्धकार में बहक गया। मेरे नेत्रों में तम रूपी सघन गहरा जाला छागया जिससे मैं विवेकको खो बैठा, मुझे सत् असत् का कर्तव्य अकर्तव्य का विवेक नहीं रहा। इसीलिए ऐसा अक्षम्य अपराध मुझ से बन पड़ा। मैं अपने को ही स्वामी समझ बैठा अब आप मेरे अपराध को भूल जाइये। और यह सोच लीजिये कि मैं इसे इसके अप-राध पर परित्याग कर दूँ तो यह अनाथ हो जायगा। यह मेरे ही कारण सनाथ है। यह मेरी कृपा का पात्र है। मुझे अपना अनुगत पुत्र समझकर मेरे ऊपर अनुकम्पा करें। मुझे अपने पाद पद्मों का किंकर समझ अनुग्रह भरी दृष्टि से मेरी ओर निहारें, मुझे अवलोकन करें। मैं अपने अपराध के लिये आप के चरणारविन्दों में बारम्बार क्षमायाचना करता हूँ। मुझे अपनी मूर्खता पर हार्दिक पश्चात्ताप है। मैंने आपको अपनी ही श्रेणी में समझ कर जो भी कुछ अपराध किया है उसके लिये मैं लज्जित हूँ। सोचिये तो कहाँ आप और कहाँ मैं ?

प्रभो! घरों में वायु आने के लिये झरोखा-गवाक्ष होते हैं, उनमें से जब सूर्य की किरण आती है, तो असंख्यों छोटे-छोटे अत्यंत ही क्षुद्र परमाणु दिखाई देते हैं,उन परमाणुओंके सदृश भी मेरा अस्तित्व नहीं। जैसे अपने हाथों से सात विलस्तका—साढ़े तीन हाथ का—सब का शरीर होता है, वैसा ही अपने हाथों से सात विलस्तिका मेरा भी एक शरीर है। यह भू मंडल पंचशत कोटि योजन विस्तार का बताया गया है। इस भू मण्डल के चारों ओर इससे दशगुणा जल का आवरण है। जल से दश

गुणा अग्नि का, अग्नि से दशगुणा वायु का आवरण है, वायु से दशगुणा प्रकृति तत्व का आवरण है। यही सप्तावरण संयुक्त सात वितस्तिका एक ब्रह्माण्ड कहलाता है। जैसे मनुष्यों के शरीरों पर सात त्वचाओं के आवरण हैं, वैसे ही मेरे इस ब्रह्मांड रूप शरीर पर पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश महतत्त्व तथा प्रकृति रूप आवरण है। यह ब्रह्माण्ड ही मेरा शरीर है। जगत में एक ब्रह्माण्ड हो सो भी बात नहीं। आपके शरीर के रोमकूप के जो छिद्र हैं, उन प्रत्येक छिद्रों में इतने अगणित ब्रह्माण्ड फैल फूट कर स्वच्छन्द विचरण कर रहे हैं, जैसे घट के गवाक्ष से सूर्य की पड़ती हुई किरणों में असंख्य परमाणु दृष्टि गोचर होते हैं। आपकी एक साँस में एक ब्रह्माण्ड बनता है, दूसरी स्वास में बिगड़ता है, न जाने नित्य मेरे जैसे कितने ब्रह्मा आप के श्री अंग से बनते और बिगड़ते रहते हैं। कितने निकलते हैं, फिर उसी में विलीन हो जाते हैं। पानी के बुद् बुद् की तो कुछ स्थिति भी है, किन्तु आप के सम्मुख मेरे जैसे अगणित ब्रह्माण्डों की कोई स्थिति नहीं। ऐसी आप की महती महिमा के आगे मेरा यह वत्सहरण का प्रयास क्रीड़ा मात्र है।

हे देव! बालक जब गर्भ में रहता है, तो क्या गर्भ के भीतर वह माँ को कोई सुविधा देता है? सुविधा नहीं अनेकों असुविधा ही देता है। माता को भाँति भाँति से क्लेश पहुँचाता है। मान लो गर्भ में रहकर वह पैर उछालने लगे। इस बात का उसे विवेक ही नहीं मेरे इस कार्य से माता को कष्ट होगा, क्योंकि बालक होने से ऐसा करने को विवश है। यद्यपि बालक बार बार अपराध करता रहता है, किन्तु माता उधर ध्यान ही नहीं देती, गर्भ गत बालक कभी अपराध भी कर सकेगा, ऐसी माँ को कल्पना तक नहीं होती। इसी प्रकार मैं भी आपके उदर के रोम कूपों में

विचरण करनेवाला एक बालक हूँ। सभी आप के ही तो बालक हैं। विश्व में ऐसा कोई वस्तु नहीं है जो अस्ति नास्ति का विषय हो। जिसे लोग यह है यह नहीं है इन शब्दों से व्यवहृत करते हों और वह आप के उदर में न हो। अर्थात् सभी कुछ आप के उदर में है। मैं भी आप का एक उदरस्थ शिशु हूँ। आप मेरे अपराध की ओर ध्यान कैसे देंगे। प्रभो! बच्चा उत्पन्न होता है, तो उसकी नाभि में एक डोरा सा लटका रहता है, उसको नार करते हैं सभी जीवों के छोटा बड़ा नार रहता है अतः उप लक्षण से नार जीवका भी नाम है। अयन-स्थान-आश्रय को कहते हैं, जीव का एक मात्र आश्रय-प्राप्य स्थान-रहने का अयन आप ही हैं। जीवों को क्रियाओं में प्रवृत्त करने वाले आप ही हैं। जीवों के अस्तित्व के एक मात्र साक्षी आप ही हैं, जीवों का आप के बिना कोई आश्रय नहीं, उनको कोई गति नहीं। नारके अर्थात् जीव के अयन अर्थात् आश्रय एक मात्र आप ही हैं -इसी लिये ऋषियों ने आप को ही नारायण नाम से सम्बोधन किया है। आप नारायण है, मैं जीव हूँ अतः आप मेरे ऊपर कृपा की दृष्टि कीजिये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार ब्रह्माजी ने भगवान् को अपना माता पिता जनक मान कर स्तुति की। आगे आपको नारायण बताकर जो क्षमा याचना की है उस प्रसंग को मैं आगे कहूँगा।

छप्पय

प्रभु सेवक सुत समुझि अज्ञता नाथ भुलावें।
भूत प्रकृति महतत्व आवरन आपु बनावें॥
ब्रह्मा अरु ब्रह्माण्ड रचैं पालैं संहारैं।
रोम रोम अज रुद्र बनावैं फेरि बिगारैं॥

पद प्रहार शिशु उदर में, जननी के पुनि पुनि करैं।
तऊ गिनत नहिं मातु प्रभु, त्यों मम अघ हिय नहिं धरैं ॥

पद

कुटिलता कैसी मैंने कीन्हीं।
जो विश्वंभर विश्वनाथ विभु, तिनि महिमा नहिं चीन्हीं ॥१॥कु०
पालैं रचैं हरैं जग छिनमें, तिनहिं परीच्छा लीन्हीं।
सुखतैं खात बाल बछरा सब, तिनकी प्रियता छीन्हीं ॥२॥कु०
हौं अभिमानी अज अति ज्ञानी हरि हँसि शिक्षा दीन्हीं।
हो जग जननी परमपिता प्रभु, चरन शरन तव लीन्हीं ॥३॥कु०

ब्रह्माजी द्वारा पशुपाल नन्दनन्दन की स्तुति (५)

[८७]

नारायणस्त्वं न हि सर्वदेहिना-
मात्मास्य धीशाखिल लोकसाक्षी ।
नारायणोऽङ्गं नरभूजलायना-
त्तचापि सत्यं न तवैवमाया ॥ *
(श्रीभा० १० स्क० १४ अ० १४ श्लोक)

छप्पय

जीवनि के तुम अयन नरायन नाम कहावें ।
आश्रय ईश्वर तुमहिँ नरायन वेद बतावें ॥
जल में श्री सँग वसो नरायन कहि उचारें ।
नारायन अघ हरन वेद सब शास्त्र पुकारें ॥
मायापति सब करि सकौ, नहीं असंभव कछु करम ।
कमलासन हौं अङ्ग जब, मोइ सिखाये सब धरम ॥

---

* भगवान् की स्तुति करते हुए ब्रह्माजी कह रहे हैं—"हे लोकसाक्षी भगवन् ! क्या आप नारायण नाम से प्रसिद्ध नहीं हैं ? क्या आप समस्त जीवों के आत्मा तथा अखिल जगत् के साक्षी होने से ही इस नाम से प्रसिद्ध नहीं हैं ? नर से उत्पन्न जल में निवास करने से जो नारायण हैं वह भी आपके अङ्ग हैं, किन्तु आप किसी एक देश में बँधे नहीं यह सब आप की माया है।"

यह जगत् नारायण मय है, नारायण से ही इसकी उत्पत्ति है और नारायण में ही इसका पर्यवसान है, नारायण के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं। जो नारायण को भुलाकर कार्य करते हैं, वे चाहें साक्षात् चतुरानन ब्रह्मा ही क्यों न हों; उन्हे पीछे पछताना पड़ता है। अतः सर्वत्र नारायण दृष्टि रखने में ही श्रेय है, सर्वत्र नारायण को ही निहारने में कल्याण है।

सूत जी कहते हैं—"मुनियो! लोक पितामह ब्रह्मा भगवान् की स्तुति करते हुए कहते हैं—"प्रभो! अन्य जीव तो आप के उदर में निवास ही करते हैं, मैं तो आप का साक्षात् आत्मज हूँ, आप से ही उत्पन्न हुआ हूँ आपका पुत्र हूँ। आप कहेंगे कि तुम तो अज हो तुम्हारा तो जन्म ही नहीं। सो, भगवन्! यह नाम मेरा औपचारिक है, इसका भाव इतना ही है, कि मेरी उत्पत्ति किसी साधारण पुरुष द्वारा नहीं हुई है। मैं जीवात्मज नहीं परमात्मज हूँ। आप तो मेरे माता पिता सब कुछ हो। मेरा नाम कमलासन प्रसिद्ध है। जब तीनों लोकों का नाश हो जाता है, सम्पूर्ण लोक जलमय बन जाते हैं और आप उस सम्पूर्ण प्रलयार्णव में शेष की शैया बना कर सो जाते हैं, उस समय चराचर विश्व आप के उदर में शयन करता रहता है। काल की प्रेरणा से आपकी नाभि से कमल उत्पन्न होता है, उसी कमल से मुझ ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है। इस बात को सभी जानते और मानते हैं। यदि यह बात सत्य है, यदि प्रसिद्धि में कुछ तथ्य है तो मैं आपका पुत्र हुआ न? मेरे माता पिता जनक जननी सब कुछ आप ही हुए न? मैं नारायणाङ्गज हुआ न?

प्रभो! संसार में नारायण नाम से आप ही प्रसिद्ध हैं। नारायण शब्द के अर्थ अनेक हैं। जितने ये जीव हैं अनन्त चराचर जीवों के समूह का नाम नार बताया गया है। ये जीव जहाँ रहते

हैं, सब जीवों का जो आश्रय निवास स्थान-अयन-हो वही तो नारायण है। इस दृष्टि से आप ही एकमात्र नारायण हैं। अथवा चराचर जीव ही जिसका अयन-निवास स्थान-हो वही नारायण है। इस दृष्टि से भी आप अन्तर्यामी रूप से सब जीवों में वास करते हैं, अतः नारायण नाम आप का ही सत्य है। अथवा समस्त जीवों की-अयन-अर्थात् प्रवृत्ति जो हैं, जीव सभी क्रियाओं में आप के ही कारण प्रवृत्त होते हैं।

अथवा अयन कहते हैं साक्षी को। जीवों केधर्माधर्म जितने भी कर्म हैं, सबके साक्षी-कर्मफल दिलाने देने वाले-आप ही हैं। आप ही सबको सूर्य बनकर देखते रहते हैं, कर्मी को फल दिलाते हैं। भाँति भाँति के भोग भुगाते हैं इसीलिए आप नारायण कहलाते हैं। अथवा नर कहते हैं परमात्मा को उससे उत्पन्न होने वाला नार कहलाता है। आप सर्व प्रथम आदि में जल को ही उत्पन्न करते हैं और उसमें फिर शेष शैया पर सोते हैं। वही जल आप का अयन निवास स्थान है इसलिये भी लोगबाग आपको नारायण नाम से पुकारते हैं। शेषशायी अथवा जल में निवास करने वाला जो आप का रूप है वह त्रिकालावाधित सनातन तथा सत्य है, वह माया से परे हैं, वह कभी भी मिथ्या नहीं हो सकता। इस प्रकार नारायण ही आज लकुट और वंशी लेकर इस,त्रिभुवन मोहन रूप से, श्री वृन्दावन धाम में विचरण कर रहे हो, ऐसे आपके पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

स्वामिन्! जब मेरी उत्पत्ति आपके उदर से हुई और आपकी नाभिसे उत्पन्न जो कमल है उस पर बैठकर जब मैं इधर उधर देखने लगा किन्तु मुझे कुछ भी दिखायी नहीं दिया, तब मैंने तर्क किया कि यह कमल कहाँ से निकला है इसकी उत्पत्ति का स्थान कहाँ है, चलकर इसे खोजना चाहिये। यही सोचकर मैं

उस कमल को नाल में घुस गया और सैकड़ों वर्ष तक खोजता ही रहा किन्तु आपके दर्शन मुझे नहीं हुए; जब मैं खोजते खोजते श्रमित हो गया और फिर आकर कमल पर बैठकर ध्यान करने लगा तो आपने तुरन्त मुझे अन्तःकरण में ही दर्शन नहीं दिये क्यों ? आप मेरे हृदय में प्रकटित हो ही गये। कुछ काल के पश्चात् आपका वह दिव्य अलौकिक रूप पुनः तिरोहित हो गया। उसके अन्तर्हित होने से हृदय में भी फिर मुझे दर्शन नहीं होने लगे। इससे प्रतीत होता है कि आप सब के भीतर बाहर में व्याप्त भी हैं और सबसे पृथक् भी हैं। हे नारायण ! आपकी ही ऐसी अलौकिक सामर्थ्य है।

प्रभो ! यह जगत् जैसा बाहर दिखाई दे रहा है, वैसा ही आप के भीतर भी है। बाहर जो अंडज, पिंडज, स्वेदज और उद्भिज जीव समूह दिखायी दे रहे हैं। वे ही सब ज्यों के त्यों जैसे के तैसे आपके उदर में भी विद्यमान हैं। यह कोई कल्पान्तर की बात नहीं बहुत पुरानी कहानी भी नहीं। इसी श्रीकृष्णावतार में आपने अपनी माता यशोदा मैया को अपने मुख में विश्वरूप का दर्शन कराया था। यदि सम्पूर्ण विश्व आपके उदर में न होता तो आप दिखाते कैसे ? इससे प्रतीत होता है। कि यह सब आपकी माया का पसारा है, आपकी अनिर्वचनीय शक्ति के द्वारा ही यह सब भीतर बाहर भासित हो रहा है। आपके लिये कुछ भी संभव असंभव नहीं। आपके लिये कुछ भी बाहर भीतर नहीं क्योंकि आप नारायण हैं, मायापति हैं, माया के नाशक हैं। माया का दमन करने वाले हैं। अतः आपके पादपद्मों में प्रणाम है।

प्रभो ! पिछली बात जाने दें, आपने तो अभी मुझे अपनी अलौकिक शक्तिमयी माया दिखाकर आश्चर्य चकित बना दिया। आप जब ग्वाल बालों के सहित भोजन कर रहे थे तब मुझे मोह

हुआ, मैं आपका यथार्थ स्वरूप न समझ सका। मैं समस्त ग्वाल बालों को तथा चरते हुए बछड़ों को चुरा ले गया और अपनी माया से उन्हें अचेत करके ज्यों का त्यों सुला दिया उस समय आप अकेले ही थे। एकाकी वन में विचर रहे थे, किन्तु एकाकी रमण तो होता नहीं आप ठहरे राधारमण। अतः आप ही समस्त ग्वाल बाल बछड़े भी बन गये। एक होकर भी बहुत हो गये। मैंने आकर देखा तो आप फिर वैसी ही क्रीड़ा कर रहे हैं मेरे दुर्व्यवहारसे आपकी क्रीड़ा में तनिक भी अन्तर नहीं पड़ा है, आपके खेल में कुछ भी व्यवधान नहीं आया है, वैसे ही छोटे बड़े, हँसौड़ रिसौर, मोटे पतले, ग्वाल बाल वैसा ही उनका रूप रंग वैसा ही चलन, उठन, बोलन, हँसन, वैसा ही वेश, वैसे ही वस्त्र, वैसा ही स्वभाव, वैसे ही बछड़े। वैसी क्रीड़ा, वैसा ही हास परिहास, मैं तो देखकर चकित हो गया। मुझे संदेह हुआ कि कहीं वे ही तो नहीं आ गये। वहाँ जाकर देखता हूँ तो वे सबके सब ज्यों के त्यों ही अचेत पड़े हैं। तब तो मैं निर्णय ही न कर सका (इनमें कौन यथार्थ हैं कौन बनावटी हैं।' मैं फिर आया तो क्या देखता हूँ सबके सब चतुर्भुज हैं। बालक बछड़े सभी शंख, चक्र, गदा पद्मधारी वनमाली हैं। मेरे समस्त तत्व उनकी उपासना कर रहे हैं। फिर मैंने देखा अनेकों ब्रह्माण्ड हैं उनमें अनेक ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं अनेक इन्द्रादि देव हैं। सभी लोकों में आपकी एक सी लीला हो रही है। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड आपके एक एक रोम कूप से निकल रहे हैं। आप ही उन सब ब्रह्माण्डों में ओत प्रोत हैं। जैसे महा पर्वत से अनन्त धारायें एक साथ निकल रही हैं, तथा अनन्त सागर में वे सभी नदियाँ एक साथ ही बड़े वेग से गिर रही हैं किन्तु इतनी नदियों के गिरने से भी समुद्र में कोई क्षोभ नहीं, कोई चंचलता

नहीं, कोई घटाव बढ़ाव नहीं। इसी प्रकार अनन्त ब्रह्माण्डों के निकलने और पुनः प्रवेश करने से आपके स्वरूप में कोई अन्तर नहीं। आप ज्यों के त्यों क्रीडारत बने हुए हैं, मानों कुछ हो ही नहीं रहा है।

जब मैं यह दृश्य देखकर संभ्रम में पड़कर आश्चर्य चकित हो गया भयभीत होकर इधर उधर निहारने लगा, तो आपकी इच्छा शक्ति से वह सब दृश्य क्षण भर में अदृश्य होगया। मैंने क्या देखा आप वही दधि भात का कौर लिये, लठिया बगल में दाबे, वंशी कटि में खुरसे एकाकी अपने बछड़ों को खोज रहे हैं। न ग्वाल हैं, न बाल हैं न बछड़े हैं केवल आप ही आप हैं। इन सब बातों से मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ, कि आप ही स्वयं साक्षात् कोटि ब्रह्माण्डों के नायक, अनेक त्रिदेवों के उद्गम स्थान, स्वयं ही साक्षात् श्रीमन्नारायण नन्दनन्दन यशोदानन्द वर्धन राधारमण हैं, अतः आपके पादपद्मों में मैं पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार ब्रह्माजी स्तुति करने लगे वे और भी आगे स्तुति करेंगे उसका वर्णन मैं अब करूँगा, आप दत्तचित्त होकर श्रवण करें।"

छप्पय

भीतर बाहर आपु एकरस सब थल व्यापक ॥
जननि दिखायो विश्वरूप मुख महँ जब बालक।
अई अचरज करयो मोह मम नाथ मिटायो ॥
एक प्रथम बहु बने विष्णुमय सकल दिखायो ॥
पृथक पृथक् ब्रह्माण्ड में, लखे चराचर जीव सब।
यों सब कछु दिखायकें, शेष रहे प्रभु एक अब ॥

पद

नाथ ! नारायन नाम तिहारो ।
उदर समेंट सकल जग सोओ सबकूँ फेरि निकारो ॥१॥
तुमरे नाभि कमल तें का हरि भयो न जनम हमारो ।
माता पिता सबहिं विभु मेरे सब अपराध बिसारो ॥२॥
आदि अन्त जब मोइ न दीख्यो ढूँढ़त ढूँढ़त हारो ।
हिय में दरसन दये दयानिधि माया मोह विदारो ॥३॥
विश्वरूप माता कूँ मुख में दीख्यो जब मुँह फारो ।
बछरा बालक सब में दीखत प्रभु अब मोइ उबारो ॥४॥

ब्रह्माजी द्वारा पशुपाल नंदनंदन की स्तुति (६)

(८८)

अजानतां त्वत्पदवीमनात्म—
न्यात्मात्मना भासि वितत्य मायाम् ।
सृष्टाविवाहं जगतो विधान
इव त्वमेषोऽन्त इव त्रिनेत्रः ॥❀

(श्री भा० १० स्क० १४ अ० १९ श्लो०)

छप्पय

हरि हर अज थिति प्रलय प्रकट हित तीन बतावें ।
किन्तु आपु ई एक बनावें पालि मिटावें ॥
आपु अजनमा अलख तदपि अवतार धरें हरि ।
सुर, ऋषि, नर, जल जीव, माहिँ प्रकटैं करुनाकरि ॥
योगेश्वर व्यापक परम, तनु धरि जो लीला करें ।
जीव जगत में कौन जो, मरम जथारथ हिय धरें ॥

❀ ब्रह्मा जी भगवान् की स्तुति करते हुए कहते हैं—"हे नाथ ! जो लोग यथार्थ में आपकी महिमा को अज्ञतावश नहीं जानते, ऐसे पुरुषों को

जितना भी हमें जो नानात्व दिखायी दे रहा है, सब अज्ञान के ही कारण दीखता है। वे सर्वसमर्थ सच्चिदानन्द विभु एक हैं, अद्वय हैं। अनामय हैं, प्रपंच से रहित हैं। अपनी क्रीड़ा के लिये, लीला के लिये, विनोद के लिये, बहुरूप से दिखायी देने लगते हैं फिर अपनी इच्छानुसार ज्यों के त्यों एक ही हो जाते हैं, हो क्या जाते हैं एक तो वे हैं ही। भ्रमवश मोहमें पड़कर प्राणी अनेक समझ लेता है। जब वे ही माया के परदे को हटा देते हैं, तो उनका यथार्थ दर्शन होता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! आगे स्तुति करते हुए ब्रह्माजी कह रहे हैं—"प्रभो! आप अपनी योगमाया का परदा डाल कर आँख मिचौनी का खेल खेलते हैं। अपनी योगमाया से समावृत होकर सबके सम्मुख प्रकाशित नहीं होते। जो लोग माया मोहित हैं। अज्ञान में फँसे हैं वे कहते हैं। सृष्टि रचने का कार्य तो चतुर्भुज विष्णु के ऊपर है। संहार त्रिनयन रुद्र करते हैं। वे सृष्टि स्थिति और प्रलय के लिये पृथक् पृथक् तीन देवों को बताते हैं। वे अज्ञानी इस नाशवान देह को ही आत्मा बताते हैं, वे अनात्म में आत्म भाव रखने वाले भला आपकी पदवी को कैसे प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु जो तत्त्वज्ञ हैं आपके अनन्य भक्त हैं। आपके पादपद्मों में अनुरक्त हैं। वे जानते हैं कि सृष्टि भी आप ही करते हैं, उसका पालन भी आप ही करते हैं और अन्त में प्रलय भी आपके ही द्वारा होती है। आप समस्त

भ्रम ही मान होता है, कि ब्रह्मा सृष्टि करते, विष्णु पालन और रुद्र संहार करते हैं, क्यों कि आत्मस्वरूप आप अनात्म में स्थित हो कर उनकी बुद्धिपर माया का पर्दा डाल देते हैं। वास्तव में सब कुछ आप ही करते हैं।

देव, प्रजापति, मनु तथा चराचर प्राणियों में अन्तर्यामी रूप से नित्य रहते हैं।

प्रभो ! यद्यपि आप का जन्म नहीं आप अजन्मा हैं, आप उत्पत्ति विनाश से रहित हैं, तथापि अपने अनन्य एकनिष्ठ साधु भक्तों पर अनुग्रह करने के निमित्त तथा गो ब्राह्मण और देवों को दुख देने वाले दुष्टों के दमन के निमित्त आप त्रिविध योनियों में नाना अवतार भी धारण करते हैं और उन्हें अपने देव दुर्लभ दर्शनों से कृतार्थ करते हैं। आपने मानव योनि में ही अवतार धारण किये हों सो भी बात नहीं। आप देवताओं में उपेन्द्र बनकर प्रकटे। असुरराज बलिको छल कर उसका सर्वस्व दान में माँगकर अपने बड़े भाई इन्द्र को सौंप दिया, आप उनके सहायकइन्द्र-उपेन्द्र-बनकर जगत् का कल्याण करते रहे। ऋषियों में भी आपने नर नारायण तथा परशुरामादि अवतार धारण किये, जिसमें तपस्या का आदर्श उपस्थित किया तथा राज्यमद और धनमद में दुर्मद बने साधु ब्राह्मण तथा देवताओं का अपमान करने वाले क्रूरकर्मा क्षत्रियों का संहार किया। मानव योनि में राम, कृष्ण, बलराम तथा बुद्धादि रूप से प्रकट हुए जिनमें आपने धर्म की स्थापना की तथा संसार के सम्मुख सुखद आदर्श उपस्थित किया। करुणा की सरिता बहाई, माता को मुझे तथा समस्त ग्वाल बाल तथा ब्रजवासियों को अपनी महिमा जताई। अपने बल पराक्रम को प्रकट किया पाखंडियों के मद को मर्दित किया।

भगवन् ! आपने मनुष्य तथा ऋषि योनियों में ही अवतार धारण किया हो सो बात नहीं, आप तो पशुयोनि में भी उत्पन्न हो जाते हैं पशुओं में गौ आदि श्रेष्ठ पूजनीय पशु में ही नहीं, शूकर भी बन जाते हैं. आधे नर आधे पशु ऐसा नृसिंहा-

वतार भी ले लेते हैं । जलचर जीवों में कच्छ मच्छ बन के साधुत्राण तथा दुष्ट दमन का कार्य करते हैं। आपके ये कार्य साधुपरित्राण तथा दुष्टों को दण्ड देने के निमित्त हुआ करते हैं ।

हे भूमन्! हे सर्वाधिप! आपसे अधिक बड़ा छोटा कोई है केही नहीं। आप सबकी पराकाष्ठा हैं। हे भगवन्! आप ही ज्ञान निधि हैं. आप ही सर्वाधिक बलशाली हैं, आप ही अपार ऐश्वर्यशाली हैं, आप से बढ़कर वीर्यवान् कोई नहीं। समस्त शक्ति के समूह, उद्‌गमस्थान आप ही हैं,समस्त तेज के पुंज, सम्पूर्ण तेजों की खानि आप ही हैं। हे परमात्मन्! तीनों लोकों में दृष्ट श्रुत ऐसी कोई वस्तु नहीं जहाँ आप विद्यमान न हों, आप अन्तर्यामी हैं । आप की महिमा आप ही जान सकते हैं। त्रिलोकी में ऐसा कोई नहीं है, कि आप की महिमा को पूर्णरीत्या समझ सके। जिस काल में आप अपनी योगमाया का विस्तार करते हैं, और क्रीड़ा करने लगते हैं, उस समय यह कोई जान नहीं सकता कि किस स्थान पर आप कब क्या करेंगे, आप अमुक कार्य को किसे उपलक्ष्य बनाकर किस प्रकार करेंगे।

आप उसे कितनी मात्रा में कब तक करेंगे। आपकी क्रीड़ा की अवधि कब तक होगी । क्योंकि आप अद्वय हैं, सत्य संकल्प हैं आपको क्रीड़ा के लिये पहिले से उपकरण जुटाने की आवश्यकता नहीं होती। अपनी इच्छा से स्वतः ही जब इच्छा होती है क्रीड़ा करने लगते हैं, जब इच्छा होती है उसका पर्यवसान कर लेते हैं।

प्रभो! यह जो हमें दृश्य जगत् दिखायी दे रहा है, इसके जो ये पदार्थ दृष्टिगोचर हो रहे हैं, वे सब वास्तव में कुछ हैं थोड़े ही । जैसे घरके भीतर मनुष्य सोते सोते स्वप्न में बड़े बड़े पहाड़ देखता है, लम्बी चौड़ी जल से परिपूर्ण नदियों को देखता है, हाथी

घोड़ा और न जाने क्या क्या देखता है। जिस समय स्वप्न में उसे ये पदार्थ दिखाई देते हैं, उस समय उसे ये सभी पदार्थ पूर्ण सत्य से लगते हैं, सिंह को देख कर भयभीत भी होता है, प्रिय पदार्थ के प्राप्त होने पर प्रसन्न भी होता है, किन्तु निद्रा भङ्ग हो जाने पर न वहाँ नदी रहती है न पहाड़। न सिंह न हाथी। जैसे वे स्वप्न के पदार्थ निद्रा काल में सत्य प्रतीत होते थे, वैसे ही अज्ञानावस्था में ये संसार के सभी पदार्थ सत् से प्रतीत होते हैं,वास्तव में ये सत्य नहीं। स्वप्नोपम पदार्थों के तुल्य हैं। यह जगत नित्य भी नहीं अपरिवर्तनशील भी नहीं। अनित्य है, क्षणभंगुर है, परिवर्तन शील है। यह अज्ञान को बढ़ाने वाला है, बुद्धि के विवेक को ढकने वाला है और इसमें जितने ही फँसते जाओ, इसे सत्य मानकर जितने ही इसकी ओर आकर्षित हो,उतने ही दुखी बनोगे यह जगत् दुःख को उत्तरोत्तर बढ़ाने वाला ही है। यद्यपि यह मायाकृत है, अचेतन जड़ तथा दुःखालय है, फिर भी आप की इच्छा से उत्पन्न हुआ है। आप ही इसके उत्पन्न करने वाले हैं और आप हैं ज्ञानानंद स्वरूप। अतः आपके संसर्ग-से आपके सम्बन्ध-से आप के आभास से अज्ञानी जनों को नित्य, सत्य और अविनाशी-सा प्रतीत होता है, तभी तो वे संसार में नाना क्लेशों को सहते हुए, भाँति भाँति के कष्टों को उठाते हुए, इसे छोड़ना नहीं चाहते। उनको यह सत्य के ही समान प्रतीत होता है और इसी में सुख की खोज करते रहते हैं। आपके यथार्थ स्वरूप को वे नहीं जानते।

आप तो भगवन्! एक हो, अद्वितीय हो। आपके समान ही जब कोई नहीं, तो आप से बड़े की तो कल्पना ही नहीं। आप अपने समान आप ही आप हो। आप आत्म स्वरूप हो। चराचर विश्व में निरन्तर निवास करते हो। आप

प्राणियों के आत्मा आप परमात्मा को-जो पुरुष गुरु रूप सूर्य के प्रकाश में,ज्ञान रूपी नेत्रोंसे निहारते हैं वे इस असत् संसार सागर को बात की बात में सुगमता से पार कर जाते हैं,ऐसे ज्ञान विज्ञान स्वरूप नित्यनिरंजन,निराकार.जगदाधार,विश्वम्भर, विश्वनाथ आप विभु के पाद पद्मों में मेरा बारंबार नमस्कार है।

सूत जी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार ब्रह्माजी ने भगवान् नंदनंदन की स्तुति की, अब वे जो स्तुति करेंगे, उसे मैं आगे कहूँगा।

छप्पय

स्वपन सरिस संसार सत्य सम सबहि लखावै।
है असत्य पर सत्य आपके संग दिखावै॥
आपु एक, सत, स्वयं प्रकाशित, नित्य, निरंजन।
सुख स्वरूप, परिपूर्न, निरन्तर, भवभय भंजन॥
करें प्रकाशित सूर्य जिमि, देहिं ज्ञान गुरुवर जथा।
भ्रम भगि जावै ज्ञानतैं, रहै न अहि रज्जु यथा॥

पद

नाथ ! तव मायागति को जाने।
भ्रमवश भ्रमैं भयंकर भयमें, आत्मा नित्य न माने॥ १॥
पुरुष पुरान प्रकाशक प्रभुजी, व्यापक वेद बखाने।
मिले जुले सत और असत से, पुरुष नहीं पहिचाने॥ २॥
सुख दुख पुन्य पापतैं न्यारे, हो तुम पुरुष पुराने।
जे सब तजि प्रभुपद आराधें, ते ई परम सयाने॥ ३॥

ब्रह्माजी द्वारा पशुपाल नंदनंदन की स्तुति (७)

[८६]

आत्मानमेवात्मतयाविजानताम् ,
तेनैव जातं निखिलं प्रपञ्चितम् ।
ज्ञानेन भूयोऽपि च तत्प्रलीयते,
रज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा ॥*

(श्रीभा० १० स्क० १४ अ० २५ श्लो०)

छप्पय

जहँ तक है संसार मोक्ष बन्धन सब सम हैं ।
रविमें नहिँ दिन रैन ब्रह्ममें नहिँ तमभ्रम हैं ॥
कहाँ बन्ध कहँ मोक्ष आतमा सबतैं न्यारो ।
सतचितआनँदरूप कहाँ अज्ञान विचारो ॥
जानि आतमा और कछु, औरनि आत्मा मानिकें ।
इतउत नित खोजत फिरत, सत्य असत्यहिँ जानिकें ॥

जब असत् में सत् बुद्धि हो जाता है, तभी कुछ का कुछ दिखायी देने लगता है, ऐसी असत् प्रतीति तम अन्धकार के

---

* भगवान् की स्तुति करते हुए ब्रह्माजी कह रहे हैं—"प्रभो ! यह सम्पूर्ण प्रपञ्च अज्ञान से ही प्रतीत हो रहा है, क्योंकि आत्मरूप से आत्मा को

कारण होते हैं। सूखे वृक्ष का ठूँठ खड़ा है, यदि पूर्ण प्रकाश है तब तो उसका यथार्थ बोध होगा; ठूँठ ही दिखाई देगा, किन्तु यदि तम है अन्धकार है, तो कुछ का कुछ दिखाई देने लगता है, उसमें भूत की कल्पना होती है, भय प्रतीत होता है, भय से काँपने लगता है, किसी किसी की तो मिथ्या भ्रम के कारण मृत्यु ही हो जाती है। इसी प्रकार जीव इन अनित्य क्षणभंगुर नाशवान भोग पदार्थों को सत् मानकर उन्हें सुख का सर्वोत्तम साधन मानकर संग्रह के निमित्त दौड़ता है, किन्तु उनसे मिलता है क्लेश ही।

सूत जी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् की स्तुति करते हुए ब्रह्माजी कह रहे हैं—"प्रभो! आप सर्वान्तर्यामी हैं, जो लोग आप परमात्मा को सर्वव्यापक रूपसे नहीं मानते, उन्हें इसी अज्ञान के कारण पुनः पुनः इस प्रपञ्च की प्राप्ति होतीहै, अर्थात् वे जन्म और मरण के चक्कर में सदा फँसे रहते हैं। जब ज्ञान हो जाता है तब इस संसार का पता भी नहीं चलता। जैसे प्रकाश के आने पर अंधकार अपने आप विलीन हो जाता है। तीव्र प्रकाश को लेकर कोने कोने में खोजने पर भी कहीं छिपा हुआ अंधार नहीं मिलता। उसका सर्वथा अदर्शन हो जाता है। अंधकार में टेढ़ी मेढ़ी रस्सी पड़ी हुई है। दूर से वह सर्प-सी प्रतीत होती है, उसके कारण भय भी होता है, रोमाञ्च भी होते हैं, शरीर काँपने लगता है, किन्तु प्रकाश होने पर उसमें से सर्प भग जाता है, भग क्या जाता है, सर्प का भ्रम निवृत्त हो जाता है। प्रकृति का स्व-

---

लोग जानते ही नहीं। जहाँ अनात्म पदार्थों में आत्मा ही दीखने लगे वहाँ सब विलीन हो जाता है, जैसे अँधेरे में टेढ़ी रज्जु में सर्प की भ्रांति हो जाय, तो सर्प को भगाने को यत्न नहीं करना पड़ेगा। भ्रम के दूर होते ही वहाँ सर्प का अस्तित्व ही न रहेगा।'

रूप बिना जाने ही हम बंधन में बँध जाते हैं। संसार का यथार्थ ज्ञान हो जाने पर फिर संसार बाधक न होकर साधक बन जाता है, आकर्षक न होकर हेय हो जाता है। अब तक जिन पदार्थों को सुख स्वरूप-भोगने योग्य-माने बैठे थे, वे ही स्वरूप ज्ञान होने पर दुःखरूप प्रतीत होते हैं उनमें भोग्यबुद्धि नष्ट हो जाती है। जितना भी बन्धन है सब अज्ञान के ही कारण है, ज्ञानस्वरूप आपको जान लेने पर बंधन रहता ही नहीं।

भगवन्! आप द्वन्द्व रहित हैं, यह सम्पूर्ण संसार द्वन्द्व पर ही अवलम्बित है। जैसे सुख दुख, पुण्य पाप, ग्राह्य त्याज्य, हेय उपादेय, यावन्मात्र जगत् में जोड़ा हैं, मिथुन हैं, पक्ष विपक्ष हैं, ये सब अज्ञान में ही कल्पित हैं, आप निर्द्वन्द्व हैं, परम सत्यस्वरूप हैं, ज्ञान घन है, आप में न बंधन है न मोक्ष। जहाँ बंधन होगा, वहीं तो मोक्ष की कल्पना की जायगी, किन्तु आप दोनों से अतीत हैं। क्यों कि आप अद्वितीय हैं, अखण्ड चैतन्य स्वरूप हैं। आप अद्वय, एकरस ब्रह्म में बन्ध और मोक्ष की कल्पना उसी प्रकार है, जिस प्रकार सूर्य में दिन और रात्रि की कल्पना। लोग कहते हैं, सूर्य अस्त हो गये, रात्रि हो गई। सूर्य उदय हो गये, दिन हो गया। वास्तव में न तो सूर्य कभी अस्त होते हैं, न उदय ही होते हैं, तम के कारण वे दिखाई नहीं देते, तब लोग उसे रात्रि कहने लगते हैं तम हटने पर उसे दिन कहने लगते हैं। तम के ही कारण दिन और रात्रि की कल्पना है। इसी प्रकार अज्ञान मूलक ही बन्धन मोक्ष हैं, आप अखंड परिपूर्ण में बन्धन कहाँ?

स्वामिन्! आपकी माया अपरम्पार है। आपने यह माया का कैसा मोहक जाल फैला रखा है। ये बिचारे भोले भाले अज्ञानी जीव कैसे भ्रम में पड़े हुए हैं, कितना अज्ञान का पर्दा इनकी दृष्टि पर पड़ गया कि आप सबके घट घट में व्याप्त हैं, सब के समीप

हैं, सब से निकट हैं, किन्तु आपको वे कुछ अन्य ही जानते हैं। और शरीर, घर पति, पत्नी, पुत्र धनादि जो अनात्म वस्तु हैं, उन्हें आत्मा मानते हैं। देह को ही आत्मा मानकर फिर आप परमात्मा को बाहर खोजने के लिय इधर उधर भटकते रहते हैं। किन्तु प्रभो! जो संत जन हैं, आपके अनन्योपासक भक्त हैं, वे बाहर खोजने नहीं जाते। वे पहिले इन संसारी पदार्थों का ही विवेचन करते हैं। हम जो घर में, परिजनों में, धन में मेरा मेरा कहते हैं, इनमें मेरापन क्या है, विचार से प्रतीत होता है, मेरा उसमें कुछ नहीं है, फिर हम इस अनित्य नाशवान शरीर में अहं भाव किये हैं, इसमें अहं करके कौन पदार्थ लिया जायगा। इस प्रकार वे सभी अनात्म पदार्थों का परित्याग करते करते अंत में अन्तःकरण में विराजमान आपको जानते हैं। जैसे टेढ़ी मेढ़ी रस्सी में सर्प की भ्रान्ति हुई, तो बिना विचार के बिना प्रकाश के बिना सद् असद् के विवेक के,वह भ्राँति थोड़े ही जा सकती है। प्रकाश भी आगया और हमने आँखें मीचलीं, तो भी भ्रम दूर न होगा। आँखें भी खोललीं और विचार नहीं किया, तो भी भ्रम दूर नहीं हो सकता। प्रकाश में हमें विचार करना होगा, सर्प के तो फण होता है, इसमें तो फण नहीं। सर्प सांस लेता है यह सांस नहीं लेता। शब्द सुनकर सर्प रेंगने लगता है, यह तो रेंगता नहीं। सर्प में तो चैतन्यता है यह जड़ है। इस प्रकार सत् रस्सी में असत् सर्प का बोध करते करते सर्प को भगाना नहीं होगा, रस्सी कहीं अन्यत्र से लानी न होगी। वही वस्तु जिसे अब तक भ्रमवश सर्प समझकर भयभीत हो रहे थे, उसे ही उसी स्थान पर "रस्सी है" ऐसा निश्चय करना होगा। ऐसा निश्चय करते ही सर्प का वहाँ आस्तित्व समाप्त हो जायगा। इसके लिये केवल ज्ञान वैराग्य और विवेक की आवश्यकता है।

इतना सब हो ने पर भी प्रभो ! यह ज्ञान सभी को प्राप्त नहीं हो सकता । मान । अपने प्रयत्नों से कितने भी साधन क्यों न करे, जब तक आपकी अनुकम्पा नहीं होती, जब तक आपकी दया दृष्टि नहीं होती त ब तक ऐसा ज्ञान होना संभव नहीं । जिसने आपके पुनीत पा दपद्मों का आश्रय ग्रहण कर लिया है, जिन्हें आपके युगल च रणकमलों का यत्किञ्चित्—लेशमात्र–भी अनुग्रह प्राप्त हो चुका है, वही आपकी महती महिमा का तत्व जान सकता है । आपकी कृपा के बिना दूसरा सहारा नहीं, आपकी अनुग्रह बिना निर्वाह नहीं । आपकी दया दृष्टि की वृष्टि हुए सरसता नहीं। आपकी अनुकम्प ा बिना अन्य अध्वा नहीं । आप जिसे अपना कहकर वरण कर लें,वही आपका पता पा सकता है । इसके अतिरिक्त अन्य कोई कितने भी प्रयत्न करे, कितनी भी दौड़ धूप करे, कितने भी काल तक भटकता फिरे, कितने भी समय तक खोज करता रहे आपक ा पता पाना असंभव है, आपको जान जाना दुष्कर है दुस्सा ध्य है।

अतः नाथ ! अब मुझे और कुछ नहीं चाहिये । ऐश्वर्य का अन्त तो मैंने दे ख लिया । मैं अब तक अपने को ही परम ऐश्वर्यशाली समझता था, किन्तु अब मैंने देखा मेरे जैसे ब्रह्माण्डों के अनेकों स्वामी आपके एक एक रोम कूप से निरन्तर निकलते और विलीन होते रहते हैं । अतः मुझे अब ऐश्वर्य नहीं चाहिये । अब त ो मैं दास्य का भिक्षुक हूँ । मैं परम सौभाग्यशाली आपके चरणकम लों का अकिंचन भक्त बनना चाहता हूँ । मेरी चाहना तो यही है, कि इसी ब्रह्मा के शरीर से मुझे भक्ति प्राप्त हो जाय । इसी ब्रज मण्डल में मुझे कहीं स्थान मिल जाय । यदि ऐसा संभव न हो, तो इस जन्म में न सही किसी दूसरे ही जन्म में, किसी अन्य स्थान में ही मुझे भक्ति हो जाय । मेरी भी गणना

आपके दासों में हो जाय। मुझे यह भी चाह नहीं कि ब्रह्मा, देव उपदेव या मनुष्य योनि में ही होऊँ। पशु, पक्षी, वृक्ष किसी भी योनि में उत्पन्न होऊँ, किन्तु आपका अनन्य शरणागत भक्त होकर आपके चरणारविन्दों की सेवा में ही सदा संलग्न बना रहूँ। मेरी गणना आपके आश्रित दासों में हो सके। आपके दासत्व को छोड़कर फिर चाहें ब्रह्मा से भी बड़ा कोई पद क्यों न हो, मैं उसकी भी लालसा नहीं करता। जिस पद में आपका सहवास न हो, आपकी सेवा का अवसर न प्राप्त हो सके, उस पद को मैं श्रेष्ठ से श्रेष्ठ होने पर भी परम हेय समझता हूँ। मैं तो इन ब्रज की अनपढ़ भोली भाली ब्रजाङ्गनाओं के भाग्य की सराहना करता हूँ, जो आपको सदा प्यार करती हैं, दुलार करती हैं, पुचकारती हैं, चुचकारती हैं, कपोलों पर चपत लगाती हैं, चुम्बन लेती हैं, कस कर छाती से चिपटाती हैं और आप भी जिनकी गोद में बैठकर सिहाते हैं, सुख पाते हैं, तृप्ति का अनुभव करते हैं।

वैसे तो प्रभो! आपको कौन पा सकता है, कौन आपको तृप्त कर सकता है। अब तक इतने विधि विधानपूर्वक यज्ञयाग हुए हैं, किन्तु वे यज्ञयाग आपको पूर्ण तृप्त कर ही सके हैं ऐसा कोई कह नहीं सकता। आप आप्तकाम परिपूर्ण की किसी यज्ञादि साधन द्वारा तृप्ति हो ही जाय यह संभव नहीं। आप यज्ञों में भरपेट खाकर अघा ही जाते हों, सो भी बात नहीं। जो यज्ञ अविधिपूर्वक किये गये हों, दम्भ से, अभिमान से, द्वेषपूर्वक ईर्ष्यादि से जो यज्ञ किये जाते हैं; उनमें आप जाते भी नहीं। बहुत से यज्ञों में जाते हैं, तो वहाँ खाते भी नहीं, बहुतों में खाते भी हैं, तो केवल सूँघकर चले आते हैं, किन्तु इस ब्रज में तो मैंने प्रत्यक्ष देखा आप असंख्यों ग्वाल बाल बछड़े बन गये और गोपियों तथा गौओं के स्तनों को अपने मुख में दबाकर चुसर चुसर करके दूध पीते थे।

गौएँ या गोपियाँ और पिलाती तो आप मुँह फेर लेते और कहते बस, अब तृप्त हो गया, पेट भर गया। यहाँ तो एक दिन नहीं नित्य ही आप तृप्त होते थे। जो व्रज की गोपाङ्गनायें तथा गौएँ आप अतृप्त तो तृप्त कर सकीं, उन व्रज की गोपियों और गौएँ के भाग्य की महिमा कैसे वर्णन की जा सके ? जिनके दूध को आप उमंग के साथ पीकर किलकारियाँ मारने लगते थे, उन गो गोपियों की सराहना किन शब्दों में की जाय ?

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार ब्रह्माजी ने व्रज की गोपियों और गौओं की प्रशंसा की आगे वे जैसे व्रजवासियों के भाग्य की प्रशंसा करते हुए स्तुति करेंगे, उस कथा प्रसंग को मैं आगे कहूँगा।

छप्पय

हिये माहिं हरि बसैं सन्त बाहर नहिं भटकैं।
असतनि में नहिं फँसैं नहीं भव अटवी अटकैं॥
कृपा करैं करुनेश भक्त प्रभु-पद-रज पावैं।
खोजत सतत अभक्त ध्यान तिनके नहिं आवैं॥
दया दयालो करहिं जिह, हौं दासनि को दास तव।
जिनि पय पी भेप्रभु मुदित, धन्य धेनु व्रज बधू सब॥

पद

भक्त ही जाने महिमा तुमरी।
प्रभु प्रसाद पायो जिनि जीवनि, तिनिकी सबई सुधरी॥१॥
तजि तव भक्ति भ्रमैं इत उत नित, कहत बुद्धि बड़ हमरी।
खोजत भ्रमत थकित तजि प्रभु पद, तिनि की सब विधि बिगरी॥२॥
स्वयं फँसे जग जाल बनायो, जैसे जालो मकरी।
तोरो जाल कृपा करि केशव प्रभु पद डोरी पकरी॥३॥

ब्रह्माजी द्वारा पशुपाल नन्दनन्दन की स्तुति(८)

(६०)

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्मसनातनम् ॥
(श्री भा० १० स्क० १४ अ० ३२ श्लो०)

छप्पय

ब्रजमंडल के धन्य चराचर नर पशु प्रानी।
जिनि के बनि हरि मित्र करें क्रीड़ा मन मानी ॥
हौं ब्रज में बनि जाउँ वृक्ष बल्ली बनचारी।
प्रभु पद-रज तनु परै कृतारथ करिवेवारी ॥
ब्रजवासिनि के भाग्य की, महिमा अपरंपार है।
ब्रह्म जहाँ बालक बन्यो, विहरै करत सम्हार है ॥

सर्व व्यापक भगवान्-अनामी भगवान्-का न कोई एक नाम है,न कोई एक रूप। सभी नामों से वे ही बोले जाते हैं,सभी रूपों से वे ही देखे जाते है। इसका अर्थ यह भी है कि वे नाम रूप

* भगवान् की स्तुति करते हुए ब्रह्माजी कहते है—"अहा ! इस नन्द जी के व्रज में रहने वाले इन व्रजवासियों के धन्य भाग्य हैं, अत्यंत ही अहो भाग्य हैं, जिनके मित्र परमानंद रूप सनातन पुरुष पूर्ण ब्रह्म स्वयं साक्षात् श्री कृष्ण हैं।

से रहित हैं। फिर भी भगवान् के कुछ उपासना के निमित्त निश्चित स्वरूप हैं। भगवान् का नाम भी भगवान् के ही समान चैतन्यघन है। नाम में और भगवान् में कोई अन्तर नहीं। इसी प्रकार भगवान में और भगवान् के रूप में अभेद है, भगवान् की लीलायें भी भगवान् के सरिस ही चैतन्य और आनंददायिनी हैं। इसी प्रकार भगवान के ही समान भगवान् का धाम है। भगवान् में और भगवत् धाम में कोई अंतर नहीं। नाम, रूप और लीला तो ऐसी हैं कि कभी विस्मृत भी हो सकती हैं, किन्तु भगवान् के धाम में अनन्य आश्रय होकर पड़ ही जाय, तो इसी भावना से उद्धार हो जायगा। इसीलिए धाम की महिमा सबसे अधिक बतायी है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! भगवान् नंदनंदन की स्तुति करते हुए ब्रह्माजी कह रहे हैं—"प्रभो ! अब तक मैं यही समझता था, कि मनुष्यों से बढ़कर भाग्यशाली देवता हैं, जो स्वर्ग सुखों का स्वच्छन्द होकर उपभोग करते हैं,उनसे भी बढ़कर भाग्यशाली महर्लोक के महर्षि गण हैं, जो सदा आदर्श महिमा में निरत रहते हैं, उनसे भी बढ़कर जनलोक निवासी ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी हैं, जिन्होंने कभी विषय भोगों का अनुभव ही नहीं किया। उनसे भी बढ़कर तपलोक निवासी ऋषि गण भाग्यशाली हैं, जो अहर्निशि तप में ही संलग्न रहते हैं। उनसे भाग्यशाली सत्यलोक निवासी हैं,जो सभी द्वन्द्वों ऐषणाओं इच्छाओं से रहित होकर नित्यतृप्त बने रहते हैं। उन सबसे भी श्रेष्ठ मैं ब्रह्मा हूँ जो अज, स्वयंभू, लोक पितामह कहलाता हूँ, किन्तु आज मुझे पता चला हम लोग तो क्या हैं, प्रकृति के घेरे में एक बन्दी से हैं। इन लोकों में रहते हुए भी हम निरंतर आप के दर्शनों से वंचित रहते हैं, केवल कृत कर्मों के फल भोगते रहते हैं। भक्ति से तो हम शून्य ही रहते हैं।

मैं तो सब से अधिक धन्यातिधन्य इन नंदराय के व्रज

वासियों को मानता हूँ,जिनको आप अपना मित्र,सुहृद्,सखा बना कर इनके साथ सरस मधुर रसीली लीलायें निरन्तर करते रहते हैं। इनके भाग्य को सराहना किन शब्दों में की जाय। जो परब्रह्म का नित्य स्पर्श करते हैं, जो परमानन्द की रूप माधुरी का अन्तः नेत्रों से ही नहीं वाह्यचक्षुओं से भी निरन्तर पान करते हैं, जो सनातन, पूर्ण परब्रह्म के साथ शयन, भोजन, गमन, हास परिहास करते हैं,इनके बराबर भाग्यशाली चतुर्दश भुवनों मे कौन हो सकता है ?

हे देव ! इन ब्रजवासियों के भाग्य की बात तो जाने दीजिये इन मन सहित एकादश इन्द्रियों के जो शर्व, ब्रह्मा, चन्द्रमा, दिशायें, वायु, सूर्य, प्रचेता, अश्विनी कुमार, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, और मित्रादि जो इन सब के अधिष्टातृ देव हैं, वे हम सब देवता भी इन ब्रजवासियों के संसर्ग से धन्य होगये हैं, जैसे किसी सखाने श्याम सुंदर के कंठ में अपनी बाहु डाल दी, तो हाथ के अधिष्ठातृ देव इन्द्र ने भी आप के स्पर्श का सुख अनुभव कर लिया। आप की प्रसादी वनमाला किसी सखा ने पहिनली और सूँघली, तो उसकी नासिका में बैठे हुए अश्विनी कुमार कृतार्थ हो गये। इस प्रकार शिव, इन्द्रियों और अन्तःकरण के अधिष्ठातृ देव हैं वे इन्द्रिय रूपी चसकों-पान पात्रों में आपके चरणारविन्दों की अमृतमयी मधुमयी मादक मदिरा का सतत पान करके मस्त बने रहते हैं। इन ब्रजवासियों की इन्द्रियों में रहने से हम देवताओं का जीवन भी सार्थक हो गया।

प्रभो ! यह चौरासी कोश की ब्रजभूमि धन्य है,यह तो आपका स्वयं साक्षात् श्री विग्रह है। ब्रजहद से सोनहद तक शूरसेन की राजधानी बटेश्वर तक, इतना जो ब्रजमंडल है, वह आपका अभिन्न रूप है, इतने भूभाग में कहीं भी किसी ग्राम में भी जन्म

हो जाय यही बड़े भाग्य की बात है। ग्राम में भी मनुष्य न हो कर पशु पत्ती ही बन जाय, तब भी सुंदर है। यदि यह भी न हो तो किसी वन में वृत्त लता ही बन जाय, क्योंकि आप व्रज के १२ वन १२ उपवन तथा अन्य वनों में कभी न कभी गौएँ चराते हुए पहुँच ही जाते हैं। पारी पारी से व्रजमंडल के सभी स्थानों में चक्कर लगाते ही रहते हैं, अतः सम्पूर्ण व्रजमंडल ही धन्य है, तिसमें भी यदि नन्द के गोकुल में मेरा कहीं जन्म हो जाय, गौ, बछड़ा ही बन जाऊँ, यह भी सौभाग्य न हो तो वृत्त, लता तृण, वीरुध तथा कोई भी वृत्त बन जाऊँ तो भी मैं अपना परमसौभाग्य समझूँगा। गोकुल में चाहें जिस स्थान पर जन्म हो, वही भाग्य की चरम सीमा है, आप चाहें वहाँ कभी न भी पहुँचे किन्तु कोई भी गोकुलवासी उधर से निकल जाय और उसकी पद धूलि जिस वृत्त पर पड़ जाय, वही कृतार्थ हो जाय। अहा, इन व्रजवासियों की महिमा के सम्बन्ध कहा ही क्या जा सकता है। प्रभो! आप की पावन पद-रज की खोज में ये सम्पूर्ण वेद भटक रहे हैं, श्रुतियाँ अपने जीवन की सार्थकता आपकी चरणधूलि के कणों की प्राप्ति में ही मान रही हैं, किन्तु उन्हें अभी तक चरणरज प्राप्त नहीं हुई है, वे अब तक नेति नेति यह चरणरज नहीं है, यह चरण रज नहीं है यही चिल्ला रही हैं। ऐसी उस जीवनमूरि पाद पद्मों की पराग को इन व्रजवासियों ने प्राप्त कर लिया है, प्राप्त ही नहीं कर लिया है' उसमें नित्य अभिषेक करते हैं, अभिषेक ही नहीं करते आप भगवान् मुकुन्द उनके एकमात्र जीवनाधार हैं, सर्वस्व हैं प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं। उन गोकुलवासियों की पदधूलि ही मिल जाय, तो इस सौभाग्य के सम्मुख ब्रह्मपद तुच्छ है। ये व्रजवासी बड़े भाग्यशाली हैं, ये आपके अरुण चरणों के गुदगुदे तलुओं को सुहलाते हैं, आपको हृदय से चिपटाते

हैं, चरण सेवा करते हैं और प्रतिपल आपकी आज्ञा की बाट जोहते रहते हैं, जैसे पलकें आखों की रक्षा के लिये सदा सचेष्ट रहती हैं, वैसे ही ये व्रजवासी नर नारी सदा आपकी सेवा में संलग्न रहते हैं।

प्रभो! सेवा का बदला सभी देते हैं। सर्वसाधरण लोग भी सेवा के ऋण से उऋण होने के लिये उपकार का प्रत्युपकार करने के लिये यत्नवान् देखे गये हैं। मुझे चिन्ता तो इसी बात की है कि आप इन व्रजवासियों को प्रत्युपकार में क्या देंगे। क्या देकर आप इनके ऋण से उऋण होंगे? आप कह सकते हैं। मेरे पास एक सबसे श्रेष्ठ वस्तु है, मोक्ष। मैं उसे ही इनको दे डालूँगा। मैं इन्हें अपना स्वरूप देकर-सालोक्य सार्ष्टि, सामीप्य यादि मुक्ति देकर-अपना सा ही बना लूँगा। सो, भगवन्! पहिले मुक्ति का मूल्य चाहें जितना अधिक रहा हो, किन्तु पूतना को मुक्ति देकर आपने मुक्ति का मूल्य बहुत घटा दिया। यदि पूतना को भी मुक्ति और व्रजवासी नरनारियों को भी मुक्ति, तब तो सभी धान बाईस पंसेरी ही हुए। आप इन व्रजवासियों की और पूतना की तुलना तो कीजिये। पूतना सदा आप से दूर रही। य व्रजवासी सदा आपके समीप ही रहते हैं। पूतना सदा आप स द्वेष करती रही, ये सदा तैल धारावत आप से स्नेह करते हैं। पूतना एक दिन गोकुल आयी ये सदा गोकुल में ही निवास करते हैं। पूतना ने एक दिन आप को देखा। य सदा सर्वदा आप को देखते रहते हैं। पूतना ने एक दिन आपको गोद में उठाया, ये तो आप को गोद में ही रखते हैं। पूतना ने अपने वक्षस्थल का स्पर्श एक दिन कराया, ये तो आप को सदा अपने हृदय पर धारण करते रहते हैं। पूतना ने एक दिन अपने स्तनों का पय पान कराया। ये व्रजवासी नर नारी तो तुम्हें हठपूर्वक पय पिलाते ही रहते हैं। माखन, मिश्री, दही, रबड़ी तथा

अन्यान्य वस्तुयें खिलाते ही रहते हैं। पूतना ने सद् भाव से आ
को दूध थोड़े ही पिलाया था। ये तो सदा शुद्धभाव से प्रेम पू
आप को पय पिलाते हैं, पूतना ने शुद्ध दूध नहीं पिलाया था,
में काल कूट विष मिला कर पिलाया था ये लोग तो मेवा, मि
केशर,कस्तूरी मिलाकर दूध पिलाते हैं, पूतना राक्षसी दूध पिल
जाती थी और आप की मृत्यु की कामना करती जाती थी, किन्
लोग तो सदा आपका मंगलाशासन करते हैं, सदा आपका कल्य
चाहते हैं। आपको अपने प्राणों सेभी बढ़कर प्रेमसे रखते हैं।
बालकों को मारने वाली आप से द्वेष करने वाली, रुधिर पान क
वाली पूतना को मुक्ति तो आपने इसीलिये दी कि वह आप
नेत्र गोचर हो गयी, उसने अपने स्तन का स्पर्श आपके कपोल
साथ किया,यदि इतनी-सी बातपर ही आपमुक्ति दे डालते हैं,तो
निरन्तर आपका प्रेमपूर्वक अनुराग के साथ स्पर्श करते हैं,
की सेवा में सदा संलग्न रहते हैं, उनको भी मुक्ति मिले तो यह
अन्याय है। पूतना साध्वी स्त्री का वेष बना कर आयी थी अ
उसने प्रत्यक्ष कपट वेष बनाया था,इसपर आपने उसे ही मुक्ति
दी उसके सम्बन्धी अघासुर बकासुर भी मुक्त हो गये। फिर जि
ने अपना घर द्वार, कुटुम्ब परिवार, धन धान्य, स्वजन सम्ब
अपने सभी प्यारे से प्यारे पदार्थ, शरीर, पुत्र, प्राण तथा अ
करण सभी आपको अर्पण कर रखे हैं, उन्हें मुक्ति देकर टरक
नहीं जा सकता इतने भारी ऋण से आप मुक्ति देकर उऋण
हो सकते। प्रतीत होता है आपको सदा सर्वदा उनका ऋणी
बना रहना पड़ेगा।"

सूतजी कहते हैं— "मुनियो! इस ब्रह्माजी ने
की तथा व्रजवासियों के स्नेह की महिमा गाकर भगवान् की स्
की, अभी वे और भी स्तुति करेंगे उसका ( ) मैं आगे करूँ

आशा है आप सब इस गूढ़ ज्ञान पूर्ण, सभी शास्त्रों के सार रूप प्रसंग को दत्त चित्त होकर सुनने की कृपा करेंगे।

छप्पय

सेवा बदले नाथ ! कहा ब्रजबासिन दिजै।
है तुम पै इक मोच्छ वाहि वे कबहुँ न लिजै॥
मोच्छ पूतना दई पियायो जिनि विष पय सँग।
प्रेमामृत नित पान करावें अरपें निज अँग।
तन, मन, धन,पति प्रानप्रिय,जिनि सरबसु अरप्यो विभो।
का फल दै होवें उरिन, का सोची तुमने प्रभो॥

पद

नाथ ! मन सोच बड़ो है भारी।
ये ब्रजबासी सरबसु त्यागी, सेवा करें तिहारी॥१॥
बदले में इनकूँ का देओ, विचलित बुद्धि हमारी।
कैसे होहु उरिन तुम जगपति, सोचौ कहा खरारी॥२॥
आई बकी कपट युवती बनि, पापिनि शिशु संहारी।
दुष्ट भाव विष प्याइ दूध सँग, तुमरे लोक सिधारी॥३॥
ये घर द्वार, स्वजन, तन, मन, धन, सब तजि पद रज प्यारी।
इनकूँ वस्तु बकी सम देओ, होवै हँसी तुम्हारी॥४॥
जनम जनम तुम रिनी रहोगे, मोहन कुंजबिहारी।
धनि धनि ब्रज तरु पशु नर नारी, जिनि प्रभु प्रिय गिरिधारी॥५॥

— —

ब्रह्माजी द्वारा पशुपाल नंद नंदन की स्तुति [६]

[९१]

तावद्रागादयः स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम् ।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत्कृष्ण न ते जनाः ॥
(श्री भा० १० स्क० १४ अ० ३६ श्लो०)

छप्पय

बन्दीघर घर लगे चोर रागादिक जब तक।
पग बेड़ी है मोह होहि नहि तव-जन तब तक ॥
हो प्रपंच तें पृथक् तऊ शरनागत हित हरि।
अगनित लीला करो जगत में नाना तनु धरि ॥
जे वैभव ज्ञाता बने, बने रहें ते धन्य अति।
पहुँचे मन बानी नहीं, तनु की तो पुनि कौन गति ॥

भगवान् जो भी कुछ अवतार धारण करके कार्य करते हैं केवल भक्तों को सुख देने के निमित्त ही करते हैं। उससे साधु परित्राण हो जाय, धर्म संस्थापन हो जाय, दुष्टों का दमन हो

---

* भगवान् की स्तुति करते हुए ब्रह्माजी कह रहे हैं—"हे कृष्णचन्द्र ! ये राग द्वेष मोहादि भाव चोर के समान तभी तक हैं, यह निवास करने का घर कारावास के समान तभी तक है और यह मोह तभी तक पैरों की बेड़ियों के समान है, जब तक यह जीव आप का नहीं बन जाता, आप का भक्त नहीं हो जाता।

जाय, यह गौड़ बात है। भगवान् भक्तों को उपलक्ष्य बना कर मधुरातिमधुर क्रीड़ायें करते हैं, पीछे वे ही कथा बन जाती हैं, जिनके सुनने से जगत् का कल्याण होता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! भगवान्की स्तुति करते हुए ब्रह्मा जी कह रहे हैं—"हे देव ! यह संसार बन्धन का कारण है, किन्तु तभी तक बन्धन करता है, जब तक प्राणी आपका भक्त न हो जाय, आपकी शरण न चला जाय। जैसे संखिया विष है, उसी का संशोधन कर दिया जाय ओषधि बना ली जाय, तो अमृत बन जाता है। उसी प्रकार ये राग, लोभ, मोहादि भाव यद्यपि बन्धन के कारण हैं, इनसे संसार चक्र और सुदृढ़ होता है, किन्तु यदि मनुष्य सर्वतोभाव से आप का भक्त हो जाय, जिस राग को अब तक संसारी लोगों में लगाये था, उसे ही आप में लगा दे, आपसे राग करने लगे, भगवत् भक्तों में अनुराग हो जाय, तो वह संसारी बन्धनों को काट देगा। वैसे घर बन्धन का कारण है, एक प्रकार से वह कारावास ही है, किन्तु उसे आप की पूजा का स्थान मान लिया जाय, तो फिर यह घर घर न होकर मंदिर बन जायगा। इसी प्रकार संसारी पदार्थों का मोह एक प्रकार से पैरों को बाँधने की बेड़ियाँ हैं, किन्तु यदि प्राणी आप की शरण हो जाय, आप का प्रपन्न बन जाय तो फिर वह आप में किया हुआ मोह सभी प्रकार के मोहों का नाश करने वाला हो जाता है। आप के भक्त हो जाने पर सभी बदल जाते हैं, प्रतिकूल अनुकूल

हो जाते हैं। बन्धन कारक-मुक्तिदाता के रूप में परिणित हो जाते हैं।

स्वामिन्! आप का संसार में आने का-नीचे उतरने का-अन्य कोई प्रयोजन नहीं। आप तो निष्प्रपञ्च हैं, आप को इस प्रपञ्च के झमेले में पड़ने का कोई प्रयोजन ही नहीं। किन्तु आप को अपने भक्तों के संग खेलने में, उन्हें आनंद प्रदान करने में रस आता है। अतः आप अपने अनुचरों की रस वृद्धि के निमित्त, उन्हें अनादि अनंत परमस्वाद युक्त रस वितरण करने–अवतार धारण करके अवनी पर आना ही पड़ता है। भक्तों की आनंद राशि को बढ़ाने के निमित्त प्रपञ्च का अनुसरण करना ही पड़ता है।

कुछ लोग कहते हैं, हमने भगवान् के पूर्ण वैभव को जान लिया। अब मैं उन लोगों से वाद-विवाद क्यों करूँ? जान लिया तो भाई अच्छी बात है। किन्तु मैं अपने अनुभव से कहता हूँ, कि मेरा मन आपके वैभव को जानना तो दूर रहा उसका स्पर्श भी नहीं कर सकता। वाणी आपके गुणानुवाद के गान में कुंठित हो जाती है जब वहाँ तक मेरा मन वाणी ही की पहुँच नहीं, तब शरीर की तो बात ही क्या, उसका तो विषय ही नहीं।

प्रभो! मैंने जो यह विनती करने की धृष्टता की यह भी मेरी अनधिकार चेष्टा ही है. भला मैं आप सर्वेश्वर सर्व व्यापक अचिन्त्य शक्तिवाले विभु की स्तुति कर ही क्या सकता हूँ। मैंने जो कुछ असंगत कहा हो। उसे क्षमा करें, क्योंकि आप मन विषय नहीं। अब हे देव! मुझे जाने की अनुमति मिले। मैं

अपने मनोभावों को आपके सम्मुख व्यक्त नहीं कर सकता। व्यक्त करने की आवश्यकता भी नहीं। व्यक्त उसके सामने किया जाता है जो जानता न हो, आप तो सर्वसाक्षी हैं, घट घट व्यापी हैं सब के अन्तःकरण की जानने वाले हैं। जितना यह चराचर विश्व है, जितना यह दृश्यमान प्रपञ्च है आप इस सबके एक मात्र अधीश्वर हैं, स्वामी हैं, प्रभु हैं, यह निखिल विश्व आप में ही अवस्थित है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! ऐसा कह कर ब्रह्माजी ने विनय पूर्वक अंतिम प्रणाम की। ब्रह्माजी ने कहा—प्रभो! आप ही सूर्य स्वरूप हैं। जैसे सूर्य के उदय होने पर कमल खिल जाते हैं। वैसे ही वृष्णिवंश, सात्वतवंश अथवा वैष्णव समूह यही कुल कमलों का समूह है, आप के उदय होने पर ये सब खिल जाते हैं, प्रमुदित हो जाते हैं, आह्लादित हो जाते हैं, ऐसे आप वृष्णिकुल दिवाकर प्रभु के पाद पद्मों में वारम्वार प्रणाम है।

स्वामिन! आप चन्द्रस्वरूप भी हैं, जैसे पूर्ण चन्द्र के उदय होते ही समुद्र बढ़ने लगता है, हर्ष के कारण उसमें हिलोरें आने लगती हैं, उसी प्रकार पृथिवी जब आप के उदित होने का समाचार सुनती है, तो प्रसन्न होकर धन धान्य पूर्ण समृद्धशालिनी बन जाती है। देवता आप के शुभागमन को सुनकर परम हर्षित होकर नृत्य करने लगते हैं, पारिजात के पुष्पों की वर्षा करने लगते हैं। ब्राह्मणों की तो बात ही क्या है, आप ब्राह्मणों को अपना देव समझते हैं, इसलिये आप ब्रह्मण्यदेव कहलाते हैं, ब्राह्मण तो आप

के अवतार की वात सुनते ही हरे भरे हो जाते हैं । गौ और ब्राह्मण ये ही आप के इष्ट हैं, शरीर हैं, सर्वस्व हैं । गौएँ तो आप के अवतार पर रांहाने लगती हैं, रस्सा तुड़ा तुड़ाकर किलोलें करने लगती हैं । आप पाखंड रूप जो तम है,उसे नाश करने वाले हैं । ऐसे चन्द्र स्वरूप श्रीकृष्ण के चरण कमलों में बारम्बार नमस्कार है, आप असुर राक्षसों को दंड देने वाले हैं । आदित्य पर्यन्त जितने देवता हैं उन सबके आप पूजनीय हैं, अर्चनीय तथा वन्दनीय है। ऐसे आप सर्वान्तयामी प्रभु को नमस्कार है, प्रतिक्षण का नमस्कार है, कल्प पर्यन्त नमस्कार है ।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार ब्रह्मा जी ने अपनी बुद्धि के अनुसार भगवान् की स्तुति की, उनकी तीन परिक्रमा की और भक्ति भाव से पुनः पुनः प्रणाम करके अपने लोक को चले गये। यह मैंने अत्यंत संक्षेप में श्री ब्रह्माजी कृत नंदनंदन पशुपाल श्रीकृष्ण की स्तुति कही, अब आगे जैसे नाग पत्नियों ने भगवान् की स्तुति की है,उसे वर्णन करूँगा ।

छप्पय

सब यादव कुल कमल करो तुम विकसित दिनपति ।
धेनु धरा सुर विप्र भूमिहित प्रकटित निशिपति ॥
खंडन करि पाखंड करें खल दल संहारन ।
सुर पूजित तव चरन कमल महँ पुनि पुनि वंदन ॥
यों इस्तुति ब्रह्मा करी, प्रेम माँहिं विह्वल भये ।
करि परिकमा तीनि पुनि, हरषि लोक अपने गये ॥

पद

विनवौं बार बार बनवारी ।
जग के स्वामी अन्तरजामी, देह भक्त हित धारी ॥१॥
कृष्ण वृष्णि कुल कमल दिवाकर, खिलहिं निरखि हितकारी ।
लै अवतार धेनु, द्विज, सुरहित, जगलीला विस्तारी ॥२॥
असुरवंश विध्वंस करौ प्रभु, जो अति अत्याचारी ।
वन्दनीय देवाधि देव अज, अच्युत अखिल अधारी ॥३॥
यों बहु विधि अज इस्तुति कीन्हीं, विहँसे श्याम मुरारी ।
करि परिकम्मा आयसु लै निज, लोक गये जगकारी ॥४॥

६६ वाँ खंड समाप्त

आगे की स्तुतियों को ६७ वें खण्ड मे पढ़िये

ब्रह्म स्तुति

ब्रह्मोवाच

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय,
गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु:,
लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय ॥१॥
अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य,
स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोपि।
नेशे महि त्ववसितुं मनसाऽऽन्तरेण,
साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः ॥२॥
ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव,
जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम्।
स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभि-
र्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम् ॥३॥
श्रेयःसृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो,
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते,
नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥४॥

पुरेह भूमन् बहवोऽपि योगिनः,
त्वदर्पितेहा निजकर्मलब्धया ।
विबुध्य भक्त्यैव कथोपनीतया,
प्रपेदिरेऽञ्जोऽच्युत ते गतिं पराम् ॥५॥

तथापि भूमन् महिमागुणस्य ते,
विबोद्धुमर्हत्यमलान्तरात्मभिः ।
अविक्रियात् स्वानुभवादरूपतो,
ह्यनन्यबोध्यात्मतया न चान्यथा ॥६॥

गुणात्मनस्तेऽपि गुणान् विमातुं,
हितावतीर्णस्य क ईशिरेऽस्य ।
कालेन यैर्वा विमिताः सुकल्पैः,
भूपांसवः खे मिहिका द्युभासः ॥७॥

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम् ।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते,
जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् ॥८॥

पश्येश मेऽनार्यमनन्त आद्ये,
परात्मनि त्वय्यपि मायिमायिनि ।
मायां वितत्येक्षितुमात्मवैभवं,
ह्यहं कियानैच्छमिवार्चिरग्नौ ॥९॥

अतः क्षमस्वाच्युत मे रजोभुवो,
ह्यजानतस्त्वत्पृथगीशमानिनः।
अजावलेपान्धतमोऽन्धचक्षुष,
एषोऽनुकम्प्यो मयि नाथवानिति ॥१०॥

क्वाहं तमोमहदहंखचराग्निवार्भू,
संवेष्टिताण्डघटसप्तवितस्तिकायः।
क्वेदृग्विधाविगणिताण्डपराणुचर्या,
वाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वम् ॥११॥

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः,
किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे।
किमस्तिनास्तिव्यपदेशभूषितं,
तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः ॥१२॥

जगत्त्रयान्तोदधिसम्प्लवोदे,
नारायणस्योदरनाभिनालात्।
विनिर्गतोऽजस्त्विति वाङ् न वै मृषा,
किं त्वीश्वर त्वन्न विनिर्गतोस्मि ॥१३॥

नारायणस्त्वं न हि सर्वदेहिनाम्,
आत्मास्यधीशाखिललोकसाक्षी।
नारायणोऽङ्गं नरभूजलायनात्,
तच्चापि सत्यं न तवैव माया ॥१४॥

तच्चेज्जलस्थं तव सज्जगद्वपुः,
किं मे न दृष्टं भगवंस्तदैव ।
किं वा सुदृष्टं हृदि मे तदैव,
किं नो सपद्येव पुनर्व्यदर्शि ॥१५॥
अत्रैव मायाधमनावतारे,
ह्यस्य प्रपञ्चस्य बहिः स्फुटस्य ।
कृत्स्नस्य चान्तर्जठरे जनन्या,
मायात्वमेव प्रकटीकृतं ते ॥१६॥
यस्य कुक्षाविदं सर्वं सात्मं भाति यथा तथा ।
तत्त्वय्यपीह तत् सर्वं किमिदं मायया विना ॥१७॥
अद्यैव त्वदृतेऽस्य किं मम न ते मायात्वमादर्शित,
मेकोऽसि प्रथमं ततो व्रजसुहृद्वत्साः समस्ता अपि ।
तावन्तोऽसि चतुर्भुजास्तदखिलैः साकं मयोपासिताः,
तावन्त्येव जगन्त्यभूस्तदमितं ब्रह्माद्वयं शिष्यते ॥१८॥
अजानतां त्वत्पदवीमनात्म,
न्यात्माऽऽत्मना भासि वितत्य मायाम् ।
सृष्टाविवाहं जगतो विधान,
इव त्वमेषोऽन्त इव त्रिनेत्रः ॥१९॥
सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि,
तिर्यक्षु यादस्स्वपि तेऽजनस्य ।

जन्मासतां दुर्मदनिग्रहाय,
प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च ॥२०॥
को वेत्ति भूमन् भगवन् परात्मन्,
योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् ।
क्व वा कथं वा कति वा कदेति,
विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम् ॥२१॥
तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपं,
स्वप्नाभमस्तधिषणं पुरुदुःखदुःखम् ।
त्वय्येव नित्यसुखबोधतनावनन्ते,
मायात उद्यदपि यत् सदिवावभाति ॥२२॥
एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः,
सत्यः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः ।
नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरञ्जनः,
पूर्णोऽद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः ॥२३॥
एवं विधं त्वां सकलात्मनामपि,
स्वात्मानमात्मात्मतया विचक्षते ।
गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सु चक्षुषा,
ये ते तरन्तीव भवानृताम्बुधिम् ॥२४॥
आत्मानमेवात्मतया विजानतां,
तेनैव जातं निखिलं प्रपञ्चितम् ।

अहोतिधन्या व्रजगोरमण्यः,
स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा ।
यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना,
यत् तृप्तयेऽद्यापि न चालमध्वराः ॥२१॥
अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥२२॥
एषां तु भाग्यमहिमाच्युत तावदास्ताम् ,
एकादशैव हि वयं वत भूरिभागाः ।
एतद्धृषीकचषकैरसकृत् पिबामः,
शर्वादयोऽङ्घ्र्युदजमध्वमृतासवं ते ॥२३॥
तद् भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां,
यद् गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम् ।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान् मुकुन्दः,
स्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ॥२४॥

एषां घोषनिवासिनामुतभवान् किं देव रातेतिन
श्चेतो विश्वफलात् फलं त्वदपरं कुत्राप्ययन् मुह्यति ।
सद्वेषादिव पूतनापि सकुला त्वामेव देवापिता,
यद्धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्वत्कृते ॥२५॥
तावद् रागादयः स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम् ।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः ॥२६॥

प्रपञ्चं निष्प्रपञ्चोऽपि विडम्बयसि भूतले ।
प्रपन्नजनतानन्दसन्दोहं प्रथितुं प्रभो ॥३७॥

जानन्त एव जानन्तु किं बहूक्त्या न मे प्रभो ।
मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः ॥३८॥

अनुजानीहि मां कृष्ण सर्वं त्वं वेत्सि सर्वदृक् ।
त्वमेव जगतां नाथो जगदेतत्तवार्पितम् ॥३९॥

श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्करजोषदायिन् ,
क्ष्मानिर्जरद्विजपशूदधिवृद्धिकारिन् ।
उद्धर्मशार्वरहर क्षितिराक्षसध्रुग्,
गाकल्पमार्कमर्हन् भगवन् नमस्ते ॥४०॥

॥ श्रीहरिः ॥

श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी द्वारा लिखित अन्य पुस्तकें

जो हमारे यहाँ मिलती हैं।

१—भागवती कथा—(१०८) खण्डों में, ६७ खण्ड छपचुके हैं) प्रति खण्ड का मूल्य १।), बारह आना डाकव्यय पृथक्।

२—श्री भागवत चरित—लगभग ६०० पृष्ठकी, सजिल्द मू० ५)

३—बदरीनाथ दर्शन—बदरी यात्रा पर खोजपूर्ण महाग्रन्थ मू० ४)

४—महात्मा कर्ण—शिक्षाप्रद रोचक जीवन, पृ० ३५६, मू० २॥)

५—मतवाली मीरा—भक्ति का सजीव साकार स्वरूप, मू० २)

६—नाम संकीर्तन महिमा—भगवन्नाम संकीर्तन के सम्बन्ध में उठने वाली तर्कों का युक्तियुक्तपूर्ण विवेचन। मू० ॥)

७—श्रीशुक—श्रीशुकदेवजी के जीवन की झाँकी (नाटक) मू० ॥)

८—भागवती कथा की बानगी—(आरंभ के तथा अन्य खंडों के कुछ पृष्ठों की बानगी) पृष्ठ संख्या १००, मू० ।)

९—शोक शान्ति—शोक की शान्ति करने वाला रोचक पत्र मू० ।-)

१०—मेरे महामना मालवीयजी और उनका अन्तिम संदेश—मालवीयजी के जोवन के सुखद संस्मरण पृष्ठ सं० १३० मू० ।)।

११—भारतीय संस्कृति और शुद्धि—क्या अहिन्दु हिन्दु बन सकते हैं? इसका शास्त्रीय विवेचन पृष्ठ सं० ७६ मू० ।-)

१२—प्रयाग माहात्म्य—मू० -) एक आना।

१३—वृन्दावन माहात्म्य—मू० -)

१४—राघवेन्द्र चरित—भागवतचरित से ही पृथक् छापागया है मू०।-)

१५—प्रभुपूजा पद्धति—भगवान् की पूजा करने की सरल सुगम शास्त्रीय विधि मू० =)।

१६—श्री चैतन्य चरितावली—पाँच खंडों में प्रथम खंड का मू० १)।

१७—भागवत-चरित की बानगी—भागवत चरित के कुछ अध्यायों [illegible] बानगी—मू० ।)

पता—संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर (झूसी) प्रयाग।